अनीका का ज़माना

नोबेल पुरस्कार से सम्मानित यूगोस्लाव उपन्यासकार
के तीन उपन्यास और एक कहानी

Ivo Andrich

लेखक
इवो आन्द्रिच
(नोबेल पुरस्कार, १९६१)

संपादक : **'अज्ञेय'**

अनुवादक :
सच्चिदानन्द वात्स्यायन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना,
भारतभूषण अग्रवाल, रघुवीर सहाय

मूल्य : आठ रुपये

पहला संस्करण : अगस्त, १९६९
मुद्रक : रूपक प्रिंटर्स, दिल्ली–३२

ANIKA KA ZAMANA by Ivo Andric
Fictions Rs. 8

भूमिका

दूसरे महायुद्ध के आरंभ होने पर जो कई राजदूत बाध्य हो कर अपने-अपने देश लौटे, उनमें दो-एक को यह अनुभव भी हुआ कि उनके अपने नगर पहुँचते न पहुँचते वहाँ पर जर्मन विमानों द्वारा बम-वर्षा शुरू हो जाय। बर्लिन से बेओग्राद (बेलग्रेड) लौटे युगोस्लावी राजदूत **इवो आंद्रिच** का यही अनुभव था। नात्सी-अधिकृत बेओग्राद से हट कर आंद्रिच को देहात में छिप कर रहना पड़ा; लेकिन यह अज्ञातवास ही कदाचित् उनकी कीर्ति का आधार हुआ क्योंकि इसी में आंद्रिच ने अपनी प्रतिभा के वास्तविक रूप को पहचाना और स्वीकार किया। सन् १९६१ में जब उन्हें नोबेल पुरस्कार दिया गया तब उनके प्रशस्ति-पट्ट पर यह वाक्य अंकित था : **"उस महाकाव्योचित शक्ति के लिए, जिसके साथ आपने अपने देश के इतिहास से घटनाएँ ली हैं और मानवीय नियतियों का चित्रण किया है।"** वास्तव में पराधिकृत देश में विवश एकांत में ही आंद्रिच ने— जिन्होंने साहित्यिक जीवन कविता से आरंभ किया था—अपने युद्ध और अत्याचार-पीड़ित देश के इतिहास का नयी दृष्टि से मनन किया और अपने देशवासियों की मनोरचना और नियति को नये रूप में पहचाना : और इस नयी पहचान में ही कृतिकार के नाते स्वयं अपनी नियति भी उन्होंने निर्धारित कर ली। दूसरे महायुद्ध के काल में, उन्होंने वह उपन्यास-त्रयी पूरी की जो **बोस्नियाई कहानी** के नाम से प्रसिद्ध हुई : १९४५ में इनका प्रकाशन हुआ तभी यूगोस्लाविया ने देखा कि उसे अपना राष्ट्रीय कथाकार मिल गया है—और क्रमशः संसार ने पहचाना कि एक नया समर्थ लेखक विश्व-साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहा है।

युवा कवि श्रांद्रिच के मुक्तकों का स्वर नैराश्य का स्वर था, यद्यपि विद्रोह भी उनमें था : पहले महायुद्ध के समय ही युवा श्रांद्रिच को अपनी आस्ट्रिया-विरोधी भावनाओं के लिए (यूगोस्लाविया तब आस्ट्रियाई साम्राज्य का अंग था) कारावास भुगतना पड़ा था। कारा-जीवन में श्रांद्रिच के प्रिय लेखक थे क्यिर्केगार्द : सांत्वना के इस स्रोत के प्रभाव का ही फल था कि पहले महायुद्ध और अपने कारा-जीवन के अनुभवों को श्रांद्रिच ने दो ललित गद्य रचनाओं में व्यक्त किया जिनमें से एक का शीर्षक भी था **चिंताएँ**। किन्तु दूसरे महायुद्ध के एकांतवास तक वह कविता से निरंतर हटते हुए पहले कहानी-लेखक और फिर उपन्यास-लेखक बन चुके थे, यद्यपि उनके उपन्यास ने अपना विशिष्ट और परिपक्व रूप बोस्नियाई उपन्यास-त्रयी में ही प्राप्त किया। इन्हीं के साथ वह उस तटस्थ महाकाव्य-रूपी उपन्यास-गाथा के लेखक के रूप में सामने आये जो उनकी विशेष देन है, और जिसके कारण वह न केवल अपने देश और जाति के ऐतिहासिक अनुभव के व्याख्याकार हो गये हैं, बल्कि जिसमें स्वयं यूगोस्लाव जन ने अपने से साक्षात्कार किया है, अपनी नियति को पहचाना है।

'बोस्नियाई उपन्यास-त्रयी' का कहानी के रूप में एक दूसरे से कोई संबंध नहीं है। संबंध का सूत्र इससे कहीं गहरा है : इन अलग-अलग वृत्तांतों में श्रांद्रिच अपने प्रदेश और देश के जन-मानस में गहरे उतर कर उन शक्तियों को पहचानते हैं जो उसके गठन को निरूपित करती हैं, उसकी कर्म-प्रेरणाओं को निर्धारित करती हैं—जिनके कारण उसका इतिहास वैसा हुआ जैसा वह हुआ। निस्सन्देह इन शक्तियों और प्रभावों में ऐतिहासिक घटना-चक्र और परिस्थिति का भी स्थान है और श्रांद्रिच इस बात को न केवल अनदेखा नहीं करते बल्कि निरंतर ऐतिहासिक अनुभव के संदर्भ में ही जन-जीवन की पड़ताल करते हैं : अर्थात् लोक-चरित्र और ऐतिहासिक अनुभव की परस्पर-प्रभाविता को ही अपनी कथा-वस्तु बनाते हैं। ऐसा न होता तो कहा जा सकता कि श्रांद्रिच के इन उपन्यासों में एक ऐतिहासिक नियतिवाद का प्रतिपादन दीखता है; पर ऐसा है इसलिए यह कहा गया है कि "श्रांद्रिच में **अलिफ़-लैला** के नियतिवाद के साथ आधुनिक मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि है।" यह सिद्ध-योग श्रांद्रिच ने अकस्मात् नहीं

पा लिया; कवि की गीत्यात्मक भावना से ले कर ऐतिहासिक उपन्यासकार की 'प्राचीन अवचेतन और सुखद पैतृक दाय' की पहचान तक आंद्रिच की यात्रा कठिन आत्मानुशासन की यात्रा रही जो दूसरे महायुद्ध की अवधि में राष्ट्रव्यापी संकट की छाया के नीचे और तोपों की गड़गड़ाहट के बीच पूरी हुई। नोबेल पुरस्कार स्वीकार करते समय अपने भाषण में आंद्रिच ने प्रकारांतर से इसी यात्रा की ओर संकेत किया था :

> वह मानव-नियति की ही कहानी है जो निरंतर गढ़ी जा रही है, जिसे मनुष्य एक दूसरे को सुनाते कभी नहीं थकते····· कभी-कभी तो अपने को यही विश्वास दिला लिया जा सकता है कि चेतना के उष:काल से ही हर युग में मानव-जाति अपनी साँस और अपनी नाड़ी के ताल पर अपने को ही वही एक कहानी निरन्तर सुनाती रही है, यद्यपि असंख्य रूपान्तरों में······कहानी-लेखक क्या अपनी कला द्वारा मानव को अपने को जानने और पहचानने में मदद करे? या कि शायद उसका ध्येय यह है कि उन सब की ओर से बोले जिनमें इसकी क्षमता न थी या जो जीवन द्वारा कुचले जा कर आत्माभिव्यक्ति की शक्ति न पा सके? या कि कहानीकार स्वयं अपने को अपनी कहानी सुनाता है—उस बच्चे की तरह जो अँधेरे में अपने भय को शांत करने के लिए अपने आप गा उठता है? या कि इन कहानियों का उद्देश्य यह हो सकता है कि जिन अँधियारी गलियों में जीवन हमें कभी-कभी ला पटकता है उन्हें यत्किंचित् प्रकाशित करे, और उस जीवन के बारे में जिसे हम अंधे और अनजान हो कर जीते हैं, उससे अधिक कुछ बताये जितना कि हम अपनी दुर्बलता में समझ और बूझ सकते हैं? इसी तरह तो अच्छे कहानीकार के शब्द बहुधा हमारे कर्म-अकर्म पर, जो हमें करना चाहिए उस पर या जो हमें नहीं करना चाहिए था उस पर प्रकाश डालते हैं। कोई पूछ सकता है कि मानव जाति का सच्चा इतिहास क्या इन्हीं लिखी या सुनायी गयी कहानियों में नहीं होता: और क्या उस इतिहास के अर्थ का धुंधला ही सही, कुछ आभास हम इनमें नहीं पा सकते? इस बात का महत्त्व कम है कि

वह कहानी अतीत में स्थित है या कि वर्तमान में।

'इस बात का महत्त्व कम है कि कहानी अतीत में घटित होती है या वर्तमान में।' आंद्रिच के उल्लिखित तीन उपन्यासों में ही नहीं, सारे साहित्य में इसी सिद्धांत की प्रतिपत्ति होती है। ये तीनों उपन्यास, **ना द्रीनी चुप्रिया** (द्रीना नदी का पुल), **त्राव्निचका ख़्रोनिका** (त्राव्निक का वृत्तांत) और **गोस्पोद्यिचा** (श्रीमती) उस ऐतिहासिक परिवेश में प्रतिष्ठित हैं जिसके ऊपर दो प्रतीकों के सदियों के संघर्ष की छाया है—सलीब और चाँद-सितारे के घात-प्रतिघात की; पर उस आधुनिक यूगोस्लाविया में, जिसमें ये दोनों ही अप्रासंगिक हो गये हैं, इन उपन्यासों के सहारे लाख-लाख समकालीन यूगोस्लावियों ने अपने सही रूप को पहचाना है—उस रूप को जो पुरातन की मिट्टी से बना है और जिसे नवीन की साँस अनुप्राणित कर रही है। आज यूगोस्लाविया में और नहीं तो एक दूसरा उपन्यासकार तो ऐसा है ही जिसे साहित्य की दृष्टि से आंद्रिच का समकक्ष माना जाये; पर विशालतर राजनैतिक अनुभव और प्रभाव या पुष्टतर रचना-सौष्ठव और मँजाव के बावजूद **मिरोस्लाव क्रलेषा** के उपन्यासों में नहीं, आंद्रिच के उपन्यासों में ही यूगोस्लावी अपने को मुकुरित पाता है। जन्मना क्रलेषा ख़्रावात्सी (क्रोएशियाई) भाषा-प्रदेश के हैं, आंद्रिच सृप्स्की (सर्बियाई) भाषा-प्रदेश के; पर सृप्स्की-ख़्रावात्सी भाषा के इन दो लेखकों की तुलना करें तो दीखता है कि क्रलेषा यूरोपीय उपन्यासकार हैं, और अच्छे यूरोपीय उपन्यासकार दूसरे भी हैं; आंद्रिच यूगोस्लाविया के हैं और यूगोस्लाविया का उपन्यासकार उन जैसा दूसरा नहीं है। क्रलेषा यूरोपीय हो कर देश में महान् हैं, आंद्रिच अपने देसीपन में अद्वितीय हो कर विश्व-साहित्य में स्थान रखते हैं।

प्रस्तुत संकलन के तीन उपन्यास यद्यपि बोस्नियाई बृहत्-त्रयी के नहीं हैं, तीनों लघु उपन्यास हैं; तथापि ये भी आंद्रिच की प्रतिभा और शक्ति का पूरा प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि अगर संकलित चौथी रचना को भी ध्यान में रखें तो कहा जा सकता है कि वस्तु की दृष्टि से भी यह संकलन बोस्नियाई बृहत्कथा

का एक संक्षिप्त ग्रौर सघन रूप प्रस्तुत करता है **गोस्पोदिचचा**। (जिसका ग्रनुवाद ग्रंग्रेज़ी में **द वुमन फ्राम सरोयेवो** नाम से छपा है,) ग्रगर एक लालची नारी की ऐसी भयानक लोभवृत्ति का मनोवैज्ञानिक ग्रध्ययन है जो पागलपन की सीमा तक पहुँच गयी है, तो प्रस्तुत संकलन में **ग्रनीका का ज़माना** न केवल ज़माने को प्रतिबिंबित करता है वरन् एक नारी की मार्मिक ग्रौर ग्रविस्मरणीय शबीह हमारे सामने रख देता है। इसी प्रकार **वज़ीर का फ़ीला** भी वास्तव में त्राव्निक के वृत्तांतों में से मानो एक क़िस्सा बयान करता है; ग्रौर **ज़ेपा नदी का पुल** तो मानो बीज-रूप में उसी ऐतिहासिक वस्तु को उसी दृष्टि से प्रस्तुत करता है जो **द्रीना नदी का पुल** में परिपक्व रूप में ग्रायी है। **ज़ेको** मानो दूसरे महा-युद्ध में यूगोस्लाविया की उस संकटापन्न स्थिति का चित्र खींच देता है जिसमें ग्रांद्रिच की प्रतिभा मँजी ग्रौर निखरी। यह नहीं कि ये लघु उपन्यास पढ़ लेने के बाद ग्रन्य बड़े उपन्यास पढ़ना कम ग्रावश्यक हो जाता है; बल्कि इस बानगी के बाद तो ग्रांद्रिच के पूरे कृतित्व का ग्राकर्षण कहीं ग्रधिक होना चाहिए। हमारा विश्वास है, इस परिचय-ग्रंथ के बाद हिंदी जगत् में ग्रांद्रिच के ग्रौर यूगोस्लावी साहित्य के ग्रनेक स्थायी प्रशंसक हो जायेंगे; हमें ग्राशा है कि ग्रनति-दूर भविष्य में इस महान् लेखक के ग्रौर भी कुछ उपन्यास हम हिंदी पाठक के लिए सुलभ कर सकेंगे। स्वाधीन भारत ग्रौर स्वाधीन यूगोस्लाविया की मैत्री के ग्रनेक ऐतिहासिक कारण ग्रौर ग्राधार हैं; दोनों देशों का इधर का इतिहास ग्रौर विश्व की राजनीति में उनका योगदान उस मैत्री को ग्रौर पुष्ट करता ग्राया है। किंतु राजनैतिक ग्राधारों से दृढ़तर ग्राधार दोनों देशों की सांस्कृतिक स्थितियों, ऐतिहासिक परंपराग्रों ग्रौर मनोरचना में मिलेंगे; इन ग्राधारों को पहचानना ग्रौर दृढ़तर बनाना दोनों देशों के साहित्य-प्रेमियों का कर्तव्य है। ग्रौर यह कर्तव्य ग्रत्यंत प्रीतिकर हो जाता है जब उसे निबाहने के निमित्त से हमें इवो ग्रांद्रिच के उपन्यासों जैसी मूल्यवान् संपत्ति प्राप्त होती है।

ग्रांद्रिच से मेरी पहली भेंट चार-पाँच वर्ष पूर्व हुई थी। तब तक मैंने उनका साहित्य थोड़ा ही पढ़ा था (तब तक जर्मन के सिवा दूसरी भाषाग्रों में ग्रनुवाद

भी प्राप्य न थे), इसलिए जो भी बातचीत हुई उसमें बिखराव होना स्वाभाविक था। फिर भी उनके विनम्र सौजन्य के साथ गहरे चिंतन और मानव-मात्र के प्रति एक ममत्वभरे कारुण्य की गहरी छाप ले कर आया था। तभी यह भी सोचा था कि हो सका तो कुछ रचनाओं के अनुवाद हिंदी में उपलभ्य कराने होंगे। क्योंकि आंद्रिच से, यूगोस्लावी लेखक संघ से और कुछ साहित्य-कारों से अनुवादों द्वारा आदान-प्रदान की बात भी हुई थी, इसलिए और भी उत्साह था। पहली भेंट की धारणा क्रमशः पुष्ट ही होती गयी, और उसके साथ अनुवाद प्रस्तुत करने का संकल्प भी; मेरे लिए यह बड़े संतोष का विषय है कि उस संकल्प की आंशिक पूर्ति प्रस्तुत ग्रंथ द्वारा हो रही है। भारत में ऐसे काम लेखक संघों के सूत्रधारत्व से नहीं संपन्न होते, फुटकर प्रयत्नों से ही होते हैं; पर किसी संघ के अनुमोदन के बिना भी मुझे अनुवाद-कार्य में जो साथी मिले उनका सहयोग मैं अपना सौभाग्य ही समझता हूँ। अनुवाद सब अंग्रेज़ी से किये गये हैं—लाचारी थी; पर यूगोस्लाविया से और वहाँ के साहित्य तथा साहित्यकारों से परिचय के सहारे मैंने उन्हें एक बार फिर देख जाने का प्रयत्न किया है और मुझे भरोसा है कि वे मूल की वस्तु, शैली, दृष्टि और आस्वाद के साथ अन्याय नहीं करते। यों अनुवाद तो उपपन्न कर्म हैं; उसमें सुधार और संशोधन की गुंजाइश हमेशा रहती है। अगले संस्करण के लिए इन अनुवादों को भी निस्संदेह और सँवारा जा सकेगा।

—सच्चिदानंद वात्स्यायन

क्रम

अनीका का ज़माना

अनुवादक
सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

पिछली सदी के छठे दशक में ज्ञान की तीखी प्यास और शिक्षा के माध्यम से ज़िन्दगी को बेहतर बनाने की आकांक्षा बोस्निया में दूर-दूर तक फैल गयी थी। यहाँ तक कि रोमानिया पर्वत श्रेणी या द्रीना नदी भी इस प्यास को दोब्रुन पहुँचने से और वहाँ के पल्ली-पुरोहित फ़ादर कोस्टा पोरुबोविच को प्रबुद्ध बनाने से नहीं रोक सकी। और ढलती आयु के फ़ादर कोस्टा अपने कमज़ोर और शर्मीले एकलौते बेटे वुयादिन को देख इस नतीजे पर पहुँचे कि किसी भी क़ीमत पर उसे शिक्षा मिलनी चाहिए। सरायेवो में व्यापार करने वाले कुछ दोस्तों की मदद से वह उसे स्रेम्स्की कार्लोव्सी भेजने में कामयाब हो सके कि 'कम से कम साल-दो साल धर्मशास्त्र ही पढ़े।' वह उतना ही पढ़ सका, क्योंकि दूसरा वर्ष खतम होते-होते फ़ादर कोस्टा की अचानक मृत्यु हो गयी। वुयादिन वापस आये, उनकी शादी कर दी गयी और उन्हें अपने पिता के इलाक़े में पुरोहिती का काम सौंप दिया गया। विवाह के पहले वर्ष में ही उनकी पत्नी की पहली सन्तान हुई। थी तो यह लड़की ही, पर अभी दोनों के पास बहुत समय था और यह निश्चित ही लगता था कि दोब्रुन में पोरुबोविच वंश की पुरोहिती अभी पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनी रहेगी।

लेकिन फ़ादर वुयादिन के साथ कहीं कुछ गड़बड़ थी। ठीक क्या, इसका पता नहीं चलता था; न ही कोई निश्चयपूर्वक कह सकता था कि कोई बात बिगड़ी हुई है। लेकिन हर आदमी को यह लगता था कि पुरोहित और यजमानों के बीच एक तनाव है। इस तनाव का कारण न तो फ़ादर वुयादिन के

युवा होने को माना जा सकता था और न उनके स्वभाव को; क्योंकि ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था तनाव घटने की बजाय बढ़ता जाता था। वुयादिन क़द के लम्बे और सुदर्शन थे जैसा कि पोरुबोविच वंश के लोग होते थे, लेकिन दुबले पीले और असाधारण रूप से मुरझाये हुए जान पड़ते थे; जवानी के बावजूद उनकी आवाज़ और आँखों से बुढ़ापा झाँकता था।

सन् १८७५ के आसपास, बोस्निया पर आस्ट्रिया के कब्ज़े के कुछ ही वर्ष पहले, फ़ादर वुयादिन पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। दूसरे बच्चे के प्रसव-काल में उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। उसके बाद से ही वह दुनिया से और कटते चले गये। अपनी नन्ही बिटिया को उन्होंने विशेग्राद में अपनी स्वर्गीया पत्नी के सम्बन्धियों के पास भेज दिया और दोब्रुन के गिरजाघर के पास अपने बड़े मकान में एक नौकर के साथ अकेले रहने लगे। पुरोहिती का काम वह नियमित रूप से ज़रूर चलाते रहे; अन्तिम संस्कारों में जाते, बपतिस्मा और विवाह कराते, और अनुरोध किये जाने पर प्रार्थना सभाएँ भी करते, लेकिन गिरजाघर के अहाते में किसानों के साथ गप-शप या पीने-पिलाने से वह दूर रहते, न ही क़र्ज़दारों से पावने के बारे में बहस में उलझते। क़स्बे के लोग, जो आदतन् किसी भी चुप्पे और उदास आदमी से शंकित रहते हैं और स्वस्थ बातूनी पुरोहितों को पसन्द करते हैं, फ़ादर वुयादिन से अपना मेल नहीं बैठा सके। कोई दूसरी कमी उनमें होती तो वे लोग अधिक आसानी से उन्हें क्षमा कर सकते। ऐसी छोटी जगहों में स्त्रियाँ ही किसी आदमी के प्रति अच्छी या बुरी राय क़ायम करती हैं; फ़ादर वुयादिन के बारे में उनका कहना था कि 'उसके सिर पर बिजली मँडराती रहती है।' वे गिरजाघर जाना पसन्द नहीं करती थीं और हमेशा उस 'अक्खड़ फ़ादर कोस्टा' का बहाना बना देती थीं।

"बोदा और मनहूस है वह!" किसान हमेशा उसके पिता से उसकी तुलना करते हुए 'स्वर्गीय कोस्टा पोरुबोविच कहा करते थे' की चर्चा पर आ जाते थे; कैसे वह मोटे थे, खुशमिज़ाज थे पर साथ ही बुद्धिमान और साफ़-गो थे; किसानों और तुर्कों से, कमज़ोर और ताक़तवर सभी से अच्छे सम्बन्ध रखते थे। फ़ादर कोस्टा की मृत्यु से सभी एक-से दुःखी थे। क़स्बे के बूढ़े लोग तो वुयादिन के बाबा याक्षा को भी (याकोन या रखवाल नाम से) याद किया करते थे। याकोन भी बिलकुल दूसरी ही तरह के आदमी थे: अपनी जवानी में वह हैदुकों में जा मिले

थे और इस पर उन्हें गर्व भी था। लोग उनसे पूछते कि उन्हें रखवाल क्यों कहते हैं, तो वह खुशी-खुशी जवाब देते :

"आह बेटे; जब मैं अभी रखवाल ही था तभी मैं हैदुकों में शामिल हो गया था। हर हैदुक का एक उपनाम अवश्य होता है, इसलिए वे लोग मुझे 'हैदुक रखवाल' कहकर पुकारने लगे। इस तरह वह नाम मेरे साथ चस्पाँ हो गया। लेकिन आगे चलकर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और सम्मान मुझ पर इस तरह बरसते गये जैसे घोड़े पर तीर बरसते हैं, मुझे हैदुक कहलाना अटपटा लगने लगा। इस तरह 'हैदुक' का पुँछल्ला यों झड़ गया जैसे मेढक की दुम झड़ जाती है और मैं फिर सिर्फ़ रखवाल रह गया।"

बूढ़े याकोन के घने बाल थे और लम्बी दाढ़ी जो नीचे को न बढ़कर अगल-बग़ल फैली हुई थी। वह उनके मरने तक सफ़ेद नहीं हुई बल्कि ललौंछ लिए हुए बेतरतीब रही। अक्खड़, दबंग, तेज़-तर्रार और चतुर--मसीहियों और तुर्कों दोनों में ही उनके सच्चे दोस्त और ख़तरनाक दुश्मन थे। उन्हें पीने का शौक़ था और बुढ़ापे में स्त्रियों की ताक में रहते थे। यह सब होते हुए भी वह लोगों को बहुत ही पसन्द थे और बहुत आदर पाते थे।

इसीलिए किसानों के लिए यह समझ पाना कठिन था कि वुयादिन क्यों ऐसे हैं। क्यों अपने पिता और बाबा की तरह नहीं हैं ? विधुर बाप के रूप में वुयादिन अपने जीवन के अकेलेपन में और अधिक डूबते गये और अधिक पस्त होते गये। उनकी दाढ़ी के बाल गिरते गये, वह पतली होती गयी, कनपटी पर बाल सफ़ेद होते गये, जबड़े झूल गये और दाढ़ी जाने कैसे सफ़ेद हो गयी जिससे कि चेहरे पर से उनकी बड़ी-बड़ी हरी आँखों और मटमैली भौंहों का आकर्षण जाता रहा। लम्बे, सीधे, सख़्त—वह तभी बोलते जब बहुत ही ज़रूरत होती—गहरी आवाज़ में बिना किसी लाग-लपेट और जोश के।

दोब्रुन गिरजाघर में पुरोहिती करते आये अपने परिवार के सौ वर्षों से अधिक के जीवन में एक ऐसे पुरोहित के रूप में जिसे शिक्षा का अल्पज्ञान ही सही प्राप्त था, फ़ादर वुयादिन अपने स्वभाव और अपनी आदतों की सीमाओं से भली भाँति परिचित थे। वह जानते थे कि लोग किस तरह का पुरोहित चाहते हैं और समझते थे कि जैसा लोग चाहते हैं वह उसके बिलकुल प्रतिकूल हैं। यह ज्ञान उन्हें यातना देता था लेकिन उन्हें कठोर भी करता था। और यजमानों के

साथ उनका आचरण और सख्त हो जाता था। धीरे-धीरे यह कठोरता उन लोगों के प्रति एक गहरी अनियंत्रित घृणा में बदल गयी।

एक विधुर जीवन की आम थकान और अनेक रूपों में परित्याग और संन्यास के भाव ने बहुत जल्दी ही बुयादिन और लोगों के बीच एक गहरी खाई पैदा कर दी। अपनी पत्नी की मृत्यु के पहले उन्हें यह पीड़ा थी कि वह लोगों से घुल-मिल नहीं पाते, स्नेह-सौहार्द नहीं जता पाते। अब यह पीड़ा और गहन हो गयी थी और वह ऐसी स्थिति में पहुँचने के लिए विवश हो गये थे कि जान-बूझ कर उनसे बहुत-सी बातें छिपाएँ जिसका परिणाम यह हुआ कि वह उनसे दूर होते गये यहाँ तक कि उनकी हर दृष्टि, हर शब्द यातना देता, एक बोझ होता एक व्यथा भरा संघर्ष बनता। अब वह खतरा भी बन गया था और स्वयं के टूट जाने के भय ने उन्हें और अधिक असुरक्षित और सशंकित बना दिया था।

इस प्रकार लोगों के प्रति उनकी घृणा बढ़ती गयी, उनमें बस गयी और एक छिपे विद्वेष-भाव ने उनमें नफ़रत का ज़हर भर दिया जो अबोध्य और अनभिप्रेत था लेकिन यथार्थ था। फ़ादर बुयादिन के जीवन का यह रहस्य था। वह स्वयं से और अपने सन्ताप से घृणा करते थे। ऐसे भी दिन थे जब पराजित और वृद्धावस्था की मार से झुके वह अपनी खिड़की में छिपकर घंटों खड़े रहते जिससे कि गाँव की औरतों को नदी की ओर कपड़े धोने के लिए जाते वक्त देख सकें। और जब वह झाड़ियों के पीछे अदृश्य हो जातीं तब वह घृणा से भरे आधे खाली घुटन भरे अपने कमरे में वापस लौट आते और उन औरतों को गन्दी से गन्दी गालियाँ देते। यह विवेकहीन घृणा उनके गले में अटक जाती, उनकी साँस भारी हो जाती और आवाज़ रुंध जाती। वह राहत या अभिव्यक्ति का कोई और मार्ग न पा ज़ोर से खखार कर थूकते। तब ग्रीष्मकाल की दमघोंट खामोश हवा में उन्हें होश आता और अपनी उग्रता का, उन भयानक गालियों का स्मरण और भय से वह जम जाते। उनकी रीढ़ और खोपड़ी में थरथराहट होती और एक जड़ विचार उन्हें कस लेता कि मैं पागल हो रहा हूँ।

ये दौरे उनके पूरे अस्तित्व को विदीर्ण कर रहे थे और अपना रोज़मर्रा का जीवन चलाना उनके लिए लगभग असम्भव हो गया था, पुरोहिती के कामों के बारे में कुछ कहना ही बेकार है। ऐसे दौरों के आध घंटे भी नहीं हो पाते कि उन्हें किसानों से बातें करनी पड़तीं और वह उनके सामने पीले पड़े, टकटकी बाँधे

बैठे होते, खोखली आवाज़ में उनके अनेक सवालों का जवाब देते, बपतिस्मा, प्रार्थनाओं और पूजा के दिन तय करते। और इन दोनों व्यक्तियों में अन्तर— एक वह जो अपने कमरे की छायाओं में प्रतीक्षारत पड़ा होता और दूसरा फ़ादर वुयादिन जो गिरजाघर के प्रांगण में बैठकर किसानों को सलाह देता—इतना था कि वह उसके भार से झुके जा रहे थे। आन्तरिक पीड़ा उन्हें आलोड़ित करती, ऐंठती, वह अपनी मूँछें दाँतों से काटते और उँगलियों से सिर के बाल नोचते। बस इतना ही आत्मनियंत्रण उनमें रहता कि वह किसानों के सम्मुख अपने ही पैरों पर न गिर पड़ें और चीखने लगें :

"मैं पागल हो रहा हूँ !"

और जब वह किसानों से बात कर रहे होते उन्हें निरन्तर यह ध्यान बना रहता कि वे लोग उनकी तुलना उनके स्वर्गीय पिता और उनके सम्बन्धियों से कर रहे हैं। और वह अपने पिता और अपने सभी सम्बन्धियों के प्रति नफ़रत से भर उठते।

वुयादिन के साथ जो कुछ भी घटता उससे उनकी अदृश्य कटुता और घृणा बढती ही, अकेलेपन में गुज़ारा गया हर दिन और आदमियों का हर सम्पर्क उस घृणा को ही मज़बूत करता जो कि उनके तन का, उनकी हर गतिविधि का, उनके भावों और विचारों का प्रतिरूप होता। यह घृणा बढती गयी और उनमें जो कुछ भी था उस पर छा गयी, वही उनके जीवन का एकमात्र तत्त्व बन गयी, किसी भी चीज़ से अधिक वास्तविक एकमात्र उसी का अस्तित्व रह गया जहाँ वह स्पन्दित होते। बहुत-से अच्छे, पुराने परिवारों के उत्तराधिकारियों की तरह लज्जालु, सम्मानप्रिय और सीधे-सादे होने के नाते वह अपनी इस हालत को जितना हो सकता छिपाये रखते थे। दो यथार्थ के बीच निरन्तर टूटते हुए भी उन्होंने सदैव अतिमानवीय प्रयास किया कि उस यथार्थ को देखना छोड़ दें जिसे दूसरे देखते हैं। लेकिन ऐसा दिन आखिरकार आया ही जब कि आन्तरिक जीवन उन पर हावी हो गया और फ़ादर वुयादिन को दूसरी ओर जाना ही पड़ा, उस विचित्र भूमि पर जहाँ वर्षों से उनका सारा आन्तरिक जीवन धकेल रहा था : खुले पागलपन के क्षेत्र में जो सबको साफ़ दिखाई देता था।

यह घटना फ़ादर वुयादिन के विधुर जीवन के पाँचवें वर्ष घटी। एक दिन सवेरे तड़के वह खेतों की ओर निकल गये और दोपहर तक चारों तरफ़ लोगों को

काम करते देखते रहे। वापस आते समय उन्हें पहाड़ी के नीचे देवदारु के वृक्षों के बीच एक खुली जगह में कुछ अजनबी लोग दिखायी दिये। उनकी संख्या पाँच थी, एक इंजीनियर, दो आस्ट्रियाई आफ़िसर, और दो स्त्रियाँ। कुछ दूर पर सईस घोड़ों की निगरानी कर रहे थे। एक कम्बल बिछा हुआ था और वे अपरिचित व्यक्ति उस पर बैठे हुए थे, आदमी नंगे सिर कोट के बटन खोले हुए और स्त्रियाँ हलके कपड़ों की फ्राक पहने हुए जिनकी सफ़ेदी आँखों में चकाचौंध पैदा करती थी। फ़ादर बुयादिन एक क्षण को ठिठके और फिर तेज़ी से पास की पहाड़ी पर चढ़ गये और एक झुके अधगिरे देवदारु के पेड़ से टिककर खड़े हो गये। उनका दिल धड़क रहा था और वह पसीने-पसीने हो रहे थे। देवदारु के पेड़ के पीछे खड़े वह नीचे उन अजनबियों को टकटकी बाँधे देख रहे थे जहाँ से वह कुछ बेढंगे और टेढ़े परिदृश्य में दिखाई दे रहे थे। यह दृश्य स्वप्न की तरह उन्हें बेचैन और उत्तेजित कर रहा था। और स्वप्न की ही तरह यह दृश्य भी असीम सम्भावनाओं से भरा हुआ लगता था; जितना ही अविश्वास्य उतना ही सम्भाव्य। अजनबी खा रहे थे और बारी-बारी से एक दमकते धातु के पात्र से कुछ पी रहे थे। यह भी उन्हें उत्तेजित कर रहा था। पहले तो फ़ादर बुयादिन को डर लगा कि कहीं उन लोगों को पता न लग जाये। इस बात को वह अच्छी तरह जानते थे कि यह कितना उपहासास्पद होगा यदि इन अपरिचितों को यह पता लग जाये कि एक पुरोहित देवदारु के टेढ़े पेड़ के पीछे छिपा हुआ इन दो औरतों को इस बुरी तरह घूर रहा है लेकिन धीरे-धीरे अनौचित्य का यह भाव और झिझक एकदम चली गयी। उन्हें पता नहीं चला कि वह कितनी देर तक इस तरह बदहवास देवदारु के तने के छिलकों को अपने नाखूनों से कुरेदते रहे। हो सकता है घंटों हो गये हों। अन्ततः एक स्त्री जो दोनों में से अधिक युवा लगती थी उठी और दोनों अफ़सरों के साथ पहाड़ी पर चढ़ने लगी। वह ठीक बुयादिन के नीचे से गुजरी जिससे कि वह उसके सिर का ऊपरी भाग देख सके। जब वह अपनी छड़ी की सहायता से लड़खड़ाती चढ़ाई चढ़ रही थी तो उसके कूल्हे लचक रहे थे और उसके सफ़ेद चेहरे पर हवा और घुड़सवारी के कारण लाल चकत्ते दिखाई दे रहे थे जैसा कि अक्सर स्वस्थ लोगों के चेहरों पर खाने-पीने के बाद ताज़ी हवा में दिखाई देता है। अन्य दोनों देवदारु के उस पेड़ के नीचे लेट गये थे और बिछा हुआ कम्बल उन्होंने अपने ऊपर डाल लिया था।

और चूँकि दृश्य समाप्त हो गया था। पुरोहित होश में आये, अपने को सँभाला और घर की राह पकड़ी, सावधानी से उस जोड़े से नज़र बचाते हुए जो देवदारु के पेड़ के नीचे पड़ा था और इस चिन्ता से ग्रस्त कि वह उन तीन व्यक्तियों द्वारा देखा जा सकता है जो अभी भी पहाड़ी पर चढ़ रहे थे।

तीसरे पहर तक सब ठीक रहा। अपने नौकर रैडवाय के कुछ पूछने पर फ़ादर बुयादिन कुछ इस प्रकार बहके-बहके से बुदबुदाये जिससे साफ़-साफ़ यह भी समझ में नहीं आया कि वह दोपहर के खाने के वक़्त क्यों इतने निढाल थे। अपने ख़ाली घर में इधर से उधर जाने में उन्हें बेहद भारीपन महसूस हुआ। पृथ्वी और स्वयं सारा दिन जस्ते की तरह उन पर लदा था और जीवन उन्हें सूखी लकड़ी और अंगारों की तरह लगता था जिसमें कहीं भी रस और मिठास न हो। उनकी उँगलियाँ राल से चिपचिपा रही थीं। एक उत्तेजक प्यास का वह अनुभव कर रहे थे। उनकी आँखें थकी हुई थीं और उनके क़दम भारी पड़ रहे थे। उन्होंने अपना दोपहर का खाना खाया और फिर गहरी नींद में सो गये।

जब आँख खुली तब उन्होंने अपने को और अधिक जड़ अनुभव किया। वह जंगल में हुए उन अपरिचितों के साक्षात् को भी स्मरण नहीं कर पा रहे थे जैसे कि वह कोई बहुत गहरी व्यथा हो। वह घर से निकल पड़े और एक पगडंडी द्वारा नज़दीकी रास्ते से पहाड़ी पर जंगल में पहुँच गये। उन्होंने नीचे देखा, देवदारु के पेड़ों के बीच की उस खुली जगह में अब कहीं कोई नहीं था। सूरज डूब चुका था। इधर-उधर कुछ काग़ज़ और कटे हुए टीन के डिब्बे घास में पड़े उस झुटपुटे में दमक रहे थे। मुलायम ज़मीन पर वह उन स्त्रियों के जूतों की गहरी टेढ़ी छाप बड़ी आसानी से पहचान सकते थे। वह उन पगचिह्नों को टटोलते चलने लगे जो आदमियों और घोड़ों की टापों के निशानों में मिले हुए थे जो कभी-कभी पकड़ में आ जाते थे और फिर खो जाते थे। उनके सिर की नसें भन्नाने लगीं। बढ़ते हुए अन्धकार में रास्ता और पगचिह्न दोनों ही खोने लगे। वह चौराहे तक पहुँच गये जहाँ पगडंडी समाप्त हो गयी थी और सड़क शुरू होती थी। बुयादिन ने सोचा, यहाँ वे लोग अपने घोड़ों पर चढ़े होंगे। अब वहाँ सन्नाटा था। काफ़ी अँधेरा हो चुका था। ख़ामोश चमकते आकाश में एक लकड़ी का खम्भा जो दिन में सीमा-चिह्न का काम देता था, दिखाई दे रहा था। वह नीचे ऊबड़-खाबड़ सड़क पर तेज़ी से उतरने लगे, सड़क के बराबर लगे बाड़े के साथ-साथ लड़खड़ाते हुए और तपते

हुए खेत के ढेलों को रौंदते हुए। आसमान साफ़ था लेकिन गर्मी कम नहीं हुई थी। साँस लेना मुश्किल था। हवा दम घोंट रही थी, जैसे कि अँधेरे में सिर के ऊपर लोहे का तहखाना हो। एक छोटे पहाड़ी चश्मे की क्षीण धारा उन्होंने पार की लेकिन उससे कोई ठंडक या ताज़गी नहीं मिली। उन्होंने अचानक अपने को अपने ही अलूचे के बग़ीचे में पाया जो उनके घर से दूर नहीं था। उसकी धुँधली आकृति अँधेरे में देखी जा सकती थी। थकान से चूर और जड़ता की स्थिति में वह फिसल कर गिर पड़े। वह कुछ देर उसी तरह पड़े रहे और फिर अचानक ही उनके सामने फिर उसी स्त्री की आकृति थी और उस आकृति के साथ एक सवाल भी : क्या मैंने सचमुच उन्हें देखा था या मैंने केवल उनकी कल्पना कर ली है? यह सवाल जो शुरू में साधारण और सादा था धीरे-धीरे उन्हें यातना देने लगा। उत्तेजना में वह कूद कर उठ बैठे। यह सच था या नहीं? हाँ, यह सच था, सच था। और वह फिर घास में लोट जाने ही वाले थे कि वह रुके और चारों तरफ़ देखने लगे।

चारों तरफ़ अँधेरा था, गाँव का उदास, भारी अँधेरा, जहाँ दूर की भी अवाज़ सुनाई दे सकती है लेकिन उसी तरह अकेली और सिहरन से भरी हुई जैसे भोर का अन्तिम सम्मोहन। और फिर कनपटियों पर एक दर्दनाक टपकन के साथ यह सवाल उठा : क्या वस्तुतः वे स्त्रियाँ थीं या उनकी कल्पना की उपजभर थीं। हर बार जब यह सवाल नये सिरे से उठता, वह काँप जाते।

भयातुर वह फिर चौराहे की ओर लौट पड़े। अँधेरे में लड़खड़ाये और अन्ततः उस लकड़ी के खम्भे तक पहुँच गये और अपने हाथों से उसे जकड़ लिया। वह झुक कर मिट्टी में पदचिह्नों को टटोलने लगे, चश्मे के किनारे जहाँ ज़मीन कुछ नम थी, वह घुटनों के बल झुककर बैठ गये और बार-बार अपनी उँगलियाँ ज़मीन पर चलाते रहे, भय से काँपते और यह पता लगाते कि दिन की वे आकृतियाँ कल्पना थीं या सच थीं। लेकिन उँगलियों से इस तरह टटोलकर वह कुछ नहीं पा सके।

"मैंने उन्हें देखा था, मैंने उन्हें देखा था," वह बुदबुदाये और दौड़कर वहाँ पहुँचे जहाँ वह बैठे थे और वहाँ भी अपनी जलती हुई उँगलियों से ज़मीन टटोलने लगे और अँधेरे में आँख फाड़-फाड़ कर देखने की कोशिश करने लगे बंडलों के उन कागज़ों को जिन्हें उन्होंने देखा था या उनका ख़्याल था कि उन्हें झुटपुटे में दिखाई दिए थे। अन्ततः उन्हें यह खोज समाप्त कर देनी पड़ी। वह धीरे-

धीरे चलकर ग्रलूचे के ग्रपने बग़ीचे में ग्रा गये, पराजित, जैसे कि ग्रपनी ही इन्द्रियों पर से ग्रपना विश्वास हमेशा के लिए जाता रहा हो। वह बहुत देर तक सख्त-गरम घास पर ग्रौंधे मुँह पड़े रहे, बाँहें फैलाए जैसे कि क्रॉस पर लटके हों, ग्रपनी ही हड्डियों ग्रौर मांसपेशियों के भार की कीलों से ठुँके हुए। ग्रचानक कुछ ग्राती हुई ग्रावाज़ों ने उन्हें चौंका दिया ग्रौर उनके ग्रर्द्धचेतन सपने तोड़ दिये। उनके पड़ोसी तासिख परिवार के खलिहान में ग्राग जल रही थी ग्रौर उसके चारों तरफ़ किसान बैठे बातें कर रहे थे। ग्राग की चमक में ग्रादमी ग्रौर ग्रौरतों की ग्राकृतियाँ चक्कर काटती ग्रौर फिर ग्रँधकार में खोती दिखाई दे रही थीं। ग्रावाज़ एक क्रम से चढ़-उतर रही थीं लेकिन इतनी दूरी से शब्द साफ़ पकड़ में नहीं ग्राते थे। तासिख परिवार गेहूँ की ग्रोसाई करने जा रहा था। दिन के समय जब बेहद गर्मी पड़ती ग्रौर हवा बंद रहती तब ग्रोसाई का काम रात को ही किया जाता था। रात के नौ के ग्रासपास पहाड़ी मैदानों की ग्रोर से ग्रवश्य ही हवा चलने लगती थी।

एक तरफ़ ग्राग जल रही थी, जवान छोकरियाँ मशाल लिये खड़ी थीं जिससे कि काम करने वालों को रोशनी मिल सके। उनकी फैली हुई बाँहों में सफ़ेद ग्रास्तीनें झूल रही थीं। वे स्थिर थीं, ज़रूरत भर को ही हिलती थीं जब मशाल एक हाथ से दूसरे हाथ में बदलनी पड़ती थी। किसान ग्रपनी दौरियों से हवा में ग्रनाज ग्रोसा रहे थे। मशालों की लाल रोशनी में वुयादिन को उड़ती हुई भूसियाँ ग्रौर गिरता हुग्रा ग्रनाज दिखाई दे रहा था जैसे कि भारी वर्षा हो रही हो। भूसी हवा में धीरे-धीरे तैरती हुई दूर जा गिरती ग्रौर ग्रँधेरे में खो जाती।

फ़ादर वुयादिन की उत्तेजना, जो सारे दिन उनमें फैलती रही थी, फिर भड़की ग्रौर एक नयी ऊँचाई पर जा पहुँची। वह काँप उठे ग्रौर हक़लाते हुए बोले :

"वे शान्त नहीं होंगी, यहाँ तक कि रात में भी ग्रँधेरे में ग्रपनी मशालें झुलाती ग्रौर ग्रपनी ग्रास्तीनें फहराती विचरेंगी।"

एक के बाद एक, सारे चित्र एक क़तार में उनके सामने से गुजरने लगे : विदेशी स्त्रियाँ जिन्हें उन्होंने देवदारु के पेड़ से छिपकर देखा था; वह झुटपुटा, ग्रँधेरे में खोये पदचिह्नों की बदहवास खोज; ग्रौर ग्रब यह खोखली रात ग्रौर ग्राग जिसने ग्रनाज ग्रोसाते ग्रादमियों ग्रौर उनके पास बाँहें फैलाए तैरती-सी ग्रौरतों की ग्राकृतियाँ चमका दी हैं। इस प्रकार उनका छिपा हुग्रा सम्पूर्ण ग्रस्तित्व उनके

सामने प्रकट हुआ तमाम यातना और पीड़ा से भरा हुआ जिसने उन्हें घृणा में बदल दिया था। उनके अस्तित्व के दूसरे पहलू के अन्तिम चिह्न भी खो गये : फ़ादर वुयादिन गिरजाघर में प्रार्थना कर रहे हैं, किसानों के दुखड़े सुन रहे हैं, बाज़ार के दिनों में शहर जा रहे हैं, स्त्रियाँ और डरे हुए बच्चे उनके लिए रास्ता छोड़ रहे हैं और श्रद्धानत भाव से उनके हाथ चूम रहे हैं। अब कुछ भी ऐसा नहीं था जो उनके इस अस्तित्व को पुन: प्रतिष्ठित कर सकता और उन्हें उन इच्छाओं को अभिव्यक्त करने से रोक सकता जिनकी ओर हर चीज़ उन्हें लिए जा रही थी। उस आदमी की तरह जिसका पीछा किया जा रहा हो, बुदबुदाते हुए वह असहज गति से अलूचे के अपने बग़ीचे को पार कर और एक अँधेरे गलियारे से अपने घर पहुँच कर उन्होंने खुद को एक कमरे में पाया जहाँ से गिरजाघर का आँगन और तासिख़ परिवार का खलिहान दिखायी देता था। कमरे की मेज़-कुर्सियों से टकराते हुए, जैसे उनके होने का उन्हें ज्ञान ही न हो, फ़ादर वुयादिन दीवार तक गये, जहाँ उनकी शिकार की राइफ़ल भरी हुई टँगी थी। उसे तुरत उतार कर और यहाँ तक कि बिना कन्धे पर ठीक से टिकाये हुए ही उन्होंने रोशनी भरे खलिहान की ओर गोली दाग दी। उस खिंचाव में कुछ अजीब-सा सुख था जिसने उनकी बाँहों को झटका दिया, गोया राइफ़ल उनके हाथों से कूद पड़ेगी। यहाँ तक कि गोली दागते समय राइफ़ल का जो ज़ोरदार झटका उनकी छाती में लगा वह भी सुखदायक था। दूसरी बार जब उन्होंने गोली दागी तब कहीं उन्हें चीख़ सुनाई दी जिसके बाद ज़ोर-ज़ोर से रोने की आवाज़ आयी। मशालें झूलीं और फिर गिर पड़ीं, काम करनेवाले भाग खड़े हुए, खलिहान में केवल आग रह गयी। पुरुषों की आवाज़ें सुनी जा सकती थीं लेकिन उन सबके ऊपर एक बूढ़ी औरत की चीत्कार छायी हुई थी जो अँधेरे को विदीर्ण कर रही थी।

"योवान, मेरा बेटा, लोग हमें मार रहे हैं।"

उस रात तासिख़ परिवार के खलिहान पर जो गोलियाँ दागी गयीं वे फ़ादर वुयादिन के रहस्यमय अस्तित्व के निर्णायक भेदन की सूचक थीं। उन्होंने चारों तरफ़ अँधेरे में देखा। एक बड़ा चाकू उन्हें अलमारी पर रखा दिखायी दिया। उसे उन्होंने मुट्ठी में कस कर पकड़ लिया और घर से उस रात में भाग खड़े हुए।

उन्होंने पैदल रिज़ाव नदी पार की जो उस मौसम में काफ़ी छिछली थी। नदी पार करके थकावट से चूर, हाँफते हुए वह बाल में झाऊ की हरी झाड़ियों

में बैठ गये। वह अभी भी स्वयं से बुदबुदा रहे थे। उन्होंने अपनी छाती और सिर पर ठंडा पानी डाला जैसे कि वह किसी घाव का उपचार कर रहे हों।

दूसरे दिन सारे गाँवों में यह खबर फैल गयी कि फ़ादर वुयादिन ने अपने पागलपन में तासिख़ परिवार पर कई बार गोली चलायी और फिर रिज़ाव के पार भाग गये। इस कहानी पर यक़ीन करना कठिन था। न यह किसी की समझ में आती थी, न ही इसे कोई समझा सकता था, विशेषकर क़स्बे के लोगों को जिनके मन में फ़ादर वुयादिन के लिए किसानों से अधिक आदर था। यद्यपि किसान हर चीज़ ज़्यादा ठंडे दिमाग़ से और ज़्यादा आसानी से समझ लेता है फिर भी वह जो कुछ हुआ उससे परेशान थे और अपनी तरह उनके लिए करुणा व्यक्त करते थे। बाज़ार-हाट के रास्ते में मिलने पर किसानों की स्त्रियाँ रुक कर एक-दूसरे का हाल-चाल पूछती थीं और फिर फ़ादर वुयादिन की चर्चा छेड़ती थीं और ईश्वर से प्रार्थना करती थीं कि करुणामय भगवान सबको राज़ी-ख़ुशी रखें।

उन दिनों विशेग्राद में भारी संख्या में सशस्त्र पुलीस रहती थी जो नेवी-सीनिया के विद्रोहियों को पकड़ने के लिए भेजी गयी थी। जल्द ही वे फ़ादर वुयादिन का पता लगाने के लिए गाँव-गाँव छानने लगे। किसानों ने सशस्त्र पुलीस को बताया कि उन्होंने उन्हें अमुक जंगल में फटेहाल, नंगे पैर-नंगे सिर, अपने हाथ में एक चाकू लिए हुए शिकार की घात में जंगली जानवर-सा घूमते हुए देखा है। लेकिन जब पुलीस वहाँ पहुँचती तो उनका कहीं पता नहीं चलता। वह पहाड़ों में भाग गये थे जहाँ गड़ेरियों को डरा-धमका कर वह उनके अलाव की आग के सहारे दिन काट रहे थे। एक ऐसे ही अलाव ने, जिसकी लपट दूर से दिखाई देती थी, उनका भेद खोल दिया। जब सशस्त्र पुलीस वहाँ पहुँची, उस समय पौ भी नहीं फटी थी, उसने उन्हें गहरी नींद में सोता हुआ पाया, आग लगभग बुझ चुकी थी। पुलीस को उन्हें हथकड़ी लगानी पड़ी क्योंकि वह क़ाबू आना नहीं चाहते थे।

दूसरे दिन सशस्त्र पुलीस ने फ़ादर वुयादिन को पूरे क़स्बे में घुमाया। उनके हाथ पीठ के पीछे हथकड़ी से बंधे थे। वह कुछ अस्वाभाविक तेज़ रफ़्तार से ऐंठ कर चल रहे थे। उनका नंगा सिर पीछे ढुलका हुआ था जिससे कि उनके लम्बे भूरे बाल कन्धों पर आ गये थे। वह अपना निचला होंठ दाँतों से दबाए थे और उनकी आँखें आधी बंद थीं। उनके चेहरे पर, जो आकाश की ओर उठा हुआ था,

पागलपन का कोई चिह्न न था। केवल एक गहरा शहीदाना दर्द था। जब वह अपनी दृष्टि नीची करते थे तभी उनकी उदासी का उनकी खूनी आंखें भंडा फोड़ देती थीं जिनमें समझ का भान नहीं था। हर व्यक्ति उन्हें देख द्रवित होता था। औरतें रो पड़ती थीं और अधिकारीगण परेशान थे।

सशस्त्र पुलीस ने बड़ी अनिच्छा से उन्हें हथकड़ी डाली थी लेकिन जब हथकड़ी हटायी गयी तब वह भाग निकलने की कोशिश करने लगे। अतः उन्हें बेड़ियाँ डाल कर सरायेवो भेज दिया गया। वहाँ कोवाखी के एक बड़े अस्पताल के आधे अँधेरें कमरे में वह दस वर्ष तक स्वयं से और इस दुनिया से अनभिज्ञ जिये।

दुर्भाग्यशाली फ़ादर वुयादिन के साथ पोरुबोविच परिवार का अंत हो गया। दोब्रुन की पुरोहिती के लिए एक अजनबी आ गया। और जब फ़ादर वुयादिन का सरायेवो अस्पताल में स्वर्गवास हुआ तब उन्हें लोग भूल चुके थे। किसानों में कभी-कभी चलते-फिरते उनकी चर्चा हो जाती थी ("गर्मियों में ही फ़ादर वुयादिन पागल हो गये थे") दूसरी ओर क़स्बे में फ़ादर वुयादिन के अंत ने ज़्यादा हलचल पैदा की और आदमियों के दिल और दिमाग़ पर काफ़ी दिनों तक वह छाये रहे। उनके लिए यह कोई अदृश्य अभिशाप था। यह मनस्ताप इतना अप्रत्याशित और विचित्र था कि दुर्भाग्यग्रस्त पुरोहित के साथ सहानुभूति प्रकट करते-करते उन्हें स्वयं अपने और अपने आसपास के सभी लोगों के भाग्य का पूर्वबोध होने लगता था। हर व्यक्ति उनके दुर्भाग्य का कारण सोचता और उसका विश्लेषण करता और इस तरह यह आशा करता कि वह अपने मन को शान्त कर सकेगा और उनकी दर्दनाक याद को धूमिल कर सकेगा। लेकिन सारी कोशिशों के बावजूद वह फ़ादर वुयादिन के जीवन में कुछ भी ऐसा नहीं पा सके जिससे उनके इस विचित्र अंत पर प्रकाश पड़ता। वुयादिन की नियति उनका सामना करती रही, कठोर, सरल, अबोध्य; अनमना बालक, अकेली जवानी, दुखी आदमी।

अन्ततः वुयादिन की स्मृति और उनकी यातना धीरे-धीरे धुँधली पड़ने लगी, यहाँ तक कि क़स्बे के लोगों तक में लेकिन वह और ज़मानों की और दुर्घटनाओं की स्मृतियाँ जगाती रहीं जिन्हें दीर्घकाल से भुलाया जा चुका था। पोरुबोविच परिवार के बारे में बातचीत करते हुए, उदाहरणार्थ, लोग वुयादिन और उनके पिता और उनके पितामह दोब्रुन के पुजारी मेलन्तिया तक ही अपने को सीमित नहीं रखते बल्कि उनसे होकर अनीका के ज़माने तक पहुँच जाते।

मुल्ला इब्राहीम कूका पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अनीका का उल्लेख किया। वह ऐसे आदमी थे जो अपने को विद्वान और रहस्यमय दिखाना पसन्द करते थे लेकिन वस्तुतः आलसी, रहमदिल और अज्ञानी आदमी थे जो अपने पितामह की प्रतिष्ठा और आय पर ज़िन्दगी बसर करते थे। पितामह प्रसिद्ध मुतवल्लिया मुल्ला मुहम्मद समझदार और ज्ञानी पुरुष थे जो एक सौ एक वर्ष की आयु में स्वर्ग सिधारे थे। मुल्ला मुहम्मद ने जो किताबें और काग़ज़ात छोड़े थे उनकी कई पीली जिल्द की मोटी कापियाँ थीं जिनमें उन्होंने यह सब-कुछ नोट कर रखा था जो उनके क़स्बे में घटा था। साथ ही दुनिया की वह सब खबरें भी अंकित थीं जिनका उनको ज्ञान था। बाढ़, फसलों का चौपट होना, पास और दूर की लड़ाइयाँ, सब कुछ उनमें दर्ज था। इतना ही नहीं, सूर्य और चन्द्रग्रहण, आकाश के रहस्यमय संकेत और दृश्य और हर वह चीज उनमें लिखी थी जो उन दिनों क़स्बे को, क़स्बे के लोगों को उत्तेजित करती थी। एक इस समाचार के बाद ही, कि जर्मनी के एक नगर में एक राक्षस पैदा हुआ है (और चूँकि वह एक फुट ही लम्बा था, उसे सबको देखने के लिए एक बोतल में बन्द करके रख दिया गया है) यह समाचार था कि बोनापार्ट नामक एक मसीही जनरल मिस्र पार करके सुलतान से लड़ने के लिए पहुँचा। और कुछ पृष्ठों बाद यह विवरण था कि किस प्रकार बेलग्राद के एक प्रान्त में रियाया ने विद्रोह कर दिया है और किस तरह बुरे लोगों द्वारा भड़काये जाने पर उन्होंने तोड़-फोड़ और हिंसा के कृत्य किये हैं। इस विषय के बाद निम्नलिखित दर्ज था :

"उसी वर्ष एक नौजवान स्त्री, एक मसीही पर (ईश्वर सभी काफ़िरों का हतबुद्धि कर देता है) पाप सवार हो गया और उससे इतनी हलचल पैदा हुई और उसे इतनी शक्ति मिली कि उसकी कुख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। अनगिनत आदमी, जवान और बूढ़े दोनों—सभी ने उसकी सोहबत की और बहुत-से नौजवान उसके चक्कर में फँस गये। सत्ता और क़ानून दोनों को उसने अपने पैरों से कुचल कर रखा। लेकिन उसे समझने वाला भी कोई मिला और वह जिस योग्य थी उसी तरह कुचली गयी और लोग फिर उसी तरह सरल भाव से ईश्वर के आदेशों की चर्चा करने लगे।"

मुल्ला इब्राहीम ने काफ़ी हाउस में जमा लोगों को यह पढ़कर सुनाया और बुज़ुर्गों ने बहुत पहले अपने बचपन के दिनों में अनीका के ज़माने के बारे में,

मसीहियों और सभी धर्मनिरपेक्ष तथा आध्यात्मिक सत्ताधारियों से अनीका की लड़ाई के बारे में विशेषकर दोब्रुन के पुरोहित मेलन्तिया से उसके संघर्ष के बारे में जो कुछ सुना था उसे याद करने की कोशिश की। बहुत कुछ इसके बारे में बहुत पहले ही भुलाया जा चुका था लेकिन जब उसकी कहानी फिर प्रकाश में आयी तो उस पर बहुत चर्चा रही और वस्तुतः 'अनीका का ज़माना' फ़िकरा बाद में चलकर बातचीत में बतौर हवाले के इस्तेमाल किया जाने लगा।

घटना इस प्रकार थी।

२

क़स्बे में जहाँ आदमी और औरत भेड़ों की तरह एक-से दीखते हैं, कभी-कभी हवा में उड़कर आये बीज की तरह संयोग से ऐसा बच्चा जनम लेता है जो भ्रष्ट होता है और सामान्य व्यवस्था से पृथक् दिखाई देता है, दुर्भाग्य और गड़बड़ी तब तक पैदा करता है जब तक स्वयं ही समाप्त नहीं होता और फिर कहीं जाकर पुरानी व्यवस्था पुनः प्रतिष्ठित होती है।

अनीका का बाप मार्किो क्रनोयेलात्स विशेग्राद में नानबाई का काम करता था। अपनी युवावस्था में अपने जनाने सौन्दर्य के लिए वह प्रसिद्ध था, पर जल्द ही उसकी उम्र ढल गयी। एक बार वह अलूचे के अपने बग़ीचे में घूम रहा था कि उसने देखा एक किसान अपने लड़के के साथ उसके पेड़ों से अलूचे तोड़ रहा है, उसने एक डंडा उठाकर मारा और किसान की वहीं, उसी क्षण मृत्यु हो गयी। लड़का भाग गया। उसी सुबह पुलीस ने मार्किो को गिरफ़्तार कर लिया। उसे सरायेवो के पास विदिन जेल में छः साल की क़ैद दी गयी। आने-जाने वाले यात्री बताते थे कि पैरों में खड़खड़ाती बेड़ियाँ डाले वह और क़ैदियों के साथ जूटा ताबिया के लिए चूने के पत्थर ढोता दिखायी देता है।

विदिन की जेल में मार्किो चार साल रहा। जब वह छूटकर वापस विशेग्राद आया तो अपने साथ नयी बीवी भी लाया। उसकी पहली बीवी, जिससे उसके

कोई बच्चा नहीं था, जिन दिनों वह जेल काट रहा था उन्हीं दिनों स्वर्ग सिधार गयी थी। उसने फिर नानवाई का काम शुरू कर दिया और पहले की तरह शान्तिपूर्वक जीवन बिताने लगा।

उसकी दूसरी बीवी का नाम अंजा था। वह उम्र में उससे कहीं छोटी थी; कमर थोड़ी झुकी हुई, आँखों में स्थिरता और थकान झलकती थी। उसकी चाल-ढाल में थोड़ा विदेशीपन था। क़स्बे के लोगों ने न तो उसे कभी पसन्द ही किया और न उसे आदर दिया। आम तौर से लोगों की यह धारणा थी कि क्नोयेलात्स उसे जेल से लाया है और वे उसे जेल के ही नाम पर विदिनिका कहकर पुकारते थे। मारिको ने इसे झूठ साबित करने की बहुत कोशिश की, लाख यह कहा कि वह एक नानबाई की लड़की है जिसकी दूकान पर उसने जेल से छूटने के बाद कुछ दिन नौकरी की थी, पर उसकी एक न चली।

यही औरत अनीका की माँ थी। मारिको के इससे एक लड़का भी था जो अनीका से एक साल बड़ा था। वह दुबला-पतला, कमज़ोर और लम्बा था। आँखें सुन्दर और हँसती हुई थीं लेकिन दिमाग कमज़ोर था। लोग उसे लाले कहते थे। बचपन उसने माँ से साथ लगे-लगे बिताया और बाद में बाप के साथ भट्टी पर काम करने लगा। दूसरे लड़कों की संगत में वह कभी नहीं घूमा-फिरा। न सिगरेट पी न शराब, न ही लड़कियों की ताक-झाँक में रहा।

किसी के लिए भी यह याद करना बहुत मुश्किल था कि अनीका किस तारीख को पैदा हुई या किस तरह पली-पुसी।

सबसे कटी हुई दूर-दूर रहने वाली अपनी माँ के साथ रहकर वह एक दुबली-पतली लम्बी लड़की के रूप में बड़ी हुई जिसकी बड़ी आँखों में अविश्वास और दर्प था और जिसका मुख उसके छोटे चेहरे पर बहुत बड़ा दीखता था। वह बढ़ी लेकिन ऊपर की तरफ़। उसकी माँ उसके चेहरे पर इस तरह रूमाल बाँध देती कि उसके बाल दिखायी नहीं देते जिससे कि वह और दुबली-पतली और विचित्र दीखती। इकहरे तने हुए शरीर की यह छोटी लड़की अपना सिर झुकाये रहती जैसे अपनी लम्बाई पर उसे शर्म आती हो, उसके होंठ कसे हुए, उद्धत और उसकी आँखें नीचे झुकी हुई रहतीं। कोई ताअज्जुब नहीं कि क्नोयेलात्स की बिटिया की ओर लोगों का इतना कम ध्यान गया जो न तो देखने में ही इतनी सुन्दर थी न ही इतना ज़्यादा बाहर निकलती थी, अगर जाती भी थी तो थोड़ी देर के लिए

अपने बाप की दूकान तक।

उस बार बिना बर्फ़ की लम्बी नम सर्दी बहुत पहले ही शुरू हो गयी थी—एक दैवी प्रकाश से मंडित। जुलूस कीचड़ में पैर रखता जा रहा था। चर्च के झंडे चमक रहे थे और लोगों की आँखें असामयिक, अस्वास्थ्यकर धूप में मिचमिचा रही थीं। जिस पानी से उन्होंने सलीब निकाला था वह वसन्त की तरह हरा था और लहरा रहा था।

ज्यों ही जुलूस ने चर्च में प्रवेश किया, एक और आश्चर्य दिखाई दिया: क्नोयेलात्स की लड़की। यद्यपि वह अब भी दुबली-पतली थी लेकिन इन सर्दियों में काफ़ी बदल गयी थी। उसका रंग दूध-सा सफ़ेद हो गया था, आकृति तनी हुई थी और वह हर तरफ़ से भर गयी थी; आँखें और बड़ी-बड़ी हो गयी थीं और मुँह पहले से छोटा लगने लगा था। वह साटन का एक असाधारण काट का घाँघरा पहने थी। क़स्बे के लोगों की आँखें उसकी तरफ़ घूम गयीं। उन्हें आश्चर्य था कि यह लड़की कौन है और क्यों चर्च में अकेली आयी है। वस्तुतः ऐसा लगता था जैसे कि वह किसी दूसरे शहर से, किसी अजीब दुनिया से आयी है।

अनीका धीरे-धीरे एक निराली चाल से भीड़ चीरती हुई चल रही थी, न तो चारों ओर देख रही थी और न उनको जो उसे घूर रहे थे। उसकी दृष्टि सीधी चर्च के प्रांगण के द्वार पर लगी थी जिधर वह बढ़ रही थी। द्वार पर वह एक ख़ूबसूरत नवयुवक से लगभग टकरा-सी गयी जिसका नाम मिहाइलो निकोलिन था लेकिन जिसे लोग विदेशी कहते थे। इस तरह टकराने से दोनों ही कुछ झिझके (मिहाइलो अनीका से अधिक) लेकिन वे एक-दूसरे के पीछे दरवाज़े की सीढ़ियों की ओर लगभग एक साथ ही बढ़ गये।

दैवी प्रकाश के बाद के रविवार को अनीका और मिहाइलो उसी चर्च द्वार पर मिले। लेकिन इस बार आकस्मिक नहीं, मिहाइलो उसकी प्रतीक्षा कर रहा था और सीधे उसके साथ हो लिया। यदि क़स्बे के लोगों को अनीका के आकस्मिक रूपान्तरण से आश्चर्य हुआ था तो उतना ही आश्चर्य उन्हें मिहाइलो को देखकर हुआ था, जो कभी लड़कियों के साथ नहीं घूमता-फिरता था लेकिन आज जो अनीका की प्रतीक्षा ही नहीं कर रहा था बल्कि उसे उसके घर भी छोड़ आया था। क़स्बे में क्नोयेलात्स की लड़की की चर्चा रुकी नहीं जो अप्रत्याशित रूप से इतनी जवान हो गयी थी और वह भी इस तरह ढली थी कि क़स्बे की अन्य सभी

औरतों से बिलकुल अलग दीखती थी।

क़स्बे के लोगों के सामने अनोका के पहली बार आने से जितनी उलझन क़स्बे को हुई थी उतनी ही अनीका को भी हुई। उसके चारों तरफ़ जो कुछ था उसे वह नयी आँखों से देख रही थी। और चूँकि वह पहली बार अपने शरीर के प्रति जागी थी वह अपने को सजाने-सँवारने लगी थी और इस बात का प्रयत्न करने लगी थी कि और अधिक सुन्दर दीखे।

वसन्त उस बार बहुत धीरे और डर-डरकर आ रहा था। जब मौसम सुहावना होता अनीका अहाते में निकलती और आंखें मूंद-मूंदकर गहरी-गहरी साँसें लेने लगती। घूमते-घूमते वह थक जाती और जब वापस घर में जाती उसे अपना कमरा इतना अँधेरा और ठंडा लगने लगता कि उसे कँपकँपी छूट जाती, वह फिर बाहर निकल आती। और जब सूरज अहाते की दीवार की ओट जाकर डूब जाता और छायाएँ गहरा जातीं तो वह दौड़कर एक टीले पर चढ़ जाती जिससे कि एक बार फिर सूर्य के ताप को समेट सके। जिस दिन ठंड अधिक होती और हवा में ठिठुरन होती, अनीका अपने कमरे में रहती, अँगीठी जला उसके पास बैठी आग की लपटों को देखती रहती। अपने बटन खोलकर अपने हाथ बग़ल के थोड़ा नीचे रखती जहाँ से कि किसी नवयौवना के उरोज पसलियों से अलग होते हैं। वहाँ की चमड़ी कसी हुई और विशेषकर चिकनी होती। उस स्थल को वह अक्सर घंटों दबाये अंगीठी की आग को और अंगीठी के छोटे-छोटे सूराखों को देखती रहती जो आँखों की तरह लगते और इस पूरे समय वह कुछ कहती रहती जैसे कि कमरे की चीज़ों से बात कर रही हो। लेकिन जब उसकी माँ उसे कुछ करने के लिए बुलाती, उसे अपने हाथ हटाने पड़ते, बटन लगाकर घर से बाहर निकलना पड़ता तो वह चौंक जाती जैसे कि उसकी तन्मयता भंग हो गयी हो। और जब फिर वापस आकर आग के पास बैठती तो वह काफ़ी देर तक अपने को व्यवस्थित नहीं कर पाती। उसे लगता कि अब फिर उस स्थान को वह नहीं पा सकेगी जहाँ उसका हाथ था, जैसे कि कुछ ही देर पहले कोई आँधी उसकी बहुत ही प्यारी चीज़ उससे छीन कर उड़ा ले गयी हो।

इस प्रकार क्नोयेलात्स की लड़की अपने ही बारे में अपने ख़यालों में डूबी रहती, चुपचाप, हर एक से उदासीन लेकिन दिन-प्रतिदिन अधिक सुगठित और सुन्दर होती जाती। उसके दिन बहुत ही तेज़ी से और रहस्यमय ढंग से गुज़रते

जाते : ग्रीष्म, शरत् और फिर शीत। रविवार को और छुट्टियों के दिन अनीका चर्च जाती। उसके साथ एक दुबली-पतली, मरियल पड़ोस की लड़की होती। शुरू में तो मिहाइलो नियमित रूप से उससे चर्च के प्रांगण में मिलता, कुछ बात करता। लेकिन आगे चलकर अन्य नवयुवक उससे मिलने लगे। सर्दियाँ आते-आते क्नोयेलात्स की यह दुबली-पतली भीरु लड़की एक लम्बी सुन्दर औरत बन गयी और आदमियों की कामना और स्त्रियों की गपशप का मुख्य केन्द्र हो गयी।

उन्हीं सर्दियों में मारिको की मृत्यु हो गयी। उसके लड़के लाले ने बाप का काम सँभाला। किशोर और कमज़ोर दिमाग़ का होते हुए भी उसने अपने को एक अच्छा नानबाई सिद्ध किया और उसके बाप के ग्राहक उससे बँधे रहे।

अंजा, जो अब तक एक परछाईं की तरह जी रही थी, और अधिक दुबली हो गयी और झुक गयी। उसकी लड़की, जिसे उसने कभी पसन्द नहीं किया और न ही जिससे उसकी पटती थी, उस उम्र में पहुँच गयी थी जब लड़कियाँ आत्म-केन्द्रित और अन्तर्मुखी हो जाती हैं, अपने माता-पिता और पास-पड़ोस की परवाह नहीं करतीं। अपने पति की मृत्यु के साथ-साथ अंजा का इस नगर से एकमात्र सम्पर्क भी खो गया। उसने बातचीत करना लगभग एकदम बन्द कर दिया। वह रोयी नहीं। अपने चारों तरफ़ की हर चीज़ को वह तटस्थ दृष्टि से देखती उसी वर्ष चुपचाप प्रच्छन्न रूप से चल बसी। अनीका को इतना भी मौक़ा नहीं मिला कि अपने पिता की मृत्यु पर पहने शोकवस्त्र भी उतार पाती।

अनीका अकेली नहीं रही, उसकी बुआ प्लेमा उसके पास आकर रहने लगी। प्लेमा मृत मारिको की सौतेली बहिन थी, वृद्धा, अल्पदृष्टि विधवा, जिसकी युवावस्था सुखद नहीं थी, उथल-पुथल से भरी हुई थी। लेकिन उसको अब इतने दिन गुज़र चुके थे कि दूसरों की बात तो दूर स्वयं उसे भी ठीक-ठीक याद नहीं रह गया था कि क्या-क्या हुआ था। इस प्रकार अनीका के एक ओर उसका अल्प-बुद्धि भाई था दूसरी ओर अल्पदृष्टि बुआ। माता-पिता की मृत्यु ने उसके चारों तरफ़ एक रिक्तता भर दी थी। शोकवस्त्र उसके अद्वितीय सौन्दर्य और उसके आकर्षक रूप-विन्यास को ही रेखांकित करते थे।

वह अपने भाई से लम्बी थी और अभी भी बाढ़ पर थी। वस्तुतः वह निरन्तर बदल रही थी। उसकी निगाहें चंचल हो गयी थीं, उसकी काली आँखों में रतनारी आभा आ गयी थी, उसकी त्वचा और अधिक सफ़ेद, तथा उसकी चाल

और अधिक मन्थर और सहज हो गयी थी। क़स्बे में अनीका का विवाह किससे होगा इस पर अटकलें लगायी जाती थीं। इसी तरह चर्च में नवयुवक भी अटकल लगाते थे। वह उन सबको उदासीनता से देखती और उनकी बातें चुपचाप सुन लेती लेकिन ख़ुद बहुत कम बोलती। और जब बोलती भी तो शान्त और भारी आवाज़ में बिना अपने सुडौल लेकिन पीले अधर खोले हुए। बहुधा उसके एकाक्षरीय बयान अपने पीछे एक हल्की-सी प्रतिध्वनि भी नहीं छोड़ते बल्कि कहे जाने के तुरत बाद ही विलीन और विनष्ट हो जाते। उसकी आवाज़ और उसके कथन की नहीं बल्कि उसके रूप की ही छाप सबसे प्रबल पड़ती।

जितनी ही वह विलक्षण और रहस्यमय होती गयी क़स्बे में उतनी ही इस बात की चर्चा बढ़ती गयी कि उसका पति कौन हो सकता है। मिहाइलो का नाम इस सन्दर्भ में अक्सर लिया जाता।

मिहाइलो छः साल पहले क़स्बे में मास्टर निकोला सुबोतीख़ के पास शिक्षार्थी बन कर आया था। इसके पूर्व दो वर्ष सरायेवो में सुबोतीख़ स्टोर में वह काम कर चुका था। मास्टर निकोला चौपायों और खाल का व्यापार करते थे और चूँकि व्यापार में उनकी बड़ी दिलचस्पी थी वह सबसे धनी व्यापारियों में होते यदि आवारागर्दी और जुए की लत उनमें न होती। वह कहीं भी जम कर नहीं रह सके। युवावस्था में ही वह विधुर हो गये थे और फिर उन्होंने कभी विवाह नहीं किया। वह अदम्य साहस और असाधारण बल और बुद्धि के व्यक्ति थे। व्यापार और जुआ दोनों में ही उनका भाग्य काफ़ी साथ देता था। सौभाग्यशाली निर्णयों में उनका एक निर्णय जो आठ साल पहले उन्होंने लिया था वह था मिहाइलो को तीन ग्रासचेन के वेतन पर शिक्षार्थी के रूप में लाना और आगे चलकर उसे साझेदार बनाना। जब कि मास्टर निकोला निरन्तर ताश के पत्तों पर अपना भाग्य आज़माते इधर-उधर घूमा करते थे जिससे अन्त में आदमी का हाथ ख़ाली ही रहता है, मिहाइलो उनका घर चलाता था और विशेग्राद में उनकी दूकान। वह परिश्रम से काम करता था और लाभ को बराबर-बराबर ईमानदारी से बाँट लेता था। इस दृढ़ आचरण के कारण अन्ततः मिहाइलो को क़स्बे में सम्मान मिला। निःसन्देह शुरू में क़स्बे के लोगों ने उसे उसी तरह स्वीकार किया था जैसा कि किसी बाहरी आदमी को स्वीकार करते हैं, उग्रता और अविश्वास के भाव से। लेकिन उसे दो चीज़ें--सम्पत्ति और हैसियत प्राप्त थीं जिनके बल कोई

क़स्बे में अपने को बनाये रख सकता हैं।

वह अपने मालिक के घर में रहता था जिसकी देख-भाल एक बुढ़िया करती थी; वह तब से थी जब मास्टर निकोला का विवाह हुआ था। योग्य, पढ़ा-लिखा और काम में लगन के कारण मिहाइलो को अपने मालिक के कारोबार का काफ़ी बड़ा हिस्सा ही नहीं मिला बल्कि उसको चलाने की ज़िम्मेदारी भी मिली। सुचारु ढंग से काम करने की उसकी आदत के अतिरिक्त ऐसा लगता था कि वह जुट कर काम इसलिए करता है जिससे कि क़स्बे के लोगों में एक हो सके। वह वह सब करता था जो क़स्बे के अन्य नवयुवक करते थे, लोगों के साथ मिलता-जुलता, पीता-पिलाता और गाता-बजाता था। उसके विवाह के बड़े प्रस्ताव आये लेकिन उसने हर एक को मना कर दिया; या तो उन्हें हँसकर टाल दिया या उन पर चुप्पी साध ली। इसलिए लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ जब दो सर्दियों पहले वह अनीका से मिलने-जुलने लगा था; लेकिन यह कहना और ज़रूरी है कि लोगों को उससे भी ज़्यादा आश्चर्य इस बात पर हुआ था कि उसने अचानक अनीका से मिलना-जुलना बन्द कर दिया। क़स्बे के लोग अटकलें लगाते थे कि क्नोयेलात्स की लड़की में, जो उनके लिए इतनी रहस्यमय थी, और मिहाइलो में, जो उनके लिए इतना नया था, क्या हुआ होगा। और वे अटकलें लगाते ही रहे। इस घिसे-पिटे क़स्बे में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसे यह पता चला हो कि मिहाइलो और अनीका क्यों अलग हो गये, क्योंकि कोई भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि मास्टर निकोला के इस साझेदार के शान्त और परिश्रमी मुहरे के पीछे क्या छिपा हुआ है।

मिहाइलो का वंश संजक का था लेकिन उसके पितामह संजक से प्रिज़रेन आकर बस गये थे। पीढ़ियों से उसके परिवार में बन्दूक़ बनाने का कारोबार चला आ रहा था। प्रिज़रेन में मिहाइलो के बाप ने इसी कारोबार में काफ़ी धन कमाया था। उसका एक भाई पुरोहित था और चूँकि मिहाइलो पढ़ा-लिखा था और किताबों से प्रेम करता था, लोग चाहते थे कि वह भी वही काम करे। इसके अतिरिक्त, चार पीढ़ियों से बन्दूक़ बनाने का काम करते रहने के कारण परिवार आराम से रहता था और अपनी सम्पत्ति के अनुरूप सुरुचि भी अपना सका था। मिहाइलो के पिता की युवावस्था में ही मृत्यु हो गई थी अतः मिहाइलो अपने भाई के साथ बन्दूक़ बनाने का काम करने लगा।

दोनों भाई साथ-साथ रहते और काम करते थे। मिहाइलो के भाई की उम्र तेईस वर्ष थी लेकिन न तो वह खुद अपना विवाह करता था और न ही अपने छोटे भाई को अपने से पहले विवाह करने की अनुमति देता था। क्योंकि मिहाइलो में स्त्री की कामना बलवती थी अतः उसे काफ़ी यातना भी भोगनी पड़ती थी, लेकिन इस बात को लेकर अपने भाई से उलझने में उसे बहुत लज्जा आती थी। निरन्तर यातना की ऐसी हालत में वह एक दिन क्रिस्तिनित्सा की सराय में, जो लवे सड़क था, पहुँच गया। वह लियूबिज़्दा की अपनी छोटी-सी ज़मींदारी से वापस लौट रहा था।

उस समय गर्मी थी और सराय में सिवा क्रिस्तिनित्सा के और कोई नहीं था। वह हट्टी-कट्टी कोई तीस साल की औरत थी। बातचीत के दौरान वह मिहाइलो के बिलकुल करीब आ गयी। मिहाइलो का सारा शरीर काँपने लगा। उसने अपना हाथ बढ़ाया जिसका कोई प्रतिवाद उसकी ओर से नहीं हुआ। उसी समय उसका पति ऋस्तो कुछ दूर पर दिखायी दिया। वह रुग्ण, चिड़चिड़ा आदमी था। उसकी स्वस्थ और चौकस बीवी का उस पर पूरा आधिपत्य था। उसने मिहाइलो से फुसफुसा कर कहा कि वह दूसरे दिन शाम को आये। उस रात वह ठीक से सो नहीं सका। दूसरे दिन शाम को जब वह उत्तेजित-हाँफता हुआ सराय में पहुंचा, तो उसे यक़ीन नहीं था कि यह सम्भव है या यह दरअस्ल हो सकेगा। और जब उसने उसका स्वागत किया और एकान्त कमरे में ले गयी, तो उसे ऐसा लगा कि एक असह बोझ उस पर से उतर गया है और ईश्वर की पूरी खूबसूरत दुनिया उसके सामने खुल गयी है।

उस महीने में वह दो बार रात में छिपकर क्रिस्तिनित्सा के पास गया और लौट आया। क़स्बे में किसी को इसकी हवा भी नहीं लगी। उसने कभी ऋस्तो के बारे में नहीं सोचा; जो कि सच तो यह है, आदमी की केवल परछाईं था, न ही उसने जो कुछ क्रिस्तिनित्सा कहती थी उस पर ध्यान दिया—भविष्य, अपने घोर दुर्भाग्य, ईश्वर को उसके ऊपर दया आनी चाहिए, और कैसे वह उसे कभी इस भार से मुक्त करे।

मिहाइलो जब चौथी बार सराय में गया उसने क्रिस्तिनित्सा को बाड़े के पास हमेशा की तरह नहीं पाया। कुछ देर की इन्तज़ारी के बाद उसी एकान्त कमरे से जहाँ उसने क्रिस्तिनित्सा के साथ रातें बितायी थीं, झगड़ने की आवाज़

आती हुई सुनाई दी। वह भय से स्तंभित रह गया लेकिन किसी तरह कमरे तक गया और दरवाज़ा खोलने पर उसने देखा कि क्रस्तो और क्रिस्तिनित्सा गुत्थम-गुत्था हैं। क्रस्तो ने अपने दाहिने हाथ में कुल्हाड़ी उठा रखी है लेकिन उसकी बीवी इस तरह से उससे चिपकी हुई है कि उसका कुल्हाड़ीवाला हाथ बिलकुल जड़ और असहाय हो गया है। दोनों निढाल हाँफ रहे हैं, एक-दूसरे को गालियाँ दे रहे हैं और टूटे-फूटे वाक्य कह रहे हैं जिनसे पता चलता था कि झगड़ा किस बात पर हुआ जिसका यह नतीजा है। भयभीत और आश्चर्यचकित मिहाइलो उस समय देहरी पर पहुँचा जब क्रिस्तिनित्सा किसी तरह अपने पति को फ़र्श पर पटकने में सफल हो चुकी थी। उसके साथ-साथ वह भी गिर पड़ी थी लेकिन एक क्षण के लिए भी उसने उसका वह हाथ नहीं छोड़ा था जिसमें उसने कुल्हाड़ी पकड़ रखी थी। वह उसके ऊपर इस तरह गिरी थी जैसे बर्फ़ फिसलती है या पानी टूटता है, अपने को इस तरह साधे हुए जैसे कि कहीं से एक चट्टान फेंकी गयी हो। वह उसे अपने हाथों, घुटनों, छाती तथा अपने पूरे वज़न और ताक़त से जकड़े हुए थी। क्रस्तो अपने को छुड़ाने के लिए घबराया हुआ पूरी ताक़त से अपने पैर चला रहा था और वह उसके ऊपर मज़बूती से फैली हुई थी अपने पूरे शरीर से यहाँ तक कि अपनी ठोढ़ी से, जिससे कि वह उठ न सके। अपनी छोटी से छोटी पेशी भी उसपर से हटाकर अपना दबाव कम करने की इच्छा न रखते हुए उसने एक दृष्टि मिहाइलो पर डाली और अपनी सांस बटोरकर, जैसे कि अपनी शक्ति सुरक्षित कर रही हो, कहा :

"टाँगें, उसकी टाँगें पकड़ो।"

क्या वह क्रस्तो की टाँगों पर बैठा था ? और क्या अपनी पेटी में बँधा चाकू उसने क्रिस्तिनित्सा को निकालने दिया था ? यह आठवाँ वर्ष है कि मिहाइलो हर दिन, हर रात खाते-पीते-सोते यह सवाल ख़ुद से पूछता है। और बहुधा हर बार एक भावात्मक उथल-पुथल में वह खुद को जवाब देता है कि ऐसी बात अविश्वस-नीय है, क्योंकि ऐसा काम किसी को नहीं करना चाहिए, कोई कर नहीं सकता। और फिर एक अँधेरा उसके ऊपर छा जाता और उस अँधेरे में वह सच्चाई से अपने को बताता कि उसने ऐसा किया, कि वह क्रस्तो की टाँगों पर बैठा, कि उसने क्रिस्तिनित्सा को चाकू निकालने दिया और उसने सुना कि वह, तीन, चार, पाँच, इधर-उधर बेहिसाब जैसा कि औरत करेगी, पसलियों में, बगल में, पुट्ठों पर क्रस्तो

के चाकू मार रही है। हाँ, उसने यह किया जो अविश्वसनीय है जो कि करना असम्भव था। और यह भयावह लज्जाजनक कृत्य हर समय उसके सामने छाया रहता—असाध्य, अपरिवर्तनशील।

ऋस्तो की हत्या के बाद वह बाहर भागा और सराय के सामने चश्मे के चबूतरे पर बैठ गया। रात की उस ख़ामोशी में चश्मे का कलकल उसे गरज की तरह लगती। उसने ठंडे पानी में अपना हाथ डाल रखा था।

अभी भी वह काँप रहा था। उसने अपने को सँभाला और अचानक उसकी समझ में आया कि सराय के भीतर उसने क्या देखा-सुना है। यह भयावह कृत्य! तो यही सच्चा अर्थ था उसके पूरे महीने की वासना का, उस अपार सुख का जो उसके भीतर उमड़ा था और बहा था, एक क्षण भी बिना सोचे हुए कि इसमें कुछ बुरा है। और आश्चर्य तो यह है कि बजाय विनाश और भयावहता की बात सोचे हुए जो कि उसकी आँखों के सामने घटित हुआ, और जिसमें उसका योग था। उसके विचार इस पूरे महीने के सुख की ओर मुड़ रहे थे, उसे विकृत और लज्जित करना चाहते थे। क्योंकि यकायक यह स्पष्ट हो गया था कि शुरू से ही यह उतना ही भयावह, लज्जाजनक, और निर्मम था जितना कि स्वयं यह अन्तिम कृत्य। उस प्रेम की प्यास और सुख का अब एक चिह्न भी शेष नहीं था जो पूरे महीने उसमें तरंगित होता रहा था। अब वह एक और बड़ी घटना में फँस गया था, जिसमें उसका हाथ बेमतलब सूक्ष्म रूप से थोड़ा-सा था फिर भी वह इस सारी दुखद परिस्थिति का कारण था और साधन था। ऋस्तो और क्रिस्तिनित्सा के बीच जो मामला था और जिसे वे एक लम्बे अरसे से सुलझा रहे थे, वह नहीं जानता था और अब हर चीज़ यकायक कट गयी, समाप्त हो गयी। उसे लगा कि उसे धोखा दिया गया है, लज्जित किया गया, ठगा गया और सदा के लिए कुचल दिया गया है, जैसे कि वह एक जाल में फँसा लिया गया हो, जहाँ वह अलग-अलग कारणों से एक पति और पत्नी द्वारा खींचकर लाया गया था एक गहन और पुरातन घृणा के अंग के रूप में जो इन तीनों से बड़ी और सशक्त है। यह उसका सुख था।

वह क्रिस्तिनित्सा की आवाज़ से चौंक पड़ा; वह उसे आधे खुले दरवाज़े से क़रीब-क़रीब फुसफुसाकर बुला रही थी। वह उठा और उस के पास गया। एक हाथ से वह दरवाज़ा पकड़े थी और दूसरे हाथ में उस का चाकू था। वह बेबाक़

सूखी आवाज़ में कह रही थी :

"मैंने इसे धो दिया है।"

यह साफ़ जानते हुए कि यदि वह चाकू उसके हाथ से ले लेगा तो बाद में क्या होगा, वह एकदम से एक तरफ़ खिसक गया और उसे एक ज़ोर का घूँसा मारा; दरवाज़ा उसके हाथ से छूट गया और वह कमरे में धम्म से जा गिरी। कमरे के दरवाज़े को उसने अधखुला रहने दिया। भीतर ख़ामोश मोमबत्ती जल रही थी जिसका मद्धिम प्रकाश क्रिस्तिनित्सा पर पड़ रहा था जो क्रस्तो के मृत-शरीर के, जो जलबेंत की चटाई से ढका था, बग़ल में बेहोश पड़ी थी।

मिहाइलो तेज़ी से सड़क पर आ गया। चश्मा शांत कलकल करता बह रहा था और चबूतरे से टकराकर छपाक-छपाक कर रहा था।

सूर्योदय के पहले ही मिहाइलो क़स्बे पहुँच गया। इस इरादे से कि अधिकारियों को ख़ुद को सौंपने से पहले कपड़े बदल ले। लेकिन जब वह अपने घर पहुँचा, सहन से होकर कमरे में गया, उसमें रखी चिर-परिचित चीज़ें देखीं और यह महसूस किया कि हर चीज़ वैसी की वैसी है जैसीकि वह रात में सराय जाने के पूर्व छोड़ गया था, एक नया विश्वास उसके भीतर घर करने लगा कि उसे ख़ुद को अधिकारियों को नहीं सौंपना चाहिए क्योंकि उसे गिरफ़्तार करने का अर्थ एक निरपराध आदमी को गिरफ़्तार करना होगा। निश्चय ही वह दोषी है बहुत ही गम्भीर अर्थ में, लेकिन वह उस अपराध का दोषी नहीं है जो उस पर लगाया जायेगा। पुलिस यह अन्तर कर पाने में सक्षम नहीं होगी; और उसे मजबूर होकर उनसे अपनी रक्षा करनी होगी चाहे इसके लिए ज़रूरत होने पर उसे एक बार फिर वार करना पड़े और हत्या करनी पड़े। उत्तेजना का ज्वर उसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न करता और दृष्टि को धुँधला करता उसमें उमड़ा। लेकिन उसका यह निर्णय कि वह अपने को पुलिस के हवाले नहीं करेगा और गिरफ़्तारी से बचेगा, साफ़ और पक्का था। उसने तुरत क़स्बे से भाग जाने का निश्चय किया।

यह दुखी युवक, जिसे उसका पिता पुरोहित बनाना चाहता था, उस सुबह अपने को और दूसरों को तौलता रहा और उसने पाया कि वह अपने दुर्भाग्य में बड़ा है और अपने निर्णय में उचित और अचूक। उसके भीतर जो चल रहा था उससे हर चीज़ को नापते हुए मिहाइलो को लगा कि समय को वस्तुतः जैसे बीतना चाहिए उस से कहीं अधिक धीरे-धीरे बीत रहा है।

वह अपने कपड़े बदल रहा था और भागने की जल्दी-जल्दी तैयारी कर रहा था जबकि उसका नौकर येवरा उसके कमरे में एक आश्चर्यजनक घटना सुनाने के लिए घुसा जिस की क़स्बे में चर्चा थी और जो सच्ची मान ली गयी थी। उस रात डाकुओं के एक गिरोह ने क्रिस्तिनित्सा की सराय पर हमला किया। कस्तो को मार डाला और क्रिस्तिनित्सा को घायल कर दिया। बुरी हालत में होते हुए भी क्रिस्तिनित्सा डाकुओं के इस हमले के बारे में कुछ विस्तार से बता सकी जिसमें 'यूनानी डाकुओं' का सन्दर्भ भी था जो इसमें शामिल थे !

अब मिहाइलो को अनदेखा शहर से निकल जाने में देर हो चुकी थी। उसने तय किया कि वह कुछ देर और रुक कर येवरा की बताई कहानी के पक्की होने की प्रतीक्षा करेगा, जो उसे एक चमत्कार लग रही थी; और यदि पुलीस का आदमी या कोई अधिकारी वह अपने दरवाज़े पर देखेगा तो वह बग़ीचे से होकर मिसा की झाड़ियों की ओर भाग जायेगा।

बाद में दिन में उसने बड़ी सतर्कता से क़स्बे का चक्कर लगाया इस दृढ़ निश्चय के साथ कि यदि उस पर कोई भी सन्देह व्यक्त किया गया या पुलीस उसके पास आयी तो वह मरेगा या मार डालेगा।

जेब के छिपे चाकू पर अपना हाथ रखे दाँत भींचे अपने काँपते हुए हाथ को बड़ी मुश्किल से वश में किये मिहाइलो सड़कों पर घूमता रहा और आश्चर्य करता रहा कि बाक़ी दुनिया उसके दिल की इतनी तेज़ धड़कन क्यों नहीं सुन पा रही है। अपने को शान्त दिखाते हुए उसने क्रिस्तिनित्सा के सराय पर हमले के बारे में सब कुछ सुना। यहाँ तक कि उसने शक्ति बटोर कर उसमें कुछ अपनी टिप्पणी भी जोड़ी। कई दिन वह बिना खाये, बिना सोये एक-एक मिनट गिन कर अपना समय काटता रहा।

धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया कि क्रिस्तिनित्सा अदेखे डाकुओं के अपने बयान पर दृढ़ है और किसी ने उसके कथन पर सन्देह नहीं किया; वह कस्तो की मृत्यु पर शोक मना रही है लेकिन सराय भी चला रही है। वह अपनी विधवा बहन को अपने पास ले आयी है जिससे कि अकेली न रहे। जब खतरा टल गया तब कहीं मिहाइलो को लगा कि उसकी शक्ति जवाब दे चुकी है, और वह बीमार पड़ गया।

लेकिन उसने कुछ प्रकट नहीं किया यहाँ तक कि सख्त ज्वर की हालत में

भी। तीन सप्ताह बाद वह फिर अपने पैरों पर खड़ा हो सका। वह यह तथ्य मान गया कि क्रिस्तिनित्सा क्रस्तो के मृत्यु की सही बात नहीं बताने जा रही है। और इस प्रकार शान्तिपूर्वक, स्वयं पर आश्चर्यचकित, उसने प्रस्थान की तैयारियाँ शुरू करदीं—धीरे-धीरे सतर्क तैयारियाँ जिससे कि दूसरों को सन्देह न हो। उसका भाई प्रकृति से लालची था जिस से कि मिहाइलो के प्रस्थान में कोई बाधा नहीं पड़ी। दूकान भाई पर छोड़कर और अपने हिस्से का थोड़ा-सा अंश चालू रक़म के रूप में लेकर वह अपने भाई से दुनिया देखने के लिए निकलने की अनुमति पा सका। दरअस्ल उसने इतनी सावधानी से सब कार्य किया था कि जब अन्ततः उसने क़स्बे से प्रस्थान किया तो न तो किसी के मन में सन्देह जगा और न किसी को आश्चर्य ही हुआ।

लेकिन ज्यों ही उसने पहली पहाड़ी पार की और लियूबिज़ादा के उसके अपने ही खेत और भूसाघर आँखों की ओट हो गये उसका साहस जाता रहा और एक बार फिर उसकी मानसिक शान्ति खो गयी। उसे यक़ीन हो गया कि वह अभिशप्त है और एक पशु है जिसका पीछा किया जा रहा है। वह मुख्य सड़कें छोड़कर पगडंडियों और चक्करदार मार्गों से चलने लगा, साधारण, कम ख्यात सरायों में ही रुकता और अपने ही रास्ते को बार-बार पार करता जिस से कि उसके काल्पनिक पीछा करने वाले उसको पकड़ न सकें। लेकिन ज्यों ही वास्तविक ख़तरा टल गया, एक और ख़तरा उसके भीतर जन्म लेने लगा और, संक्रमित कल्पना और क्षुब्ध चेतना का खेल जड़ पकड़ने लगा। वह नोवा वरोश के क़स्बे से होकर गुज़रा जहाँ कि उस के सम्बन्धी थे लेकिन वह रुका नहीं। प्रिबाय में कहीं जाकर वह पहली बार एक सराय में रुका, रोटी और तम्बाकू लेने के लिए।

प्रकृति से संयमी होने के नाते और पिता और भाई द्वारा सख़्ती से पाले जाने के कारण इसके पहले मिहाइलो ने बहुत कम धूम्रपान किया था; लेकिन उस समय से वह निरन्तर बड़ी लगन के साथ धूम्रपान करने लगा। उसे लगने लगा कि उसकी आँखों के सामने की यह स्थायी छोटी-सी लपट उसके लिए एक वरदान है और वही गुलाबी धुआँ जो आँखों और गले को गुदगुदाता है आदमी के लिए यह भी सम्भव बनाता है कि वह बिना रोये हुए आँसू बहा सके और धुआँ बाहर निकालते समय बिना आह भरे हुए आह भर सके। अतः अनेक आने वाले सालों तक उसकी आँखों के सामने यह लपट दिखायी देती रही या उसकी उँगलियों के

बीच जलती रही। धुआँ निरन्तर वहीं रहते हुए भी हमेशा बदलता रहता था, उसके विचारों को उलट कर वहाँ जाने से बचाता था जहाँ उनके जाने से वह सब से अधिक डरता था, और असाधारण शान्त क्षणों में उसे पूर्ण विस्मृत के लोक में ले जाता था; रोटी की तरह उसका पेट भरता था और मित्र की तरह उसे राहत देता था। रात में वह धूम्रपान के सपने देखता जैसा कि दूसरे अपने प्रिय-जनों से मुलाक़ात के सपने देखते हैं। और जब उसके सपने कुस्वप्न में बदलने लगे और वह सोचता कि उसने रूस्तो का शरीर या क्रिस्तिनित्सा की आंखें देखी हैं तो वह चीख कर जाग पड़ता और सिगरेट को पिस्तौल की तरह पकड़ लेता या उनकी तरह जो अकेले नहीं सोते किसी के हाथ की तरह पकड़े रहता। और ज्यों ही इस चकमक से अन्धकार सुलग उठता और सिगरेट से चिनगारियाँ निकलने लगतीं वह राहत महसूस करता और अदृश्य धुएँ के साथ वह अपने उत्ते-जित मन से बोझ उड़ा देता।

वह यात्रा पर चलता रहा। विशेग्राद को छोड़कर, जो कि उसके घर के बहुत समीप था। रोमनिया पर्वत की ढाल पर ओबोद्याश की बड़ी सराय में उसकी मास्टर निकोला सुबोतीख़ से मुलाक़ात हुई जो बहुधा सरायेवो और विशेग्राद के बीच सड़क द्वारा यात्रा किया करता था। सुबोतीख़ ने मिहाइलो को चरवाहे के रूप में नौकर रख लिया और वह पहली बार जब से उसने यात्रा शुरू की थी वस्तुतः रुका। सख़्त जीवन और शुष्क प्रथाओं का अभ्यस्त न होने के कारण उसे बहुत कुछ सहन करना पड़ा लेकिन यह सब एक बड़े और अकेले वरदान के आगे नगण्य हो गयाः कि एक बार फिर नवयुवकों के साथ कठिन श्रम करने लगा लोगों से घिरा चाहे वह खेत हो चाहे बाज़ार।

सरायेवो में उसने दो साल बिताए और सुबोतीख़ के काम से विभिन्न छोटी-मोटी यात्राएं भी कीं। और इसी बीच, जैसा कि हम देख चुके हैं, सुबोतीख़ ने मिहाइलो को अन्य नौजवानों के बीच से छाँट लिया और उसे अपने काम-काज की देखभाल के लिए विशेग्राद में रख दिया। पहले-पहल उसे यह क़स्बा पसन्द नहीं आया जो कि दो नदियों से बँधा हुआ और पहाड़ों से घिरा हुआ था। यहाँ के लोगों की घृणा और अविश्वास ने उसे चोट पहुँचाया। लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता गया वह उनके तौर-तरीकों का आदी होता गया और अन्ततः वह सचमुच इस क़स्बे को और उसके लोगों को पसन्द करने लगा जैसे कि वे उसके

अपने हों। इस दौरान लगता है उसकी यह गुप्त यातना कम हो गयी और ज़िन्दगी पहले से आसान हो गयी।

पिछले वर्ष क्नोयेलात्स की लड़की अनीका से मिलने पर सम्भावनाओं के नये द्वार यकायक उसके सामने खुल गये, सम्भावनाएँ जो अब तक नहीं थीं और जिनके लिए आशा करने की उसने हिम्मत भी नहीं की थी। अनेक वर्षों बाद पहली बार एक पूरा दिन और रात इस तरह बीती जिसमें वह उस भयंकर मनहूस विचार से मुक्त रहा जो उसके भीतर निरन्तर घुमड़ता रहता था जिसमें क्स्तो की हत्या और उसकी अपने मृत्यु की आकांक्षा घुलमिलकर एक हो गयी थी। यह विचार ही कि इस संसार में कुछ ऐसा है जो पुनः उसकी वह स्वाधीनता दिला सकता है जिसका उसने सराय की उस सुबह के पूर्व उपभोग किया था उसे इस पृथ्वी से उठा लेने के लिए काफ़ी था।

लेकिन जब इन आशाओं और स्वप्नों से आगे जाने का समय आया तो उसके सामने अलंघ्य दीवारें उठने लगीं जिनकी प्रकृति केवल वही जानता था। अपने जीवन के इतने प्रारम्भ में ही लड़खड़ा जाने और टूट जाने से वह इस लड़की तक पहुंचने का मार्ग नहीं पा सका, वह उसकी ओर सच्चाई के साथ प्रसन्नतापूर्वक बढ़ा और फिर यकायक वह घबराया और पीछे हट गया। अनीका के साथ उसे जो प्रसन्नता और खुशी मिली वह उसके पूर्व अनुभव की यातना से मुक्त करा सकने के लिए यथेष्ट नहीं थी। वह अनीका की मुसकान के लिए लालायित रहता और तृषित दृष्टि से उसकी मुद्राओं और भंगिमाओं को निहारा करता और बाद में अपने एकान्त क्षणों में बड़ी सावधानी से उनकी नाप-जोख करता रहता। वह क्रिस्तिनित्सा का कुछ सादृश्य ख़ोज रहा था और साथ ही साथ उसके पा लेने का भय भी था। इसने निःसन्देह उसकी सारी खुशियों पर पानी फेर दिया, यहाँ तक कि उसका रूप-ढंग भी बदलने लगा। उस लड़की के प्रति उसके आश्चर्यजनक व्यवहार का यही कारण था।

इस तरह पूरा एक वर्ष बीत गया। उनके बीच कोई सच्चा मेल-मिलाप नहीं पनप सका और न ही कोई अलगाव हुआ। इस बीच अनीका और अधिक सुन्दर और अधिक असाधारण होती गयी और उसकी और अधिक सराहना होने लगी। ऐसी परिस्थितयों में अलगाव अवश्यम्भावी था; वह बाद में बसन्त में एक बहुत ही मामूली बात पर हुआ।

एक दिन चाची प्लेमा मिहाइलो से मिली ग्रौर उससे कहा कि ग्रनीका उससे मिलना चाहती है। उसने सोचा कि किसी लड़की के घर जाना उसके लिए उचित नहीं है फिर भी वह जाने के लिए राज़ी हो गया।

क्नोयेलात्स के घर की सजावट बड़ी शानदार थी, विशेग्राद के ग्रन्य घरों की ग्रपेक्षा कहीं ग्रधिक। वह सजावट सम्पत्ति की सूचक उतनी नहीं थी जितनी कि उसके रंगों, दरी-कालीनों, मेज-कुर्सियों में कुछ विदेशीपन ग्रौर ग्रद्वितीयता थी। इस पृष्ठभूमि में ग्रनीका उसे कुछ ग्रौर लम्बी ग्रौर ग्रसाधारण लगी। ग्रनीका ने बताया कि उसने उसे इसलिए बुलाया है कि उसे मालूम हो सके कि सेंट जार्ज उत्सव का उसने क्या कार्यक्रम बनाया है। उसकी पोली-गहरी ग्रावाज़, गम्भीर दूध जैसे सफ़ेद चेहरे ग्रौर इस छोटी-सी बात, जिसके बारे में वह पूछ रही थी, के बीच एक विचित्र कमी थी क्योंकि उसका मेल किसी तरह नहीं बैठ रहा था। मिहाइलो की उलझन बढ़ गयी। फिर भी वे मिलने पर सहमत हुए ग्रौर मिहाइलो ने वायदा किया की 'यदि ईश्वर ने चाहा' वह उत्सव में ग्रायेगा।

"मैं भी, यदि ईश्वर ने चाहा ग्रौर यदि तब तक मेरा विवाह नहीं हो गया, तो ग्रवश्य वहाँ ग्राऊँगी।" ग्रनीका ने कहा।

"मेरी समझ में नहीं ग्राता कि कैसे ग्रगले कुछ दिनों में ही तुम्हारा विवाह हो जायेगा?"

"बहुत-सी चीज़ें हैं जो मैं कर सकती हूँ।"

"नहीं, मैं नहीं सोचता तुम कर सकती हो, मैं नहीं सोचता तुम कर सकोगी।"

"तुम नहीं सोचते?"

यह ग्रन्तिम वाक्य इतने विचित्र ढंग से कहा गया था कि मिहाइलो को उसकी ग्राँखों में झाँकना पड़ा।

ये ग्राँखें जो हमेशा ग्रथाह रहती थीं, ग्रब जैसे भीतर से ग्रालोकित हो रही थी स्पष्ट ग्रौर गूढ़ एकसाथ, उनमें खून के रंग की दीप्ति थी ग्रौर ग्राँसुग्रों का ग्रावेग; उनकी ग्रभिव्यक्ति तीखी, स्पष्ट ग्रौर सख्त हो गई थी। मिहाइलो ने सीधे उन ग्राँखों में झाँका, ग्रौर उनकी ज्योति से चुँधिया गया। ग्रविश्वास से भरा इसकी प्रतीक्षा करता रहा कि उनका रंग बदले या किसी मरीचिका की तरह धूमिल पड़ जाए। लेकिन वह दृष्टि ग्रौर ग्रधिक तीखी ग्रौर स्पष्ट होती गयी ग्रौर वह दीप्ति ग्रौर ग्रधिक प्रखर। एक विचार मिहाइलो के मन में कौंधा ग्रौर

तुरन्त ही उसने एक आकृति ग्रहण कर ली; उसने चाहा कि वह चीख़ पड़े, अट्ट-हास कर उठे। अनीका की यह दृष्टि उसके लिए परिचित थी; उसने इसे कुछ समय पूर्व देखा था, सराय में और अपनी लम्बी यातनापूर्ण रातों के सपनों में। उसे लगा कि वह क्रिस्तिनित्सा की पशुवत् आँखों में घूर रहा है, जिनमें भयावह, अज्ञात इरादे भरे हुए हैं। उसने चाहा कि वह भाग जाए यद्यपि कोई बहुत दूर तक नहीं भाग सकता। उसने सोचा कि वह एक अप्रत्याशित गति से, एक उग्र चीख़ से उसकी आँखों की पकड़ तोड़ सकता है जैसा कि उसने हमेशा किया है जब भी इस आकृति का सामना उसे सड़क के किनारे सरायों और नम-एकान्त भूसाघरों में करना पड़ा है। लेकिन यह जादुई पकड़ टूट नहीं सकी और जब कि वह स्वप्न और यथार्थ के बीच आगे-पीछे झूलता हुआ खड़ा हुआ था, अनीका का प्रश्न उसके कानों में फिर-फिर बजता रहा, सौ गुनी तेज़ आवाज़ के साथ—

"तुम नहीं सोचते?"

अनीका और मिहाइलो एक-दूसरे को घूरते रहे उसी तन्मयता से जैसी कि प्रेमियों में प्रथम कुछ दिनों में होती है या जैसी कि दो पशुओं में जो वन के अँधेरे में एक-दूसरे से टकरा जाते हैं और केवल एक-दूसरे के दीदे देखते रहते हैं। लेकिन प्रेम की लम्बी से लम्बी टकटकी भी समाप्त हो जाती है। अपनी आँखें बलात् उसकी आँखों से हटाते हुए मिहाइलो ने अनीका के सुदृढ़-सुन्दर हाथों पर दृष्टि डाली जिनकी त्वचा सलोनी और नाख़ून गुलाबी थे। अन्ततः अपने भय की चरम सीमा की अनुभूति के बाद उसने उनसे किसी भी प्रकार के छुटकारे की आशा त्याग दी और इस प्रकार वह जाल में फँसे पशु की तरह पीछे लौटने लगा।

बहुत कोशिशों के बाद वह अपने होंठों पर मुसकान ला सका जिसका उद्देश्य अपने शत्रु को छलना था और अपने पर इतना नियंत्रण कर लेना था कि दरवाज़ा धड़ाक से बन्द करके घर से न भागना पड़े। इसके विपरीत उसने आज्ञा ली और शान्त क़दमों से बाहर चला गया यद्यपि वह अत्यधिक भय से आक्रान्त था! उसके निकलते ही दरवाज़ा बन्द हो गया; किसी तरह उसने सहन पार किया, और क़स्बे के चौराहे तक पहुँचा जो दिन के इस समय वीरान था। चश्मा शान्त स्वरों में कलकल करता बह रहा था। मिहाइलो उस पर बने पत्थर के चबूतरे के एक सिरे पर जा कर बैठ गया। उसने बहते पानी में अपना हाथ डाल दिया और शान्त होने और अपनी लुप्त चेतना को पुनः प्राप्त करने की कोशिश करने लगा।

अगले कुछ दिन उसने अपने विचारों के साथ संघर्ष में बिताए जैसे कि छायाओं और प्रेतों से घिरा हुआ हो। पूरे एक साल से अनीका उसकी सारी आशाओं का केन्द्र थी, अब ये आशाएँ समाप्त होने लगीं और उसे लगा कि स्वयं उसकी जिन्दगी ही समाप्त होती जा रही है।

जब चाची प्लेमा फिर उसके पास अनीका का बुलावा लेकर आयीं तो उसने जवाब दिया कि वह नहीं आ सकेगा। सेंट जार्ज के उत्सव के एक दिन पहले वह यह जानने के लिए आयी कि क्या वह अनीका के साथ उत्सव में जा सकेगा। "मैं नहीं जा सकूँगा" उसने जवाब दिया था किसी भयंकर प्रतिक्रिया का अनुमान लगाते हुए जैसे कोई किसी आघात की प्रतीक्षा करता हो। (उस आदमी की तरह जो सख्त बीमार हो, वह केवल अपने ही बारे में नहीं सोच सका, उसे आश्चर्य की बात भी नहीं लगी, न ही उसने यह कल्पना की कि उन दिनों अनीका के मन में क्या चल रहा था।)

घटनाएँ तेज़ी से घटती गयीं जिनका परिणाम इतना गम्भीर और गहरा होता गया जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।

उस वर्ष सेंट जार्ज के उत्सव का दिन क़स्बे में उस दिन के रूप में याद किया जाता था जिस दिन अनीका ने 'स्वयं को घोषित' कर दिया था। उसके दो महीने बाद ही सेंट इलियास के उत्सव के समय तक उसका झंडा पूरी तरह लहराने लगा था। अनीका ने अपना घर मर्दों के लिए खोल दिया। उसने गाँव की दो आवारा औरतें किराये पर अपने साथ रख लीं जिनका नाम येलेंका और सवेता था। इस प्रकार अनीका क्नोयेलात्स का शासन शुरू हुआ—डेढ़ वर्ष का शासन जिसमें अनीका ने खुद को कुकर्म और विनाश को इस तरह समर्पित कर दिया जैसे लोग रोटी, घर और बच्चों के लिए खुद को समर्पित कर देते हैं। वह आदमियों को सुलगाती थी फिर उनमें आग जगा देती थी, क़स्बे में ही नहीं बल्कि समूचे विशेग्राद नगर में। बहुत-सी तफ़सील अब भुलाई जा चुकी है, और बहुत-से दुर्भाग्यों का कभी पता ही नहीं चला लेकिन अनीका के ज़माने के पहले तक विशेग्राद के लोगों को पता नहीं था कि एक शैतान औरत की कितनी शक्ति होती है।

धीरे-धीरे करके अनीका के घर के सामने का सहन शिविर-स्थल-सा दीखने लगा। बहुत-से लोग—जो रात में पड़ाव डालते थे उनका लेखा-जोखा रखना

किसी के लिए भी असम्भव था। इनमें जवान भी होते और बूढ़े भी, कुंवारे भी होते और विवाहित भी, पास के दोब्रुन के लोग भी और सुदूर फूचा के यात्री भी। और बहुत-से ऐसे लोग भी थे जो शर्म, हया और विवेक को ताक में रख कर खुलेआम दिन में आते और सहन में तथा यदि अनुमति मिली तो घर में बैठे रहते या महज़ अपनी जेबों में हाथ डाले चहलक़दमी करते रहते, और समय-समय पर अनीका की खिड़की के नज़ारे लेते रहते।

अनीका का सबसे अधिक दुःसाहसी और उत्साही मुलाक़ाती ताने कुयुनजिया था, दुबला-पतला आदमी, थके हुए जीर्ण चेहरे पर बड़ी फैली हुई आँखें। वह रसोईघर के दरवाज़े के पीछे एक लकड़ी के बक्से पर चुपचाप बिना कुछ कहे बैठा रहता और धैर्यपूर्वक अनीका की प्रतीक्षा करता रहता और ऊपर तभी निगाह उठाता जब येलेंका और सवेता रसोईघर में आतीं। उसके अस्तित्व को नकारती हुई येलेंका और सवेता उसके पास से गुज़र जातीं और आगन्तुकों को लेकर अपने-अपने कमरों में चली जातीं। जब वे उसे रसोईघर से भगा देतीं तब वह सहन में कहीं बैठा येलेंका की ओर बेहयाई से मुसकराता रहता और वह उसे बाहर खदेड़ती।

"मुझे बैठा रहने दे भली औरत, आख़िर मैं तेरा क्या बिगाड़ रहा हूँ।"

वह घंटों सहन में प्रतीक्षा करता रहता, शोक-संतप्त जैसे कि वहाँ इतनी देर तक बैठा रहना उसके लिए कठिन है। कभी-कभी वह उठ कर बिना कुछ कहे चला जाता और फिर दूसरे-दिन आ धमकता। घर पर उसकी पत्नी, कोसारा, किसान घर की हट्टी-कट्टी औरत जिसकी दोनों भौंहें मिली हुई थीं, उसे फटकारती।

"क्या तुम फिर उस कुतिया के सहन में बैठ कर आये हो, घिनौने नकटे? वहीं रह जाते!"

"आह! मैं वहीं रह जाता," वह उदास स्वरों में दोहराता और उसके विचार फिर उस सहन में चले जाते जहाँ से वह अभी-अभी आया था। यह उपेक्षा कोसारा को पागल कर देती और वह विकराल झगड़ा शुरू कर देती लेकिन ताने केवल अपना हाथ हिलाता रहता जैसे कि किसी स्वप्न से जगा हो।

अनीका के यहाँ आने वाले कुछ तो बिलकुल पागल थे जैसे नाज़िफ़, बेग घराने का एक बड़ा किन्तु पिछड़ा नौजवान। वह पक्का [illegible] था; गूँगा और

बहरा। वह अनीका की खिड़की के नीचे से गुजरता था और उसे दिन में कम से कम दो बार अस्पष्ट भाषा में आवाज़ देता था। वह उसे एक मुट्ठी चीनी देता था और वह उसे लेकर उससे मज़ाक करती थी।

"इतना काफ़ी नहीं है नाज़िफ़, इतना काफ़ी नही है।" अनीका ऊपर से पुकार कर मुसकराती हुई कहती। उस गावदी ने उसका कहना जाने क्या समझा, घर भागा गया, अपने भाइयों के कुछ पैसे चुराए, और दो आधी बोरी चीनी खरीदकर खिड़की पर वापस आया। मारे खुशी के खीसें निपोरता हुआ उसने अपनी सम्पत्ति चीनी में प्रदान की। अनीका हँसी के मारे लोट-पोट हो गयी और संकेतों से उसे समझाया कि वह अभी भी काफ़ी नहीं लाया है और वह उदास बुदबुदाता हुआ चला गया।

उस दिन से वह हर सुबह आता, एक टोकरी चीनी भर कर लाता साथ ही अपनी टेंट और जेबों में अतिरिक्त धन भी। अनीका शीघ्र ही इस मज़ाक से थक गयी। उस पगले के दुराग्रह पर उसे गुस्सा आया। उसने सवेता और येलेंका को उसे खदेड़ बाहर करने के लिए भेजा। उसने अपने को बचाया और फिर बेसिर-पैर के बड़बड़ाता हुआ चला गया और दूसरी सुबह और अधिक चीनी लेकर खुश-खुश आ धमका। उन्होंने फिर उसे खदेड़कर भगा दिया। सारे दिन वह चीनी लिए-लिए पूरे क़स्बे में चक्कर काटता रहा, चहकता और बड़बड़ाता। बच्चों ने उसका पीछा किया, छेड़खानी की और उसकी टोकरी में से चीनी झपट ली जिसे वह बड़े आवेग से छाती से चिपकाए हुए था।

निःसन्देह ऐसे भी आदमी वहाँ आते थे जिनकी दिन में आने की हिम्मत नहीं पड़ती थी, जो नित्य रात आने की प्रतीक्षा करते थे यद्यपि उनमें से बहुतों के लिए यह सम्भावना भी नहीं थी कि वह अनीका के घर में घुस भी सकें। वे महज़ वहाँ चश्मे के पास चबूतरे पर बैठे रहते, सारी रात प्रतीक्षा करते रहते और सिगरेट फूँकते रहते। कोई भी आदमी रात में सब की निगाह बचा कर आ सकता था और उसी तरह जा सकता था। दूसरी सुबह लकड़ी की चैलियाँ और सिगरेट के टुकड़े वहाँ पड़े मिलते जहाँ वह बैठा रहता। वह अवश्य एक दुखी आदमी रहा होगा, ईश्वर ही जानता होगा कौन, अनीका निश्चय ही उसे नहीं जानती और वह भी केवल अनीका को देखकर ही जानता होगा। क्योंकि वहाँ सभी अनीका को देखने के लिए ही नहीं आते। कुछ महज़ इसलिए आते कि

कुकर्म उन्हें आकर्षित करते और दूसरे इसलिए आते क्योंकि वे जन्म से ही भ्रमित और पीड़ित होते। हर चीज़ जिस पर प्रश्न किया जा सकता था और जो ईश्वर की इच्छा के विपरीत हो सकती थी उस घर के चारों ओर उस सहन में जमा होती थी। अनीका के घर के चारों ओर आदमियों का घेरा तेज़ी से बढ़ रहा था और अपने ज़माने में अनीका ने दुर्बल और दुष्टों को ही गले नहीं लगाया; स्वस्थ और बुद्धिमानों को भी।

अन्त में क़स्बे में कुछ ही नौजवान ऐसे रह गये जिन्होंने उस तक पहुँचने की कोशिश न की हो। पहले वे चोरी-चोरी रात में, छिप-छिप कर अकेले-अकेले गये। उसके बारे में इस तरह बात की जैसे कि कोई लज्जाजनक भयावह चीज़ हो और साथ ही पहुँच के परे और लगभग अविश्वसनीय हो। लेकिन जितना ही वे उस के बारे में बात करते, गपशप करते उसके कुकृत्य उतने ही अधिक व्यापक प्रतीत होते। पहले-पहले उन्होंने उन पर सख़्त उँगली उठाई जो वहाँ गये लेकिन अन्त में उन पर घृणा की जाने लगी जो अनीका के यहाँ नहीं गये। क्योंकि बहुत थोड़े-से आदमी अनीका तक पहले प्रयत्न में पहुँचने में समर्थ हो सके बाकी को येलेंका और सवेता से अपने को सन्तुष्ट करना पड़ा अतः शत्रुता, पुरुष का अहं और ईर्ष्या बढ़ने लगी। जो अस्वीकार कर दिये गये थे, फिर आये इस आशा में कि एक ही रात में जाने और अस्वीकृत कर दिये जाने का जो दोहरा अपमान उन्हें भोगना पड़ा है उसका निराकरण हो जायेगा, और जिनको एक बार स्वीकार किया जा चुका था वे अपने को दुबारा जाने से रोक नहीं पाते थे बल्कि जैसे कि एक सम्मो-हन में बँधे फिर-फिर जाते थे।

विशेग्राद की औरतें एकमत से मैदान के इस घर में हो रहे कुकर्म के घोर विरुद्ध थीं और उद्धत, निमर्म रूप से, बिना सोचे-विचारे जैसा कि औरतों की आदत होती है, लड़ती थीं। लेकिन उनका झगड़ा हमेशा आसान या सुरक्षित नहीं रहता और ऐसे ही कलह में रिस्तिख़ी परिवार बरबाद हो गया।

बुढ़िया रिस्तिच्का, पुरुष जैसी योग्यता और संकल्प वाली धनी विधवा थी। अपने एकलौते लड़के और अपनी सभी लड़कियों की शादी सफलतापूर्वक कर चुकी थी। लड़का छोटे कद, गुलाबी गालों और शान्त प्रकृति का था, चतुर सौदागर था जो अपने से आयु में बड़े लोगों का साथ करता था, धन कमाता था और परिवार और बीवी की देखभाल करता था। उसकी माँ ने उसके लिए फूचा

में रहने वाले धनी परिवार की एक सुन्दर-शान्त स्वभाव की लड़की से शादी कर दी थी। उनके दो बच्चे थे।

झगड़ा पिछली सर्दियों में श्राद्ध के भोज के मौके पर शुरू हुआ। स्त्रियाँ अनीका और अपने-अपने आदमियों की शिक़ायत कर रही थीं। बुढ़िया रिस्तिच्का ने मृत आतमा के नाम पर शराब का एक गिलास खाली करते हुए तेज़ आवाज़ में चुनौती देते हुए कहा :

"ईश्वर क़सम, मैं कहती हूँ, उन्हें मत जाने दो। मेरे भी एक बेटा है, भला आदमी है। लेकिन जब तक मैं ज़िन्दा हूँ तब तक वह उस कुतिया की ड्योढ़ी नहीं लाँघ सकता।"

दूसरे ही दिन, ये शब्द अनीका तक पहुँच गये जैसे कि हर बात जो उसके बारे में कही जाती थी उस तक पहुँच जाती थी। तीसरे दिन रिस्तिच्का को एक सन्देश मिला :

"अगले महीने तुम्हारा लड़का वह भला आदमी मेरे पास अपने हाथों में शनिवार की सारी कमाई लेकर आयेगा; तब तुम्हें पता चलेगा अनीका कौन है।"

एक प्रकार की बेचैनी और चिन्ता रिस्तिखी के घर में व्याप गयी, लेकिन इससे बुढ़िया की ज़बान बन्द नहीं हुई। वह अनीका की भर्त्सना करती रही जो कि उस समय अपनी शक्ति की चरमसीमा पर थी। दूसरे शनिवार को युवा रिस्तिख नशे में धुत अपने साथियों के सहारे लड़खड़ाता हुआ, पतलून की जेबों में शनिवार की अपनी सारी कमाई ठसाठस भरे हुए अनीका के पास पहुँचा! वह अनीका के दरवाज़े पर अपने पैर पटकता, चारों तरफ़ पैसे बिखराता, पागलों की तरह अनीका और अपनी माँ को साथ-साथ पुकारता पड़ा रहा। येलेंका और सवेता उस पर मँडराती रहीं और उसे भीतर ले गयीं कि अनीका को देख ले।

सूर्योदय होने पर अनीका ने सवेता को हुक्म दिया कि दो जवान तुर्कों का इन्तज़ाम करके उनके साथ इसे घर पहुँचा दिया जाये!

जब बूढ़ी रिस्तिच्का को पता चला कि उसका लड़का ब्यालू के लिए इतनी देर हो गयी नहीं आया है तो उसने क़स्बे का चक्कर लगाया। अन्त में यह जान कर कि वह दरअस्ल अनीका के पास गया है, वह बूढ़ी औरत घर लौट गयी और बैठकखाने के बीचोंबीच गिर पड़ी। उसके मुँह से झाग निकल रही थी

और फिर उसके बाद होश में नहीं आयी। उसकी बहू—दुबली-पतली कमज़ोर, काले बाल, बड़ी-बड़ी आँखें—इस खास कमरे में चलकर आयी और पुण्य प्रकाश के सामने घुटनों के बल बैठकर शीघ्रता से कई बार उसने अपने पर सलीब का पवित्र चिह्न बनाया और अनीका को कोसने लगी :

"ऐ औरत, मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह तुझे पागल कर दे, बेड़िया डाल कर तू निकाड़ी जाये, ईश्वर तुझे कोढ़ी कर दे, तेरा सारा शरीर घावों से भर जाये; अपने से ऊब कर तू मौत माँगे और तुझे मौत भी न आये। आमीन। हे महाप्रभु, आमीन आमीन।"

इसके बाद वह फूट-फूटकर रो पड़ी; उसकी पीड़ा इतनी शक्ति से उमड़ी कि वह अन्धी हो गयी, उसका सन्तुलन खो गया और लड़खड़ाकर अपने सारे वज़न के साथ निढाल फर्श पर गिर पड़ी। अपनी बाँहों में कसने के कारण पुण्य प्रकाश-दीप गिर पड़ा और रोशनी चली गयी। बाद में रात में वह उठी और धीरे-धीरे कमरे को व्यवस्थित करने लगी। उसने फर्श धोया, कम्बल पर फैला हुआ लैम्प का तेल उसने पोंछा, एक दूसरा लैम्प जलाया और उसके सामने तीन बार अपने पर सलीब का चिह्न बनाया और बिना कुछ कहे उसके सामने सिर झुका लिया। उसने बच्चे की तरफ़ देखा जो खटोले में सो रहा था। फिर वह पुण्य प्रकाश के पास गयी और उसके पास अपनी गोद में क़ायदे से अपने हाथ पर हाथ धरे वह बैठी अपने पति की प्रतीक्षा करती रही।

क़स्बे में हर चीज़ दूसरे को मालूम हो जाती है यहाँ तक कि ख़ुद से कही हुई बात भी; आत्मा या शरीर किसी का कुछ गुप्त नहीं है। इस नवयुवती के अभि-शाप की ख़बर दूसरे दिन अनीका तक पहुँच गयी। तीसरे पहर अनीका की कानी कंज़र नौकरानी बहू के पास आयी और उसे उसने एक रूमाल दिया जिसमें चाँदी और ताँबे के सिक्के बँधे हुए थे। ज्योंही उस कंज़र औरत ने रूमाल दिया; वह सहन में दूर एक कोने में चली गयी जहाँ पूर्वबोध से भर कर, उसने वह सन्देश दोहराया जो उसकी मालकिन ने भेजा था। यहाँ तक कि एक कंज़र के लिए भी यह दहला देने वाला काम था।

"अनीका ने तुम्हें यह भेजा है। रिस्तिच्का से कहो अपने बहू और बेटे के साथ बैठकर इसे गिन ले; उसकी सारी कमाई इसमें है, एक पाई भी खोई नहीं। उसने तुम्हें तुम्हारा आदमी वापस कर दिया और कहा कि अब भी वह लौटा रही

है। उसने उतना ही लिया है जितना उसने दिया है इसलिए तुम्हारे श्राप का उसके लिए कोई मूल्य नहीं है।''

क़स्बे की औरतों के बाद, जिनके मन में अनीका के लिए एक जैसा घृणा का ज़हर था, अनीका के सबसे बड़े शत्रु मास्टर पीटर फिलिपोवात्स थे। उनका लड़का आन्द्रिय उन लोगों में से था जो बहुधा अनीका के घर जाते थे। परिवार में सबसे बड़ा लड़का, नाज़ुक और कमज़ोर जवान हमेशा सोया-सोया और जैसे कि खोया-खोया रहता था, उसमें अनीका के लिए बड़ी लगन थी। उसने घर आना एकदम बन्द कर दिया क्योंकि उसके बाप ने एक रात उसे मार डालने की कोशिश की और निश्चय ही वह मार डाला गया होता यदि उसकी माँ ने उसे छिपा कर बचा न लिया होता। अब वह भूसाघर में सोता है। और उसकी माँ चोरी-छिपे उसे खाना भेजती रहती है। और साथ ही साथ सारे समय ईश्वर से प्रार्थना करती रहती और रोती रहती है, लेकिन छिप कर, क्योंकि मास्टर पीटर ने उसे धमकी दे रखी है कि तीस साल के वैवाहिक जीवन के बावजूद वह उसे घर से निकाल देंगे यदि उसने उस विश्वासघाती के लिए एक आह भरी या एक भी आँसू बहाया।

वो लोग जो दरअस्ल अनीका से घृणा करते थे और उसकी निन्दा करते थे मास्टर पीटर फिलीपोवात्स की दूकान पर इकट्ठे होते थे। हो सकता है वो धूम्रपान करने के लिए या किसी और मामले पर बातचीत करने के लिए आये हों, लेकिन वह घूम-फिर कर अवश्यमेव अपनी मुख्य चिन्ता पर आ जाते : मैदान की वह लड़की। इस सिलसिले में वे तियाना की कहानी का स्मरण करते जो बहुधा उनके बुज़ुर्गों ने उन्हें सुनायी थी।

कोई सत्तर वर्ष पूर्व तियाना नाम की एक गड़ेरिये की लड़की थी जो अपने सौन्दर्य के लिए विख्यात थी। बिना किसी नैतिक संकोच या झिझक के उसने क़स्बे में क़हर बरपा कर रखा था। उसे पाने के लिए इतनी भाग-दौड़ और मार-पीट थी कि चर्च के एक बड़े मेले के दौरान चार्शिया की सारी दूकानें बन्द रहीं जैसा कि प्लेग या बाढ़ के ज़माने में ही पहले कभी होती थीं। सरायेवो के सुनार और स्कापल्ये के सौदागर ताँबें की तश्तरियाँ भर-भर कर लाये और उसके पास अपना सामान और अपनी कमाई दोनों ही छोड़ गये और खाली बन्दूक की तरह वापस लौट गये। उसे खत्म करने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सका। लेकिन

एक दिन वह उसी तरह अचानक लुप्त हो गयी जिस तरह प्रकट हुई थी। तियाना के पहले प्रेमियों में कोई कोस्ता नाम का आदमी था, जिसे यूनानी कहा जाता था। धनी नवयुवक न माँ न बाप। लोग कहते थे वह उससे शादी करना चाहता था लेकिन तियाना विवाह के बारे में सुनना भी नहीं पसन्द करती थी बल्कि इसके विपरीत वह पहले से कहीं अधिक लफंगों को अपने चारों ओर जमा करने लगी, तुर्क और हर मज़हब के लोग। यूनानी क़स्बे से ग़ायब हो गया। बाद में पता चला कि वह बन्या मठ में जाकर साधु हो गया है और कष्ट उठा रहा है। फिर लोग उसको भूल गये। लेकिन ठीक एक साल बाद जब तियाना पूरे वेग पर थी और ईश्वर और आदमी दोनों ने उसका पूरा-पूरा उपयोग कर लिया था, वही कोस्ता यकायक फिर प्रकट हुआ। उसके चेहरे पर दाढ़ी हो गयी थी, उसका वज़न घट गया था और वह आधा साधू और आधा किसान के कपड़े पहने हुआ था। उसके पास न तो साधुओं का चोगा था न ही छड़ी। बजाय इसके उसकी पेटी में दो पिस्तौलें लगी हुई थीं। वह सीधा बाज़ की तरह तियाना के घर गया, उसके कमरे का दरवाज़ा भड़ाक से खोला और धड़ाधड़ उस पर कई गोलियाँ चला दी। लेकिन वह थोड़ी ही घायल हुई और घर से निकलकर गलियों में भाग आयी। मैदान की चढ़ाई पर दौड़ते समय उसकी चप्पलें टूट गयीं, अशरफ़ियाँ उसके गले से टूट कर गिर पड़ीं, बालों के पिन निकल गये। पुराने क़स्बे के नीचे वह जंगल की तरफ़ भागी। एक खाई के पास पहुँच कर वह उसमें गिर पड़ी। वह थक कर चूर हो गयी थी। साधु ने उसे पकड़ लिया और मार डाला।

वहाँ पर पड़ी रही, सारे दिन, उसके बाल उसके चारों तरफ़ बिखरे रहे, अभी भी एक कोड़ा पकड़े हुए, उसका मुँह चौड़ा खुला हुआ था ऐसा लगता था कि वह दूर कहीं गड़ेरियों को निहार रही है। उसके नीले रेशमी वस्त्र में एक बड़ा काला घाव देखा जा सकता था। साँझ के झुटपुटे में क़स्बे से दो जिप्सी भेजे गये कि जहाँ उसे मारा गया है वहीं उसे दफ़न कर दिया जाये। हत्यारा ख़ुद भी जंगल में लुप्त हो गया। किसी ने उसे खोजने की कोशिश नहीं की। लेकिन तीन दिन बाद वह तियाना की कब्र के ऊपर पड़ी मिट्टी के ढेर पर पाया गया, उसकी गरदन कटी हुई थी !

जब कि आदमी अपनी दूकानों में बैठे अतीत को याद करते होते और स्त्रियाँ अपनी इस घरेलू विपदा पर आँसू बहाती होतीं, स्त्री की पापलीला जो अनीका

रच रही थी चलती होती। इसी समय ग्रनीका ने दोब्रुन के पुरोहित मेलेन्तिये के साथ उसके लड़के याक्षा को लेकर, जिसे देकोन कहते थे, लड़ाई मोल ले ली।

३

ग्रनीका की शोहरत दूर-दूर तक फैल गयी थी। लेकिन दोब्रुन के पुरोहित के लड़के याक्षा पोरुबोविच के मन में कभी उसके पास जाने का ख्याल नहीं ग्राया। वह स्त्री से ग्रधिक राकिया (एक प्रकार की शराब) पसन्द करता था ग्रौर राकिया से भी ग्रधिक ग्रपनी ग्राज़ादी ग्रौर ग्रावारागर्दी के हक़ को।

याक्षा बीस साल का था, दोब्रुन ग्रौर विशेग्राद के कादीलुक्स में सबसे ग्रधिक लम्बा-तगड़ा जवान। यहाँ तक कि वह कुर्याकोविच नाम के एक नेजो से लड़ने चार्यनिशे भी गया था ग्रौर उसे पछाड़ कर ग्राया था।

गोरा रंग, लाल बाल, निर्भीक हरी ग्राँखें—याक्षा ग्रपने पिता के बिलकुल विपरीत था जो दुबले-पतले लम्बे ग्रादमी थे, पीला चेहरा, भौंहों के बीच एक काली झुर्री, बाल जवानी के दिनों से ही पक गये थे, पुरोहित उन लोगों में से थे जो ग्रपने लिए भी उतने ही बोझ होते हैं जितने दूसरों के लिए, जो ग्रपने भीतर जीवन से मृत्यु तक लगता है एक गहन विचार ढोते रहते हैं। इसके विपरीत उनका पुत्र याक्षा ग्रपने नाना, पड़ा था जो त्रनाव्त्सी के मिलीसाव थे, धनाढ्य पर प्रसन्नचित्त ग्रौर उदार व्यक्ति।

पुरोहित के लिए ग्रपना इकलौता बेटा बड़ा लाड़ला था ग्रौर वह उसके तेज़-तर्रार स्वभाव से बहुत चिंतित रहते थे। याक्षा एक वर्ष से उपयाजक हो गया था। उसके पिता उस पर ज़ोर डाल रहे थे कि वह विवाह कर लें जिससे कि पुरोहिती कर सकें। लेकिन याक्षा को पुरोहिती की बहुत चिन्ता नहीं थी ग्रौर वह विवाह की बात भी सुनना नहीं चाहते थे। पुरोहित की पत्नी नेक, गहरे रंग की दुर्बल वृद्ध स्त्री थी, इतनी मितव्ययी कि चिढ़ होने लगे, कभी लड़के की तरफ़-दारी लेती कभी बाप की। ग्रौर दोनों के लिए रोती।

उन सर्दियों में निश्चय ही याक्षा थोड़ा शान्त हो गये थे। वह अक्सर घर पर ही रहते और यदि माता-पिता उनके विवाह की बातचीत चलाने लगते तो भी दखल नहीं देते यद्यपि स्वयं उन्होंने कभी एक शब्द भी नहीं कहा। वसन्त पर सेंट जार्ज के उत्सव दिवस पर उन्हें सरायेवो के बिशप के आगमन की आशा थी और पुरोहित को यह उम्मीद थी कि उस समय वह अपने लड़के की शादी कर देंगे और स्वयं बिशप द्वारा उनके लड़के का अभिषेक हो सकेगा। सर्दियाँ समाप्त होने पर याक्षा कार्यवश विशेग्राद आये।

फरवरी का अन्त था, उन दिनों मछलियों का बहुत बड़ा रेला आता था। रिज़ाव नदी में थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर पर हज़ारों मछलियों का ऊपर से तीन बड़ा झुंड आता था, एक ऐसा रेला सुबह तड़के आता आम तौर पर सूर्योदय के पहले और दोपहर तक आता रहता। सभी हाथों में जाल लिए नदी पर दिखायी देते, बच्चे छिछले पानी में खड़े बरतन से या केवल हाथ से ही मछलियाँ पकड़ते होते।

ये तीन दिन पूर्व वसन्त काल की छुट्टियों की तरह हो जाते ; घर-घर में तेल की गन्ध भरी होती और इतनी मछली खाई जातीं कि लोगों का मन भर जाता और उसके भाव बहुत ज़्यादा गिर जाते। वस्तुतः अंत के रेले में पकड़ी गयी मछलियाँ आसपास के किसान थोक की थोक खरीद लेते और उन्हें अपने गाँव ले जा कर सुखा कर रख लेते।

उस सुबह दोब्रुन की सड़क पर अपनी गाड़ी से याक्षा ने रिज़ाव नदी पर मछुआरों और बच्चों को चीटियों की तरह जमा देखा। सूरज दमक रहा था, धरती पर धुआँ था और मछलियाँ झिलमिला रही थीं।

याक्षा ने तेज़ी से अपना काम समाप्त किया जिसके लिए वह विशेग्राद आये थे और सूर्यास्त के पूर्व ही दोब्रुन वापस लौटने की तैयारी कर रहे थे। लेकिन कुछ दोस्तों ने पास के एक कहवाघर में रुकने का अनुरोध किया जहाँ कुछ सौदागरों के लड़के मछलियाँ खा रहे थे और हल्की राकिया पी रहे थे। वे गाजिया से, जो विशेग्राद का सबसे होशियार मछुआरा था और सभी मछुआरों की तरह पियक्कड़ था, हँसी-मज़ाक कर रहे थे। गाजिया कहवाघर के बीच में, मछली का भीगा जाल लिये जिसमें भारी सीसे का वज़न लटक रहा था और पानी फर्श पर उसके नंगे पैरों के पास चू रहा था, खड़ा था। उसने जितनी मछलियाँ पकड़ी थीं सब

बेच आया था। कमर तक भीगा हुआ वह थोड़ा काँप रहा था और एक के बाद एक राकिया का ग़िलास खाली कर रहा था। लोग उससे पूछ रहे थे कि इस साल शिकार कैसा रहा, कितना उसने पकड़ा और बेचा लेकिन अधिकतर वास्तविक शिकारियों की तरह वह भी अन्धविश्वासी था और इस तरह के सवालों का जवाब टाल रहा था।

"मैंने सुना है तुमने बहुत कमाया है और अनीका के लिए कोई तोहफ़ा खरीदने जा रहे हो।" एक नवयुवक ने व्यंग्य किया।

"मैं, और अनीका के लिए तोहफ़ा ? मेरी बारी कभी नहीं आयेगी—जब तक आप लोग हैं।" उसने एक सिगरेट लपेटते हुए और जाल के बोझ को एक पैर से दूसरे पैर पर साधते हुए जवाब दिया।

सच्चाई यह है कि वह भी उन तमाम लोगों में से ही एक था जो अनीका तक पहुँचना चाहते थे लेकिन जिनकी दाल नहीं गली और लोग इसलिए उसे चिढ़ा रहे थे जिससे कि वे खुद अनीका के बारे में बातचीत चला सकें।

गाजिया ने पैसे चुकाये और कहवाघर से ठंडक से काँपता और बुदबुदाता चला गया :

"वह आप लोगों के लिए है हज़रत। ऐसा माल मेरे लिए नहीं है। मैं पानी पर जिन्दगी बसर करता हूँ।"

और लोगों में अनीका के बारे में बात चलती रही। याक्षा ने उस रात उसे देखा। वह फिर दोब्रुन नहीं गये। वह सारी रात अनीका के साथ गुज़ारते और लगता कि वह भी केवल उन्हीं के लिए रहती। क़स्बे में कोई चर्चा नहीं थी सिवा पुरोहित के लड़के के। स्त्रियाँ उन्हें देखकर अपना मुँह फिरा लेतीं और आदमी अपना समय उन्हें समझाने में, उनके बारे में गप-शप करने में और उनसे ईर्ष्या करने में बिताते।

पुरोहित ने अपने लड़के को संदेश भेजे, धमकाया, अनुनय-विनय की पर सब व्यर्थ रहा। यह देख कर कि किसी का कोई असर नहीं हो रहा है उन्होंने खुद विशेग्राद जाने का फैसला किया। उससे भी काम नहीं चला। फिर उन्होंने क़ायममुक़ाम विशेग्राद के मेयर से बातचीत की। उनका नाम अलीबेग था।

वह धनाढ्य और सम्भ्रान्त जेवाद पाशा प्लेवल्याक के बेटे थे। अलीबेग को बड़ी आसानी से और अधिक ऊँचा पद तथा और अधिक अच्छी जगह रहने को

मिल सकती थी लेकिन उनको अपनी माँ का स्वभाव मिला था, जो कि प्रसिद्ध मुहम्मद पाशा सोकोलोविच के खानदान की थीं जिन्होंने विशेग्राद का पुल बनवाया था, अतः हर चीज़ से विशेषकर मुनाफ़ाखोरी और सट्टेबाज़ी से उन्हें ऊँची और नेक उदासीनता थी। पच्चीस वर्ष पहले जब कि क़स्बे में गरमबाज़ारी की धूम थी, थोड़े समय तक खुशहाली और समृद्धि थी, अलीबेग इक्कीस वर्ष की आयु में क़स्बे के पुलीस कमिश्नर नियुक्त हुए थे। उन दिनों विशेग्राद के पुल से बहुत व्यापार होता था और क़स्बे में सामान, पैसा और मुसाफ़िरों की बाढ़ लगी रहती थी इसलिए बहुत बड़ी तादाद में पुलीस, जिस सख्त लेकिन सदाचारी आदमी की देख-रेख में तैनात रखी गयी थी वह अलीबेग ही थे।

समय का फेर—व्यापार ने पलटा खाया, विशेग्राद सड़क सूनी रहने लगी और परदेसियों का आना-जाना कम हो गया। पुलीसकी संख्या कम कर दी गयी, बहुत-से लोग चले गये। अलीबेग ही ऐसे थे जिन्होंने विशेग्राद नहीं छोड़ा, वह जमे रहे और वहाँ के मेयर या क़ायममुक़ाम बना दिये गये। अपने पिता के साथ वह दो बार युद्ध पर गये व्लास्का और सर्बिया, लेकिन दोनों बार वह फिर अपने उसी पद पर वापस आये।

उनके दो मकान थे। सबसे सुन्दर मकान क़स्बे में था। दोनों ही द्रिना नदी के तट पर थे और उनके बीच एक बड़ा भारी बग़ीचा था। क़ायममुक़ाम ने कई शादियाँ कीं पर उनकी सभी पत्नियों का देहान्त हो गया। स्त्रियों के प्रति उनकी कमज़ोरी किसी से छिपी नहीं थी, ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जाती उनका पीना बढ़ता जाता लेकिन हमेशा शान्त और सुरुचिपूर्ण रहते। बढ़ती आयु और अनियमित जीवन के बावजूद वह इकहरे बदन के आदमी थे। युवावस्था की बेचैनी और तेज़ी अब एक शान्त और मुस्कराते हुए व्यक्ति में बदल गयी थी, भूरी मूँछों और लम्बी दाढ़ी में युवा लालिमा से भरे उनके होंठ साफ़-साफ़ अलग से दिखाई देते। वह बिना भंगिमाओं के बोलते लेकिन उनके स्वरों में स्नेह और उनकी आँखों में निष्कपटता होती। गर्म सोतों के लिए उनमें ललक थी और जब भी किसी नये सोते की उन्हें खबर मिलती तो वह उसे देखने जाते चाहे वह कितनी ही दूर क्यों न हो। अक्सर वह वहाँ अपने खर्चे पर एक फ़ौव्वारा बनवा देते।

क़स्बे में, जिसकी आबादी और व्यापार दोनों ही कम हो गये थे, बहुत दिनों से क़ायममुक़ाम के पास कम काम रह गया था। एक ऊँचे समृद्ध घराने के होने के

नाते बुढ़ापा उनके पास धीरे-धीरे आ रहा था और वह अपने सुख और दूसरों के सुख के लिए जीवन बिता रहे थे। वह अपनी ज़मींदारी प्लेवल्ये चले जाते या दोस्तों के यहाँ बैठकबाज़ी करते।

क़ायममुक़ाम को दोब्रुन के पुरोहित जोलकड़ी के लट्ठे की तरह सीधे और सख़्त थे, बहुत पसंद नहीं आते थे। जब पुरोहित मिलने गये तो अलीबेग बड़े ठंडे मन से मिले लेकिन अनीका के बारे में उनकी शिकायत सुनी और उन्हें यह वचन दिया कि वह मामले की छान-बीन करेंगे। उन्होंने स्वर्गीय क्नोयेलात्स की लड़की के बारे में भी शिक़ायतें सुनीं। उन्होंने पुरोहित को वचन दिया कि याक्षा को दोब्रुन भेजने की व्यवस्था की जायेगी और अनीका पर अंकुश रखा जायेगा।

लज्जा में गड़े पुरोहित ने विशेग्राद में दो दिन और बिताये। वह अपने एक भयभीत आधे अन्धे पुरोहित मित्र के घर ठहरे रहे जिनका नाम योसा था। लेकिन जब उन्होंने देखा कि उनका लड़का उनके साथ घर वापस जाने को तैयार नहीं है और क़ायममुक़ाम उनकी सहायता नहीं कर रहे है तो वह अपने नेक काले घोड़े पर सवार होकर अपनी आत्मा में कटुता भरे हुए दोब्रुन वापस लौट गये।

ज्यों ही पुरोहित रवाना हुए क़ायममुक़ाम ने विशेग्राद पुलीस के प्रधान को जिनका नाम हेदो साल्को था बुलाया और उन्हें यह आदेश दिया कि उस मसीही औरत को जा कर धमकायें कि यदि वह अपने पर अंकुश नहीं रक्खेगी और तुरत याक्षा को दोब्रुन वापस नहीं भेज देगी, तो उसे जेल भेज दिया जायेगा।

हेदो ने आदेश का पालन किया। वह अपने घोड़े पर सवार हुए जैसे किसी महत्त्वपूर्ण समारोह के अवसर पर सवार होते थे, मैदान पार किया और अनीका के सहन में इधर से उधर अकड़कर चक्कर लगाने लगे और बग़ीचे में काम करती येलेंका से सख़्ती के साथ चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे—"इस घर में अब यह गोल-माल नहीं चलेगा और यदि दोब्रुन पुरोहित का वह बेचारा लड़का तुरत घर नहीं जाता तो, मैं—हेदो साल्को उससे दो बात करना चाहता हूँ।" येलेंका दौड़ी-दौड़ी घर में गयी और उसने सारी बात अनीका को कह सुनायी। अनीका तुरत ही दरवाज़े पर आयी लेकिन हेदो जिसे इसका पूरा अनुमान था अपने ऊँचे घोड़े पर सवार पहले ही चला जा चुका था।

अदालत के कानून की तरह सुस्त और न्याय के शब्दों की तरह मुस्तैद हेदो ने तीस साल तक इसी तरह अपने हर कर्तव्य का पालन किया था। उसका

चेहरा विचित्र था। असाधारण गहरी झुर्रियों से भरा हुआ जो इधर-उधर अप्रत्याशित रूप से पड़ी हुई थीं—उसका माथा, नाक, ठोढ़ी सब समेटे हुए, उसकी पतली मूँछों को छिपाये हुए और उसकी झुलसी हुई गरदन पर इस तरह उतरती हुई जैसे पानी की धाराएँ बह रही हों। झुर्रियों की रेखाओं की इस भूल-भुलैया से बिना बरौनियों के निकली हुई उसकी दो आँखें बूढ़े घोड़े जैसी लगती थीं। क़स्बे में तीन की सिपाहीगिरी ने उसका यह रूप कर दिया था।

क़ायममुक़ाम को अप्रीतिकर घटनाएँ पसन्द नहीं थीं यहाँ तक कि पड़ोस के कादीलुक में भी। हेदो की कभी हिम्मत नहीं पड़ी कि एक भी ऐसी समस्या उन तक वापस लाये जिसका संतोषजनक हल न निकाल चुके हों। पुलीस के कितने ही लोग आये-गये; वे या तो बड़ी आसानी से रिश्वतख़ोर हो जाते थे या कर्त्तव्य-निष्ठ और उत्साही। इस तरह पिछले पच्चीस वर्षों में हर चीज़ बेचारे हेदो के ही सिर पर आ पड़ी थी, चाहे वह फ़सल की बरबादी हो चाहे शराबियों का उत्पात, चाहे पड़ोसियों के झगड़े हों चाहे क्रूर से क्रूर हत्याएँ या बड़ी से बड़ी डकैतियाँ। अपनी विशिष्टता के कारण वह साधारण पुलीस कर्मचारी से पुलीस के प्रधान अधिकारी हो गये। लेकिन शीघ्र ही वह इस नतीजे पर पहुँचे कि दंगे, हत्याएँ और मुसीबतें सहज और अवश्यम्भावी कुकृत्य हैं और उसके, हेदो के, हाथों और आँखों में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि सभी से निपट सके, सभी को हल कर सके तथा अपराधियों को उनके अपराध के मुताबिक सजा दे सके। धीरे-धीरे अधिकार का भाव और अपने पद की शक्ति का अहसास होने के बजाय उनमें अपराध के प्रति एक अंधविश्वास जाग उठा और उस व्यक्ति के प्रति लगभग एक प्रकार की प्रतिष्ठा का भाव घर कर गया जो बुरा काम करता हो। अपना कर्त्तव्य मान कर वह हर मौके पर यन्त्रवत पहुँच जाते, अपराधी से झगड़ने नहीं बल्कि उसे अपने क्षेत्र से निकाल कर किसी दूसरे के क्षेत्र में कर आने के लिए। वर्षों से मानव-अपराध और मानव-पीड़ा के निरन्तर संसर्ग में रहने के कारण उन्हें एक विचित्र अनुभव हुआ था जिससे उन्होंने अपने सभी कर्मों के साथ अवचेतन मन से मेल बैठा लिया था। इस अनुभव के आधार पर वह प्रत्यक्षत: दो विरोधी सत्यों तक पहुँचे लेकिन दोनों ही समान रूप से संगत थे। प्रथम यह कि बुराइयाँ, विपत्तियाँ और गड़बड़ियाँ निरन्तर और शाश्वत हैं और उनसे सम्बन्धित कुछ भी परिवर्तित नहीं किया जा सकता। दूसरे यह कि हर अकेली समस्या किसी तरह

हल हो सकती है ग्रौर सुलझ सकती है क्योंकि इस दुनिया में कुछ भी चिरन्तन या शाश्वत नहीं है : पड़ोसी शान्त हो जायेंगे, हत्यारा या तो ग्रात्मसमर्पण कर देगा या दूसरे ज़िले में भाग जायेगा जहाँ दूसरी पुलीस होगी, उनके मुखिया होंगे; चोरी का माल देर-सवेर बरामद होगा ही क्योंकि लोग चोर ही नहीं होते, बकवादी ग्रौर मुखबिर भी होते हैं; शराबी होश में ग्राकर संजीदा हो जायेंगे ग्रौर इसलिए उनसे जब तक वह पिये हों नहीं उलझना चाहिए ग्रौर न ही यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि उन्होंने क्या किया।

हेदो ग्रपने सभी सरकारी काम इन्हीं दो सिद्धान्तों पर करते थे। लेकिन जब किसी विवाद या ग्रपराध में कोई स्त्री शामिल होती तब उनकी यह निष्क्रियता पूर्णतया जड़ता में बदल जाती। ऐसे मौकों पर वह उस ग्रादमी की तरह लगते जिसकी गरदन पर एक बरैया बैठ गयी हो ग्रौर वह ग्रपनी गरदन कड़ी करके उसे ऊपर-नीचे रेंगने दे रहा हो ग्रौर सर्वाधिक बुद्धिमानी के साथ यही प्रतीक्षा कर रहा हो कि कब वह ग्रपने ग्राप उड़ जाये। ज्यों ही हेदो साल्को का किसी पड़-ताल के दौरान किसी स्त्री से साक्षात् होता तो जब तक बहुत ही ज़रूरी नहीं होता वह ज़्यादा छान-बीन नहीं करते। निःसन्देह ऐसा वह जान-बूझकर नहीं करते। ग्रनुभव ने उन्हें यह पाठ पढ़ाया था ग्रौर सहज वृत्ति से वह ऐसा करते थे। ऐसे विवाद में जिसमें कोई स्त्री शामिल हो उसमें फँसने का ग्रर्थ उँगली को दरवाज़े ग्रौर चौखट के बीच रखना है।

जब याक्षा उस शाम ग्रनीका के पास पहुँचे तो ग्रनीका ने सारी मिन्नतों ग्रौर बहस के बावजूद उन्हें ग्रपने कमरे में नहीं ग्राने दिया, उसने केवल यही तय कर लिया था कि वह उन्हें नहीं ग्राने देगी ग्रौर वह उसके बारे में कोई बात नहीं करना चाहती थी। उसके सारे उत्साह भरे शब्दों का उसने घृणापूर्वक जवाब दिया :

"तुम दोब्रुन क्यों नहीं जाते ? तुम्हारे पिता बुला रहे हैं।"

ग्रौर याक्षा ने उत्तर दिया : "मेरा कोई बाप नहीं है। तुम जानती हो।"

"मुझे क्या मालूम ?" उसने ग्राहिस्ता से जवाब दिया।

"तुम ग्रच्छी तरह जानती हो मैंने तुमसे हर रात कहा है ग्रौर मुझे भी सब मालूम है जो तुमने मुझसे कहा है।"

उसे सारा लाड़ प्यार और बहके-बहके शब्द याद आये; नज़दीक आती सुबह और उसकी हथेलियों से मुँदी उसकी आँखें।

यह देखना उपहासास्पद और दयनीय था कि एक आदमी स्त्री की तरह बीती हुई रात की बातें फिर-फिर याद कर रहा हो। लेकिन यह स्पष्ट था कि शब्द उसी तरह उसे मादक बना रहे थे जैसे प्रेम स्वयं और यह कि उसे कुछ पता नहीं कि वह क्या कर रहा है या कह रहा है। अनीका ने धैर्यपूर्वक उसकी बातें सुनीं बिना एक शब्द कहे, बिना करुणा के लेकिन बिना उपहास के भी। वह जानता था कि उसे जाना ही होगा लेकिन यह जानना चाहता था कि कब वह उससे फिर मिल सकता है। उसने मुस्कराते हुए जवाब दिया :

"ठीक है, शायद दोब्रुन के मेले में, माता मरियम के दिवस पर।"

"उस दिन से याक्षा ज़ारिए की सराय में ठहरा रहा। उसका स्वाभिमान उसे अनीका के दरवाज़े पर चक्कर लगाने से रोकता था। वह लोगों को शराब पिलाता था और खुद पीता था, चुपचाप मेज़ पर मुट्ठियाँ बाँधे बैठा हुआ, अपने ख़ूबसूरत सिर को पीछे गिराकर दीवार से टिकाए हुए और चेहरे को ऊपर कालिख़ लगी छत की कड़ियों की ओर उठाए हुए जैसे कि उस पर लिखा कुछ पढ़ रहा हो। किसी की हिम्मत नहीं होती थी कि अनीका का नाम उसके सामने ले यद्यपि सब जानते थे कि उसने शराब पीनी क्यों शुरू कर दी है।

इस तरह छत की कड़ियों की ओर देखता वह घंटों बैठा रहता था, अनीका के शब्दों को नहीं बल्कि उसकी चुप्पियों को याद करता था। वह अनीका के उस मौन से भरा हुआ था और उसे अपनी आँतों तक में महसूस करता था। यहाँ तक कि बिना आँखें बंद किये हुए भी वह उसे नीचे मिन्देरलुक पर बैठा हुआ देखता था, एक सफ़ेद रूमाल उसके सिर पर कस के बँधा होता जिससे उसके बाल ही नहीं आँखों तक उसका माथा भी ढँका होता। उसके हाथ उसकी गोद में होते। अपनी एक हथेली दूसरी हथेली पर वह इस तरह कस कर दबाती जैसे कि वह भाग्य बता रही हो। उसका चेहरा लम्बा है सफ़ेद, उसके जबड़े उभरे हुए हैं, उसकी आँखें, जिनका रंग गहरा हो गया है, एक मुसकान से घिरी हुई हैं जिससे वे चमक रही हैं। उसकी चुप्पी उसकी साँसों को छोटा करती और दृष्टि को धुँधला। यदि वह एक बार भी उसकी बग़ल में बैठ पाता, तो वह उसके सिर को अपने दोनों हाथों से पकड़ लेता, उसे कसकर मरोड़ता और उसे नीचे झुका

कर बिस्तरे पर, फ़र्श पर, घास पर गिरा देता। और तब भी उसे उसका ठंडा उपेक्षा-भाव याद आता, जिसने उसे इतनी अधिक यातना दी है, इसलिए नहीं कि वह उसे नष्ट नहीं कर यकता बल्कि इसलिए कि उसे नष्ट करना कोई ज़रूरी नहीं था और तब वह चौंक पड़ता जैसे कि दीवार से टकरा गया हो, उसकी बड़ी मुट्ठियाँ मेज़ पर काँपने लगतीं।

याक्षा जब कि इस तरह ज़ारिए की सराय में शराब पी रहा था अनीका के घर के चारों तरफ़ हंगामा था जिसे हेदो साल्को न जानने का बहाना करता था। चूँकि वह नहीं चाहती थी कि लोग उसके यहाँ आयें, पियक्कड़ों की उसके दरवाज़े पर भीड़ लगी होती जब कि दूसरे लोग इस आशा से कि उसका मन जीत सकेंगे, उसके दरवाज़े पर से पियक्कड़ों को हटाने के लिए जुटे होते।

हेदो की दुर्बलता जानते हुए क़ायममुक़ाम ने अन्ततः यह निश्चय किया कि वह स्वयं अनीका के घर जायेंगे और पता लगाएँगे कि आख़िर गड़बड़ी क्या है ? एक तीसरे पहर वह उसके यहाँ गये। उनके साथ सशस्त्र पुलीस का एक आदमी था जो शीघ्र ही अकेला वापस लौट आया। क़ायममुकाम रात तक वहाँ ठहरे रहे और दूसरे दिन वह फिर गये।

और वही हुआ जो होना था। क़ायममुक़ाम ने, जिन्होंने अपनी जिन्दगी में बहुत-सी औरतें देखी थीं और पसन्द के लिए जिनके सामने बहुत बड़ा क्षेत्र नहीं था, यह महसूस किया यहाँ कुछ असाधारण उन्हें मिला है—ऐसे हाव-भाव और ऐसी नज़रों वाली औरत उन्होंने क़स्बे में तब से नहीं देखी जब से पहली बार क़स्बा विशेग्राद में संस्थापित हुआ या जब से आदमी और औरत ने एक-दूसरे को जाना और बच्चे पैदा किये। इस शरीर का जन्म या पोषण किसी चीज़ के घिरे होने से सम्बन्धित नहीं है, यह महज़ घटित हुआ है।

क़ायममुक़ाम इतने अपार सौन्दर्य के सामने विस्मय से ठिठक गये जैसे कि उन्हें बहुत दिनों से खोयी कोई परिचित चीज़ मिल गयी हो—उसकी त्वचा की विपुल सफ़ेदी ने उसकी रगों को पूरी तरह से छा रखा था और उसमें से उसके अधरों की गहरी लालिमा एक तीखी विषम रेखा से पृथक् होती थी; वही विपुल सफेदी धीरे-धीरे उसके नाखूनों और कानों के नीचे की लालिमा में इस तरह बदल जाती कि उसका बोध ही नहीं होता। सम्पूर्ण दीर्घ-सुव्यवस्थित-मधुर काया, अपनी कान्तिमयता में भव्य, [illegible] अपने आप में ही तन्मय,

दूसरों जैसा दीखने की न कोई कामना न अनिवार्यता—वह एक समृद्ध आत्म-निर्भर आत्मतुष्ट साम्राज्य की भाँति थी जहाँ कुछ छिपाने की ज़रूरत नहीं थी न ही अपने सम्पत्ति के प्रदर्शन की। वह चुपचाप जी रही थी और उन लोगों से नफ़रत करती थी जो उससे बातचीत के लिए और अपने को उसके सामने खोल कर रखने के लिए बेचैन रहते थे।

क़ायममुक़ाम ने यह सब, उस आदमी की दृष्टि से अपने भीतर उतार लिया जो प्रौढ़ हो रहा हो और मानता हो कि वह जीवन की पूरी क़ीमत जानता है और साथ ही साथ यह पहचानता है कि ज़िन्दगी उसके हाथों से फिसलती जा रही है। अनीका को छोड़कर कौन स्त्री इस व्यक्ति को, इस तुर्क को विरक्त करने का साहस कर सकती थी। लेकिन अनीका ने ऐसा करना हीं चाहा।

दूसरे दिन क़ायममुक़ाम के दूसरी बार आने के बाद अनीका ने ताने सुनार से मिलना चाहा जो जो इधर कई महीनों से उसके सहन में पड़ा रहता था।

"तुम लिख सकते हो?"

"हाँ" ताने ने जवाब दिया और यह बताने के लिए उसने अपने दाहिने हाथ की उँगलियाँ फैला दीं, उसकी आँखें मारे खुशी के नम हो रही थीं।

ताने अपनी दुकान से रोशनाई, कलम और कागज़ ले आया। अब वह मिन्देरलुक पर अनीका के बग़ल में बैठा था।

"क्या तुम वह सब लिख सकते हो जो तुम्हें बताया जाय?"

"हाँ, मेरा ख्याल है।"

हर ख़ाली स्त्री के मन में जो चोर रहता है वह अनीका को बोलता था और अनीका ताने के माध्यम से क़लम को। ताने लिखने लगा, उसका सारा शरीर एक तरफ़ को झुका हुआ था, धीरे-धीरे वह एक-एक अक्षर जोड़ रहा था, झुर्रियों पड़ा उसका जबड़ा बाहर निकला पड़ रहा था। क़लम की गति के साथ-साथ अनीका के स्वर चढ़ते-उतरते थे। अनीका ने लिखाया :

"तुम दोब्रुन के पुरोहित हो और मैं विशेग्राद की वेश्या। हमारी यजमानी अलग-अलग है और यह तुम्हारे हक़ में बेहतर है कि उसे अकेला छोड़ दो जो तुम्हारे लिए नहीं है।"

ताने ने, जो कुछ शब्द लिखने में हिचक रहा था, यहाँ पहुँच कर एकदम लिखना रोक दिया और अनीका की ओर उपहासास्पद परेशान दृष्टि डाली जैसे

कि वह यह सुनना चाहता हो कि यह सब मज़ाक है और वह इस पत्र को दोब्रुन के पुरोहित को सचमुच भेजने की बात नहीं सोच रही है। बिना उसकी ओर देखे हुए अनीका ने तीखे स्वरों में कहा :

"लिखो।"

और वह उसी तरह की उपहासास्पद परेशानी अपने चेहरे पर लिए लिखने लगा।

"जब मैं पैदा भी नहीं हुई थी तुम नेदेल्कोवित्सा की चहारदीवारी लाँघ रहे थे और उसके पति नेदेल्को ने तुम्हें अनाज के खेत में आया बिज्जू समझकर मार ही डाला था। और आज भी तुम्हारे पुरोहिती वस्त्रों में पैबन्द मित्र विधवाओं के घर लगाये जाते हैं। और जहाँ तक मेरा सवाल है मैंने कभी न तो तुम्हारे स्वास्थ्य के बारे में जानना चाहा न यह ही कि तुम क्या-क्या करते हो। फिर भी तुमने क़ायममुक़ाम और पुलीस को मेरे घर भेजने की ज़रूरत समझी। इससे तो अच्छा था कि तुम किसी चट्टान के नीचे छिपे साँप को छू लेते। पुरोहित जी, मैं चाहती हूँ कि आप जान लें कि तब से क़ायममुक़ाम दो बार मेरे पास आ चुके हैं और यह भी कि मैंने उन्हें इस तरह निरस्त्र कर दिया है जैसे कि वह कोई बच्चा हो, इतने बूढ़े होने पर भी वह मेरा हाथ धुलाने के लिए पानी और तौलिया लिए खड़े रहते हैं; शायद तुम यह सब जानना चाहो। और चूँकि तुम अपने सुन्दर लड़के के बारे में चिन्तित हो, तो वह ज़ारिए की सराय में दूल्हे की तरह सजा हुआ है, यह सच है कि वह नशे में धुत है, लेकिन उससे क्या फ़रक़ पड़ता है, उसे शौक़ से घर ले जाइए, वह समझदार हो जायेगा, उसकी दाढ़ी उग आएगी और जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है वह बिशप भी हो ही सकते हैं।"

वह रुक गई। ताने ने साँस ली। वह बड़ी कठिनाई से उसकी बात समझ पा रहा था। यद्यपि उसने बहुत-से शब्द और अक्षर तक छोड़ दिये थे।

दूसरे ही दिन सारे क़स्बे में ख़बर फैल गयी कि अनीका ने दोब्रुन के पुरोहित को पत्र लिखा है। लेकिन क़ायममुक़ाम के पहली बार अनीका के पास जाने के बाद क़स्बे को कोई आश्चर्य भी नहीं हो रहा था। यहाँ तक कहा गया कि सारी बात जान कर दोब्रुन के पुरोहित ने उलटे वस्त्र पहन कर सन्ध्या वन्दन किया, मोमबत्तियाँ उलटी जल रही थीं।

क़स्बे में लोगों का ख़याल था कि किसी भी मानवीय कार्यवाही द्वारा इस

स्थिति में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता, ईश्वर ही चाहे तो कुछ हो सकता है। इतना होने पर भी अनीका ने फिर एक बार क़स्बे को उलट कर रख दिया।

माता मरियम दिवस पर दोब्रुन के गिरजाघर में बहुत बड़ा मेला लगा जिसमें दूर-दूर के गाँवों से बहुत बड़ी संख्या में किसान आये।

अनीका ने भी मेले में जाने का फ़ैसला किया। एक दिन पहले दोपहर में वह दोब्रुन के लिए येलेंका के साथ एक स्वस्थ घोड़े पर रवाना हो गयी, उनके पीछे-पीछे एक नौकर था। वह मुख्य सड़क छोड़कर गलियों में होकर जा रही थी फिर भी चारों तरफ़ सारे क़स्बे में तेज़ी से यह ख़बर फैल गयी कि अनीका जा रही है। ज्यों ही वह स्त्राज़ीश्ते से नीचे ढालू सड़क पर पहुँची आदमी बाहर निकल आये और गरदन मोड़-मोड़ कर उसकी झलक लेने के लिए बेताब हो गए। शिक्षार्थी और नौसिखिए जो अटारियों पर अपने काम में प्रवीणता प्राप्त करने की धुन में थे ऊपर चढ़कर अटारी की खिड़की से अनीका को तब तक देखते रहे जब तक वह पहाड़ी की ओट नहीं हो गयी।

अनीका के पीछे-पीछे एक लँगड़े घोड़े पर ताने सुनार था, जिसे उसने जल्दबाज़ी में एक जकंर से किराये पर लिया था। हमेशा की तरह पीला लम्बा चेहरा लिए वह अनीका के पीछे-पीछे बिना किसी शर्म या घबराहट के चारशिया के बीच से जा रहा था। उसे देखकर लोग हँस रहे थे, फब्तियाँ कस रहे थे लेकिन उसका उधर ध्यान नहीं था, शायद उनका चिल्लाना वह सुन भी नहीं रहा था। लेकिन जब वह भी पहाड़ी की ओर हो गया सारे क़स्बे पर बेचैन ख़ामोशी फैल गयी। अपनी दूकानें छोड़कर जो लोग निकल आये थे वे फिर दूकानों में जा कर काम में लगने की कोशिश करने लगे। और बहुत-से वह लोग जो कुछ देर पहले ताने पर हँस रहे थे अब कोई बहाना खोज रहे थे जिससे कि वह कह सकें कि उन्होंने उसे अनीका के पीछे-पीछे जाते नहीं देखा है। कुछ लोगों ने गाँवों में जा कर खाल खरीद लाने का फ़ैसला किया, कुछ ने किसी ज़रूरी काम से दोब्रुन जाने का और बाकी प्रिब्वाय के बाज़ार के लिए रवाना हो गये। और जब रात हुई तब नौजवान भी चुपचाप उसी दिशा में छोटे रास्तों द्वारा निकल गये जिधर उनके बड़े जा चुके थे। उनमें से बहुत-से अभी भी लड़के थे, अपने लिए उन्हें कोई उम्मीद नहीं थी। उनमें से बहुत-से खुश थे कि अनीका की वजह से उन्हें एक रात मिली जब कि वे रज़ाव के किनारे-किनारे पथरीली जगह पर चैन से

विचर सकते हैं।

ताने ने चेलिक के पुल पर पहुँच कर अनीका और उसकी अनुरक्षिका का साथ पकड़ लिया। येलेंका ने उसे डाँटा लेकिन ताने टकटकी लगाये अनीका की ओर देखता रहा कि आखिर वह क्या कहती है।

"मैंने तुम्हारा क्या नुकसान किया है?" ताने ने पूछा, येलेंका गुस्से में लाल हो गयी। उसने अपना घोड़ा रोक लिया और कहा :

"तुमने मेरा यह नुकसान किया है कि तुम मेरे सर पर अब भी सवार हो। विशेग्राद में ही हम आपसे भर पाये हैं। अब तुम हमारा पीछा क्यों कर रहे हो? घर जाओ और अपनी बीवी का पालना झुलाओ।"

बहस करते हुए दोनों ही अनीका को देख रहे थे लेकिन वह अपने घोड़े पर सवार चुपचाप आगे चली जा रही थी और पीछे देख कर उन्हें यह भी अहसास नहीं कराना चाहती थी कि वह उनकी बातें सुन रही है। येलेंका ने गुस्से में घोड़े को ऐंड़ लगायी और अनीका के साथ हो ली। और ताने अपना सिर झुकाए और रास ढीली किये फिर पीछे लगा गया।

इस तरह वह कोई सौ क़दम चले होंगे कि अनीका ने अचानक अपना घोड़ा रोका और घूम पड़ी। ताने ने ख़ुद को उसके सामने पाया, उनके घोड़े एक दूसरे से टकरा रहे थे। गर्मी से अनीका का चेहरा तमतमा रहा था, चेहरा एक सफ़ेद पतले रुमाल से बँधा हुआ था जिसके दोनों छोर कन्धों पर लटके हुए थे। वह बच्चों की तरह मुस्करा रही थी। ताने ने अनुभव किया कि उसके चेहरे की खाल कुछ खिची है। उसके दाँत और उसके पीले मसूड़े दिखाई दे रहे हैं। उसकी उदास भूरी आँखें नम हो गयी हैं।"

"ताने, मैंने मेजूसेलात्स से कुछ नींबू खरीदे थे लेकिन उन्हें दरवाज़े पर भूल आयी हूँ। बड़ी मेहरबानी होगी यदि तुम विशेग्राद वापस जाकर उन्हें ले आओ। तुम हमारा साथ दोब्रुन पहुँचने के पहले ही पकड़ लोगे।

खुशी में बावला ताने यह भी नहीं समझ पाया कि उसे क्या करने को कहा गया है।

"नींबू···मेजूसेलात्स से···मैं जा रहा हूँ···अभी लाया।" उसने तुरत घोड़ा घुमाया और विशेग्राद के लिए रवाना हो गया—बार-बार कंजर के उस घोड़े को ऐंड़ लगाता लेकिन उस पर उसका कोई असर नहीं पड़ता, उसकी अपनी ही

रफ़्तार थी ! एक-दो बार उसने घूम कर ग्रनीका के सफ़ेद लम्बे रूमाल को देखना चाहा जब कि ग्रनीका ग्रौर येलेंका दोब्रुन की दिशा में ग्राँख से ग्रोझल हो गयीं।

ज्यों ही ताने लौटा, येलेंका खिलखिला कर हँस पड़ी, उसे ग्रनीका की चतुराई पर बड़ा मज़ा ग्राया। लेकिन ग्रनीका बिना कुछ कहे, केवल मुस्कराती हुई चलती रही। नौकर ग्रागे निकल गया था ग्रौर छाँह में प्रतीक्षा कर रहा था।

दूसरे दिन दोब्रुन का मेला शुरू हुग्रा ग्रौर शीघ्र ही पूरे ज़ोर पर ग्रा गया। चारों तरफ यह शोर था कि ग्रनीका मेले में पहुँच गयी है लेकिन किसी ने उसे सबेरे प्रार्थना में या तीसरे पहर गिरजाघर के ग्रास-पास नहीं देखा। खुशी से पागल उत्तेजित भीड़ में केवल ताने सुनार, इधर-उधर भटकता दायें-बायें देखता दिखाई दे रहा था। नशे में धुत किसान उसे धक्के देते उसके पैर कुचल देते लेकिन वह नींबू का झोला लादे सुबह से ही चलता रहा। नींबू उसने ग्रपने पैसे से खरीदे थे जब उसे यह पता चला कि ग्रनीका घर पर कुछ भूल नहीं गयी है। रात शुरू होते ही ग्रनीका येलेंका के साथ दिखाई दी। वे गिरजाघर के ग्राँगन के बीच में पहुँच कर ऊँचाई पर बने एक बड़े शामियाने में बैठ गयीं।

पुरोहित ने ज्यों ही ग्रनीका के ग्राने की बात सुनी, उसने मारे गुस्से के यह ऐलान किया कि मैं ख़ुद उसके पास जाकर उससे यह कहूँगा कि वह यहाँ से तुरत चली जाये। लेकिन गिरजाघर के ग्रन्य गुरुजनों ने उन्हें रोका ग्रौर कहा, हम लोग ख़ुद उससे बात कर लेंगे।

इस बीच ग्रादमियों की काफ़ी बड़ी भीड़ ग्रनीका के चारों तरफ़ लग गयी थी। जब ये गुरुजन दिखाई दिये तो पहले लोगों ने उनकी हँसी उड़ाई बाद में गालियाँ देने लगे। ग्रनीका ने ऐसा दिखाया जैसे उसे इस हंगामे का पता ही नहीं चला। उसने न कुछ देखा न सुना। गिरजाघर के दूतों ने उस तक पहुँचने की कोशिश की जिससे कि वे उसे ज़बरदस्ती निकाल दें लेकिन शराबी युवा किसानों की एक दीवार तुरत ही उनके ग्रौर इन दो ग्रौरतों के बीच खड़ी हो गयी। गुरुजन धक्के खाते-खाते चहारदीवारी के पास पुरोहित के मकान के सामने पहुँच गये ग्रौर दरवाज़े से बड़ी मुश्किल से जान बचाकर निकल सके।

उस समय ग्रँधेरा हो चुका था जब कि गुरुजन ग्रौर पुरोहित स्वयं सीढ़ियों से नीचे ग्राये। लेकिन भीड़ इतनी ज़्यादा थी कि रास्ता रुका हुग्रा था ग्रौर दरवाज़े से बाहर ही नहीं जा सके।

जब मामला बहुत उलझा हुआ हो तो लोग यह नहीं समझ पाते कि वह क्या चाहते हैं। वे अनीका के शामियाने से पुरोहित के घर के दरवाज़े तक जाते और वापस आते। सच्चाई तो यह थी कि सारी धका-पेल कुछ शराबी युवा व्यक्तियों के कारण थी। बाक़ी भीड़ तो रेले में जिधर बहजाते थे, उधर जाती थी। लिएस्को से आये लोग जोगिरजाघर के हरपर्व पर झगड़े का कारण निकाल लेते थे सबसे अधिक शोर मचा रहे थे और गुस्से सेउ बल रहे थे। वे खुश थे कि इस बार अपना गुस्सा दिखाने के लिए उन्हें एक अच्छा मौका मिला। वह दुगने जोश से चिल्ला रहे थे :

"नहीं, हम तुम्हें नहीं जाने देंगे।"

"नहीं, हम नहीं।"

लिएश्तानी लोगों के बीच प्रसिद्ध लिमिच भाइयों ने अपनी आस्तीन चढ़ा लीं, पेटियाँ ढीली कर लीं, दाँत पीसने लगे और बड़े-बड़े चाकू निकालकर बिना ज़रूरत एक-दूसरे को आश्वासन देने लगे :

"भाईजान, मैं तुम्हारे साथ हूँ..."

रात पूरी तरह घिर आयी थी। कुछ देर पहले याक्षा विशेग्राद से आया था। सारे दिन उसके मन में संघर्ष चलता रहा, अंत में वह अपने को रोक नहीं सका और दोब्रुन के लिए रवाना हो गया। सभी जगमगाते शामियानों या खुली जगहों में जलती आग के चारों तरफ़ एकत्र थे। जो लोग बहुत पिये हुए थे खेतों में चले गये थे अँधेरे में चहारदीवारी के साथ पड़े क़ै कर रहे थे, कराह रहे थे और खुद से बातें कर रहे थे। पुरोहित के मकान के दरवाज़े से लगातार शोर-गुल सुनाई दे रहा था जो साफ़ समझ में नहीं आता था। पुरोहित वहाँ खड़े थे, गलियारे में कोई उनके पीछे मशाल लिये हुए था जिसकी रोशनी में वह काले-पीले दिखायी दे रहे थे। वह बोलने के लिए खड़े हुए, आगे बढ़ने की कोशिश की लेकिन गिरजाघर के गुरुजनों ने उनको रोक लिया। शोर इतना था कि उन्हें खुद अपनी ही आवाज नहीं सुनायी दे रही थी। उनके चेहरे पर भय और उलझाव नहीं था केवल विस्मय और रोज था। काफ़ी देर तक उन्होंने बोलने की और पियक्कड़ों तक जाने की कोशिश की। अचानक वहीं पर रुककर पंजों के बल उचककर उनकी दृष्टि भीड़ में एक खाली जगह से बीच के शामियाने पर पड़ी जहाँ सबसे अधिक रोशनी थी। रोशनी की लाल चमक में उन्होंने अनीका

की सीधी गर्व से तनी आकृति देखी जिसकी एक तरफ़ येलेंका थी और दूसरी तरफ याक्षा, जो अभी-अभी शामियाने में दाखिल हुआ था और अनीका की ओर बाँहें फैलाये झुका हुआ प्रेम में विभोर निहार रहा था जो उसके पिता की निगाह में लज्जास्पद और समझ में न आने वाला था।

पुरोहित अपने पास खड़े लोगों को ढकेलता हुआ आधी अधेरीसीढ़ियों से होकर अपने कमरे की ओर भागे। उसकी पत्नी भी जो ड्योढ़ी में खड़ी काँप रही थी और निराशा, लज्जा तथा दोहरे दुःख से रो रही थी, सिर पटक रही थी पुरोहित के पीछे-पीछे ऊपर भागी और उसके पीछे-पीछे उसकी सहेलियाँ भी थीं। कुछ सम्बन्धी और गुरुजन भी कमरे में पहुँचे जब कि अन्य लोगों ने उत्तेजित भीड़ को मकान और ऊपर सीढ़ियों पर जाने से रोक रखा था। अँधेरे कमरे में लोगों ने देखा पुरोहित दीवार पर से अपनी लम्बी रायफ़ल उतार रहा है। लोगों ने उन्हें खिड़की तक पहुँचते ही पकड़ लिया जिससे उमड़ती भीड़ के बीच में अनीका का जगमगाता शामियाना दिखाई दे रहा था। याक्षा वहाँ उसी तरह झुका हुआ था और अनीका एक पूरी तरह सँवारी हुई प्रतिमा की तरह बैठी थी। गुरुजनों ने पुरोहित को कमर से पकड़ रखा था और उसकी पत्नी रायफ़ल छीन रही थी लेकिन वह उसे पूरी ताक़त और निश्चय के साथ पकड़े हुए थे। उन्हें रोकने के लिए खींच-तान करते हुए वह उन्हें समझा रहे थे :

"फ़ादर, फ़ादर : हम आपसे प्रार्थना करते हैं"

डरी और घबरायी उनकी पत्नी फटी आवाज़ में बिसूर रही थी।

"मैं प्रार्थना करती हूँ, हमारे लिए, ईश्वर के लिए।"

अन्ततः वे उसे अंधेरे कमरे में खींच ले जाने में सफल हुए जहाँ से बाहर का दृश्य नहीं दिखाई देता था। उन्होंने राइफ़ल भी आखिरकार छोड़ दी जिसे वह अपनी बाँहों में उठाये हुए थे। उनकी पत्नी बेहोश हो गयी थी। औरतें जब कि उसके उपचार में लगी थी आदमी पुरोहित को पकड़कर घर के दूसरे छोर पर एक दूसरे कमरे में ले गये।

बाहर शोर-गुल कम हो गया था और भीड़ छँट रही थी। पियक्कड़ों की जमात पुरोहित को भूल गयी थी और उबलने के लिए कोई दूसरा कारण खोज रही थी, आपस में या अपने रिश्तेदारों से लड़ रही थी। रिश्तेदार उन नशों में धुत लोगों को सामान की तरह घोड़ों पर लाद रहे थे या उन्हें दोनों तरफ़ से

पकड़कर सड़क पर ले जा रहे थे। कुछ ही लोग शामियाने के सामने खड़े अनीका को आँख मार रहे थे और घूर रहे थे। उनके माथे पर पसीना छलछला रहा था।

अनीका भी जाने की तैयारी कर रही थी। उसने याक्षा का यह अनुरोध कि वह उसे विशेग्राद तक पहुँचा आयेगा, नहीं स्वीकार किया था, अपनी असहायता और विमूढ़ता में वह बार-बार कटुता में भरा पूछ रहा था :

"और क़ायममुक़ाम तुम्हारे पास हर समय आता है ?"

अनीका ने सुना और अन्यमनस्क भाव से जवाब दिया जैसा कि वह कुछ और सोच रही हो :

"हर शाम याक्षा। क्यों, आओ, तुमने उसे नहीं देखा होगा। या शायद क़ायममुक़ाम तुम्हारे रास्ते में न आता हो ?"

याक्षा इस अपमान से चौंक गया। वह शान्त कोमल स्वरों में कहती रही :

"या शायद तुम उसके रास्ते में नहीं आना चाहते ?"

जैसे कि वह क्या कह रही है यह न सोच रही हो, उसने कहा :

"वह कल मेरे पास आयेगा ठीक ब्यालू के बाद।"

उस समय तक गिरजाघर के अहाते से सभी जा चुके थे। सरायवाले, खोंचेवाले अपने सामान और बर्तन बक्सों में भर रहे थे जिन पर वह सजाये गये थे। चारों तरफ़ आग बुझ गयी थी या तो उन पर पानी डाल दिया गया था या उन्हें यों ही छोड़ दिया गया था। अँधेरे में कुछ पियक्कड़ों की आहें और कराहें अभी भी सुनाई दे रही थी। और अब वे आवाज़ें भी शान्त हो रही थीं। कुछ-एक पास के गड्ढों में पड़े थे जैसे लड़ाई में काम आ गये हों।

पुरोहित के घर की खिड़कियों में रोशनी टिमटिमा उठती थी जब मशालें और मोमबत्तियाँ एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जायी जाती थीं; स्त्रियाँ एक-दूसरे से फुसफुसा रही थीं, आदमियों को काफ़ी और राकिया दे रही थीं। पुरोहित ने अपने पर काबू पा लिया था और अब लोगों से बातचीत कर रहे थे लेकिन बातचीत रुँधी-रुँधी-सी थी जैसे कि शव दफ़नाने के बाद की जा रही थी। अन्ततः बाकी अतिथि भी उठे और उन्होंने पुरोहित से विदा ली जो कि हर तरह से अपने को नियन्त्रित और शान्त रखने की कोशिश कर रहे थे। दो स्त्रियाँ रात भर के लिए उन की पत्नी के पास ठहरी रहीं।

जब सब लोग चले गये तो कुछ देर पुरोहित अपने कमरे में रहे और फिर,

घर पार करके उस खिड़की तक पहुँचे जहाँ से गिरजाघर का प्रांगण और तासिख़ परिवार का घर दिखायी देता था। उसके पगचाप सुन कर स्त्रियाँ अपशकुन से भर रही थीं। लेकिन पुरोहित की ओर से एक तिनका तक नहीं खटका। उन्होंने अनुमान लगाया कि वह बड़े कमरे में जो उनके कमरे से अधिक ठंडा और हवादार था, एक झँपकी लेने की कोशिश कर रहे हैं।

पुरोहित ने दरवाज़ा बन्द किया, एक मोमबत्ती जलायी और उसके सामने बैठ गये। मोमबत्ती का प्रकाश उनकी छाती, उनकी दाढ़ी और उनके चौड़े उदास चेहरे पर जिसमें आखें काले सूराख़-सी लग रही थीं, फैला हुआ था। बाहर कुत्ते भौंक रहे थे। गिरजाघर के प्रांगण में अँधेरा था, तासिख़ परिवार के घर के पास चश्मे के दूसरी तरफ़ कुछ मशालें अभी भी जल रही थीं। अपनी गोद में हाथ पर हाथ रखे पुरोहित इस तरह बैठे हुए थे जैसे किसी शव को देख रहे हों।

उनका गुस्सा शान्त हो चुका था, विचार व्यवस्थित हो गये थे लेकिन दर्द बढ़ गया था। जो कुछ जैसा घट रहा था वह उनके लिए असहनीय था अतः वह अतीत की स्मृतियों से सहारा ले रहे थे। कोई तीस साल से वह दोब्रुन में पुरोहित थे। गिरजाघर में और लोगों के साथ रहकर उन्होंने बहुत-से बुरे काम देखे थे और उन्हें याद भी थे लेकिन उन्होंने यह अनुमान कभी नहीं लगाया था—कि वह यह देखने के लिए जिंदा रहेंगे, कि उनके अपने ही ख़ून में और उनकी अपनी ही देहरी पर इस प्रकार की चरित्रहीनता अदृश्य और अप्रत्याशित रूप से माता-पिता का हृदय विदीर्ण करती हुई आयेगी, उनके चेहरों पर थूक जायेगी, ऐसा अशुभ जिसे किसी भी तरह से न रोका जा सकता है न बचा जा सकता है न तो सीधे संघर्ष द्वारा न ही स्वयं मृत्यु द्वारा।

अचानक असीम करुणा से भरा एक नया और व्यथापूर्ण भाव, उस अथाह रिक्तता में जो उनके भीतर फैल रही थी, पैदा हुआ। मानव मात्र पर उनके मन में करुणा जगी, उस हवा के लिये जिसमें वह साँस लेता है, उस रोटी के लिये जिससे वह क्षुधा शान्त करता है। उनके करुणा की वह लहर पागल याक्षा तक पहुँची—उस कलंक और अपमान के लिए जिसके गर्त्त में वह गिर पड़ा था। एक अनाथ की तरह वह सन्दूक़ पर सिकुड़े हुए बैठे थे। हथेलियों में मुँह छिपाये जीवन में पहली बार वह बिलख-बिलखकर रोने लगे। इतने अधिक पाप, लज्जा और अन्याय के आगे अशक्त और निरस्त्र, उनका दम घुट रहा था, दाँत भींचे

वह ग्रपने ग्राँसू रोकने की ग्रसफल चेष्टा कर रहे थे। ऐसा लगता था कि उन ग्राँसुग्रों ने हर चीज़ को जीवनमय कर दिया था ग्रौर उनके भीतर सब कुछ हिला दिया था। दर्द की ऐंठन में उनका सिर घुटनों पर गिर पड़ता था। लेकिन यकायक वह बहुत ग्रधिक बेचैन हो गये ग्रौर ग्रप्रत्याशित रूप से उठ खड़े हुए ग्रौर ग्रपने पूरे मन ग्रौर ग्रात्मा से उन्होंने वेश्या को श्राप दिया, लज्जा या विवेक से हीन उस भयावह जीव को।

४

उस रात ग्रनीका विशेग्राद वापस ग्रा गयी, उस समय चाँदनी थी। याक्षा तुरत उसके बाद ग्राया। दूसरी शाम जबकि क़ायममुक़ाम ग्रनीका के पास ग्राये किसी ने उन्हें कूँदरू से लदीं झाड़ियों के पीछे से गोली मार दी। ग्रलीबेग के दाहिने हाथ में कुछ चोट ग्रायी; उसी शाम याक्षा क़स्बे से ग़ायब हो गया।

ग्रनीका ने ग्रपने कंजर को ग्रलीबेग के घर उनका हालचाल जानने के लिए भेजा लेकिन नौकरों ने डंडों से कंजर को खदेड़ दिया। ग्रनीका इससे ज़्यादा परेशान नहीं हुई। वह जानती थी कि क़ायममुक़ाम ठीक होते ही ग्रायेंगे ग्रौर यदि उनसे कहा जाये तो जल्दी भी ग्रा सकते हैं। दोब्रुन की ग्रपनी यात्रा से उसे यह यकीन हो गया था कि वह जो चाहे सो कर सकती है। क़स्बे को भी यह यक़ीन हो गया था।

सितम्बर का महीना था। याक्षा बन्पोल्ये से ऊपर जंगलों में भाग गया था ग्रौर रात उसकी ग्राग क़स्बे से देखी जा सकती थी। वह दोब्रुन वापस नहीं जाना चाहता था ग्रौर विशेग्राद वापस ग्रा नहीं सकता था। हेदो साल्को को उसे गिरफ़्तार करने के लिए भेजा गया लेकिन उसका पता नहीं चला। शीघ्र ही उसकी खोज बन्द कर दी गयी ग्रौर याक्षा की ग्राग बन्पोल्ये के ऊपर उसी तरह फिर जलती हुई दिखायी देने लगी जहाँ ग्राधे घंटे में क़स्बे से पहुँचा जा सकता था। विशेग्राद में सभी जानते थे कि वह ग्राग याक्षा जलाता है। कभी-कभी ग्रनीका स्वयं बाहर ग्राँगन में ग्राकर ग्रग्नि की पहली लपटों को देखती जो हमेशा

उसी समय दिखाई देती जिस समय आकाश में पहले सितारे निकलते । फिर आग फैलती जाती और लाल होती जाती और पहाड़ियों तथा ऊपर आकाश के अँधेरे पर विजय प्राप्त कर लेती ।

इधर याक्षा जंगलों में छिपा हुआ था उधर दोब्रुन का पुरोहित अपने घर पर बिस्तरे में खामोश बीमार मुर्दे की तरह पड़े रहते थे। उनकी बीवी रात-दिन उनके पास बैठी रोती रहती थी। वह उनसे कहा करती थी कि कुछ कहें, कुछ माँगें लेकिन वह चुपचाप पड़े-पड़े अपने-अपने होंठ काटते रहते थे। उनकी सफ़ेद दाढ़ी और मूँछों में डूबी हुई उनकी दृष्टि निस्तेज हुई, अचल हुई और खो गयी।

क़ायममुक़ाम अपनी शामें द्रिना पर अपने बग़ीचे में दोस्तों के साथ पी कर गुज़ारते । वह पुलीस को हुक्म देते कि जाओ याक्षा को पकड़ो फिर दूसरे ही क्षण भूल जाते । उनका घाव शीघ्र ही भर गया । सरायेवो से दो मेहमान आये मोटे-तगड़े तुर्क ।

दिन में तीनों नदी पर क़ायममुक़ाम के बग़ीचे में बैठे जुआ खेलते रहते। सिपाहियों को वे हुक्म देते कि नदी पर पीले कद्दू तैरायें जो चाँदमारी के काम आते । ज्यों ही अँधेरा होता कंजर संगीतज्ञ गाना-बजाना शुरू कर देते। मेहमान अपने साथ आस्ट्रिया से खरीदकर आतिशबाज़ी लाये थे जो रात में छुड़ाई जाती । इन नये और अनसुने खेलों से सारे क़स्बे में उत्साह था । बच्चे तब तक नहीं सोते जब तक बगीचे से छुड़ाई गयी आतिशबाज़ी खतम नहीं हो जाती । क़स्बे के लोग आशंका और विस्मय से ग्रीष्मकालीन आकाश में लाल-हरी चिनगारियों का फूटना और फिर झिलमिलाती वर्षा की बूँदों की तरह पृथ्वी पर बिखरना देखते जिससे धरती पहले से और अधिक अँधेरी हो जाती । और इधर याक्षा की आग पहाड़ों में जलती होती ।

अनीका ने कुछ नहीं किया । अब वह किसी को नहीं आने देती । शाम होते ही वह बग़ीचे के दरवाज़े में ताला डलवा देती और येलेंका से कहती कि गाये वह सुनेगी । येलेंका की आवाज़ तेज थी, वह ऊँचे स्वरों में गाती जो इस पहाड़ी से उस पहाड़ी तक सारे क़स्बे में गूँजती । अनीका उसकी बग़ल में बैठी होती और भावहीन मुद्रा से बिना एक शब्द कहे सुनती रहती । लोग कहते कि यद्यपि अनीका ने पुरोहित को उसकी ही देहरी पर जाकर अपमानित किया था और सारे क़स्बे को अपने वश में कर लिया था फिर भी वह न खुश थी न शान्त ही । लोगों ने

उसके अगर कुछ शब्द सुने थे तो वे एक शराबी तुर्क के मुख से जो उसके घर के सामने डेरा डाले पड़ा था और हट नहीं रहा था। वे शब्द क़स्बे में आतंक और भय से दोहराए जाते।

यह तुर्क रूदो से आया हुआ था—धनी और उद्दंड। जब होश में रहता तो क़स्बे में दिखाई देता। लेकिन ज्यों ही पी लेता—और वह अक्सर ही पिये रहता—वह सीधे ऊपर मैदान में अनीका के द्वार पर जाता। दिन-प्रतिदिन वह घटिया और बदमिज़ाज होता गया। उसने येलेंका और सवेता को पीटा तथा अपनी ही तरह के अन्य आदमियों पर जो वहाँ आते और इन्तज़ार करते प्रहार करता। वह अनीका की खिड़की के नीचे खड़ा होकर चीख़ता, धमकाता और अपना बड़ा चाकू दरवाज़े में भोंक देता। एक शाम उसने फिर अपना चाकू आँगन में फेंका और अपनी पूरी शक्ति भर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाया कि "आज शाम मैं किसी की जान लेकर रहूँगा।" अनीका स्वयं निकली, बिना स्लीपर के हल्के सफ़ेद मोज़े पहने हुए और तुर्क के पास आयी।

"क्या मामला है? तुम क्यों चीख़ रहे हो? तुम चाहते क्या हो?" उसने अपनी हल्की भारी आवाज़ में पूछा। उसका चेहरा शान्त था यद्यपि भौंहें तनी हुई थीं। "किसी की तुम जान लोगे? आओ मारो! तुम सोचते हो तुम्हारे चाकू से कोई डरता है, मूर्ख, गँवार! आओ मारो!"

तुर्क की आँखें ठगी-सी देखती रह गयीं। वह कुछ चबा रहा था और निगल रहा था जिससे कि उसकी लम्बी लाल मूछें और उसका नोकीला बिना हज़ामत किया टेंटुआ हिल रहा था। वह भूल गया कि उसके हाथ में चाकू है और उसने कभी कुछ कहा है और इस तरह खड़ा रहा कि वह स्वयं अनीका द्वारा मार डाले जाने की प्रतीक्षा कर रहा हो। अनीका ने उसे ढकेल कर आँगन से बाहर कर दिया और दरवाज़ा बन्द कर लिया।

कहा जाता था कि घर के भीतर वापस आते हुए—जब कि वह येलेंका, ताने और एक नवयुवक के बीच से होकर गुज़र रही थी—और उस शराबी तुर्क को कोसते हुए उसने स्वयं से ज़ोर से कहा :

"जो भी मुझे मार डालेगा वह मेरा बड़ा उपकार करेगा।"

बुराई और उलझन के इस दृश्य में दो दुखी ऐसे थे जिसके बारे में क़स्बे में कोई कुछ नहीं जानता था। दो व्यक्ति यातना-पीड़ित थे—अपने ही द्वारा अपने-

अपने ढंग से चुपचाप और गुप्त रूप से। यातना जिसमें सब हाथ बटा सकते थे लेकिन जो उनके लिए एक विशेष गहरायी और अर्थ रखती थी। उनमें से एक था लाले, अनीका का भाई, और दूसरा मिहाइलो।

लाले उसी समय घर छोड़ कर चला गया था जब पहली बार उसे अनीका के आचरण में उच्छृंखलता दिखाई दी थी। वह कभी चार्शिया में दिखायी नहीं दिया। वह अपनी नानबाई की दूकान में रहता और सोता। जब कोई अचानक उसकी बहन का नाम ले देता तब उसके दीप्त लड़कैंधे चेहरे पर बादल छा जाते और उसकी आँखें निश्चल रूप से किसी चीज़ पर गड़ जातीं। लेकिन तुरत ही वह अपना सुन्दर सिर झटकता, जिस पर आटा जमा होता और उसकी सामान्य दुर्बल मन की मुस्कान उसके चेहरे पर वापस लौट आती। खुद से धीरे-धीरे बुदबुदाता हुआ वह तेज़ी से यन्त्रवत् वही उबा देने वाले सांचों में अपनी रोटियाँ ढालने लगता जैसा कि उसके बाप ने उसके बचपन में उसे सिखाया था।

वह लाले था, अनीका का भाई। उसके मन पर क्या बीतती है, या वह दुर्बल मन वाला नवयुवक अपने आधे अँधेरे कमरे में बड़ी भट्टी के पीछे कितना कुछ झेलता है, कोई नहीं जानता था।

मिहाइलो चार्शिया से थोड़ी दूर मास्टर निकोला के घर पर रहता था जो कि क्रनोयेलात्स की नानबाई की दूकान से ज़्यादा दूर नहीं थी। क्योंकि अनीका ने ज़िन्दगी का रास्ता पकड़ लिया था, मिहाइलो जितनी जल्दी हो सकता उतनी जल्दी यात्रा की राह पकड़ता रहता लेकिन जब क़स्बे में रहता अनीका के बारे में होती चर्चा सुननी ही पड़ती और जो कुछ होता उसे सब मालूम रहता।

मास्टर पीटर फिलीपोवात्स, जिन्होंने अपने ही लड़के को अपने घर से निकाल दिया था और जिसकी बोलचाल उनकी पत्नी और लड़कियों तक से बन्द थी, मिहाइलो के अतिशय प्रेमी थे। वे अक्सर सुबह तड़के मास्टर पीटर की दूकान के साये के नीचे जाग जाते। चार्शिया की अधिकतर दूकानें उस समय बन्द होतीं। चारों तरफ़ शान्ति होती। उदास और धुआएं हुए मास्टर पीटर अपनी भर्राई आवाज़ में कहते :

"देखो ! अभी तुम नौजवान हो लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि बुजुर्गों की उक्ति आज भी सही लगती है। हर स्त्री में एक दानव होता है, उसको मारना ज़रूरी है चाहे कठिन परिश्रम से चाहे बच्चे पैदा करके। वह स्त्री जो इन दोनों

से बची हो उसे समाप्त हो जाना चाहिए।"

और जैसे कि उन्होंने कभी इस पर विचार ही न किया हो, मास्टर पीटर की आवाज़ ऊँची हो जाती और वह मिहाइलो से वही एक शिकायत दोहराते।

मिहाइलो उन्हें तियाना या सवेता की याद दिलाते जो अनीका से पहले इस बुराई के लिए प्रसिद्ध थी लेकिन मास्टर पीटर उन्हें रोक कर कहते :

"इसके मुक़ाबले में तियाना सन्त थी। यदि सवेता ही एकमात्र समस्या होती तो क़स्बा चैन की नींद सोता। उसकी जगह हमेशा कोई न कोई बंजारिन या कुतिया रहती है और उनकी जगह भी सभी जानते हैं—सैनिकों के साथ गड्ढों में। कोई उनकी तरफ़ आँख उठा कर भी न देखता न ध्यान ही देता। लेकिन यह! देखते हो क्या हो रहा है? उसने गिरजाघर को नीचा दिखाया, अधिकारियों पर सिक्का जमाया और हम सबको खत्म कर देगी। और कोई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।"

"कोई भी नहीं?"

"खुदा क़सम, कोई भी नहीं। हमारे क़स्बे में वही दोनों है—पाशा भी और बिशप भी। हम सब नरक में भूने जायेंगे क्योंकि हममें से किसी में उसे मारने का साहस नहीं है। जो सड़क पर घात लगाये बैठे रहते हैं वह कम हानि करते हैं बनिस्बत इसके।"

एक बार फिर मास्टर पीटर ने उसके पापकर्मों और बुरी हरकतों का वर्णन किया जिसमें उनके लड़के के दुर्भाग्य का भी हवाला था। वहाँ तक आते-आते वह केवल अपना हाथ हिलाकर रह जाते थे और चुपचाप कटुता पी जाते थे। मिहाइलो ने उन्हें दिलासा देने की कोशिश की :

"एक दिन आयेगा जब उसका भी अन्त होगा।"

"नहीं, ऐसी स्त्री का कोई अन्त नहीं होता। वह जब तक चाहे तब तक हमारे साथ खेलती रहेगी। तुम हम लोगों को या इस क़स्बे को नहीं जानते। हम हर बुराई से लड़ सकते हैं लेकिन इससे नहीं। वह हमारे ऊपर सवार है और हममें से कोई भी उससे मुक्त नहीं हो सकता।"

इस मुहावरे के साथ मास्टर पीटर ने सारी बात खतम की जिसे मिहाइलो विचारमग्न सुन रहा था।

यदि इस कटु वृद्ध को यह पता होता कि इस तरह की बातचीत से मिहाइलो

को कितनी गहरी तकलीफ़ होती है तो निःसन्देह उसने कोई दूसरा साथी खोज लिया होता या अपने दुर्भाग्य को अकेले झेलता।

मिहाइलो को कभी-कभी आश्चर्य होता था कि इन लोगों के बीच घूमने, काम करने और बिना अपने पर नियन्त्रण खोए इन लोगों से बात करने की शक्ति उसमें कहाँ से आती है। सारे समय अनीका के बारे में सुन-सुनकर उसके उद्धार की क्षणजीवी और विश्वासघाती आशा एक बार पुनः उसे अपने ही विरुद्ध कर देती। अपने से ऊब कर अक्सर वह सोचता कि कैसे वह एक क्षण को भी यह मान पाता है कि जो कुछ घटा है वह मिट जायेगा और लोग उसे भूल जायेंगे।

वर्षों पहले सरायेवो में उसने एक सर्बी को एक मुसलमान को बीच सड़क पर छुरा मारते देखा था। बेचारा मुसलमान अपने हत्यारे को मुड़कर देख भी नहीं सका जिसका दूसरे लोग पीछा कर रहे थे लेकिन धीरे-धीरे सामने जो दरवाज़ा खुला था उस ओर बढ़ने लगा। बिना किसी की ओर देखे हुए वह इस तरह चल रहा था जैसे एक-एक क़दम गिन रहा हो; अपना घाव वह दोनों हाथों से दबाये हुए था, साफ़-साफ़ यह जानता हुआ कि वह तभी तक ज़िन्दा है जब तक छुरा घाव के भीतर है।

मिहाइलो ने क्रिस्तो की हत्या को अपनी ही मृत्यु की तरह देखा था; अवश्यम्भावी और आसन्न, और समझ गया था कि आठ वर्ष की यातना के बाद भी उसका निस्तार नहीं हुआ है। उस रात वह—मिहाइलो—सांघातिक रूप से घायल हुआ था। यह आठ वर्ष उन्हीं कुछ क़दमों की तरह रहे हैं जो उस मुसलमान ने सामने की दरवाज़े की ओर बढ़ाये थे, आँखें नीची किए और घाव को दोनों हाथों से थामे।

मिहाइलो को अपने ऊपर दया आयी।

"अब समय आ गया है जब घाव से छुरा निकालना पड़ेगा। अपने को छलते रहने से कोई फ़ायदा नहीं।"

वह याद नहीं कर सका कि कब पहली बार उसने अनीका और क्रिस्तिनित्सा में भेद करने की तमीज़ खो दी थी; उसके मस्तिष्क में एक लम्बे अरसे से दोनों ही स्त्रियाँ एक ही थीं। वस्तुतः जिस स्त्री की वह कामना करता या जिसे प्राप्त कर लेता वह एक ही स्त्री हो जाती : लम्बी, प्रसन्नचित्त क्रिस्तीनीत्सा, अपने लाल केशों बलिष्ठ भुजाओं और चमकदार आँखों के साथ।

ऊपर पहाड़ी पर, एक हाँक की दूरी पर, एक स्त्री रहती थी जो अन्य स्त्रियों से अधिक उसे क्रिस्तिनित्सा की याद दिलाती थी और क्रिस्तिनित्सा की ही तरह उसने उसमें आशा जगायी थी और फिर एक संक्षिप्त और यातनापूर्ण खेल के बाद उसने प्रकट किया कि वह क्या है, उसका पूर्वज्ञान उसने भी पुष्ट किया।

बुद्धिमान और ईमानदार पिता द्वारा पोषित, प्रकृति से अतिसंवेदनशील, कोमल फिर भी भीतर से सख्त, मिहाइलो बड़ी से बड़ी यातना झेलने में समर्थ थे। वह जानते थे कि किस तरह इन भावों को छिपाया जाये। लेकिन उनकी यातना अब ऐसे अनुपात में बढ़ गयी थी कि उसका छिपाना लगभग असम्भव हो गया था। लज्जा उसे प्रेत की तरह दिखायी देती और अधिक यातना भरी और स्वयं मृत्यु से भी अधिक भयावह। और यह यातना दिन-प्रतिदिन के जीवन में मामूली से मामूली बातों में पैठ जाती।

बच्चों जैसे हठ की कारण वह कुछ तफ़सील पर बार-बार पहुँचते। उदाहरण के लिए उन्हें यह यक़ीन था कि बेहतर होता यदि उन्होंने क्रिस्तिनित्सा के हाथों से छुरा जब वह उसे दे रही थी ले लिया होता। लेकिन छुरा वहाँ छोड़ कर, जैसे कि उसने उसे उसके पास बन्धक रख दिया हो, और अपने और सन्त्रास के बीच एक कड़ी जोड़ कर वह उस रात भाग आया था। और जब कि संयोग से वह 'छुरा' शब्द सुनता, जिसका उससे कोई सम्बन्ध भी नहीं होता वह अपने आप सोचता :

''मेरा छुरा अभी भी उसके पास है।''

चेतना के इस अबोध्य खेल ने धीरे-धीरे मिहाइलो के सम्पूर्ण अस्तित्व को जीत लिया।

अक्सर अपना लेखा-जोखा करते हुए एक ही विभीषिका ऐसी थी जिसे वह सम्भव नहीं मानता था : वही स्वप्न बार-बार देखना, निरन्तर इस पूर्ण जागरूकता के साथ कि उससे पहले स्वप्न का क्या हश्र हुआ। इस प्रकार के अपने पहले स्वप्न की उसे अब याद नहीं है लेकिन उसे यह भान है कि हर दोहराव यथार्थ में कुछ जोड़ता है, कुछ तफ़सील, कुछ छोटी-मोटी बातें एक बढ़ते हुए तीखे बिम्ब में। यह बिम्ब धीरे-धीरे गहन होता जाता है और अपने को उसके स्वप्न जगत् से पृथक कर लेता है, यथार्थ की ओर अग्रसर होता है और सूक्ष्म रूप में उसमें प्रवेश कर जाता है।

यह उसका सपना था : सुबह सुहावनी है। वह उसकी ताज़गी और शीतलता अपने चेहरे पर, अपने मुख में, अपने सारे शरीर में अनुभव करता है। वह सीधे, शान से किसी निर्णय के संघात से चलता जाता है जो इतना बड़ा है कि उसकी पूरी तरह समझ में नहीं आता; वह केवल उसका भारीपन महसूस करता है। ऐसा लगता है कि गलियाँ और चौक उसके खाली होते जा रहे हैं केवल उसके निर्णय का भार उसे आगे ढकेल रहा है। इस तरह वह क्नोएलात्स के नानबाई की दुकान से आगे बढ़ जाता है जहाँ से लाले का प्रसन्न गायन सुना जा सकता है। वह मैदान के ऊपर चढ़ जाता है। अनीका का आँगन ताज़े रंगीन फूलों से भरा हुआ है। घर का दरवाज़ा खुला जैसे किसी के आने की प्रतीक्षा कर रहा हो।

कितना घोर प्रयास मिहाइलो ने यथार्थ और स्वप्न दोनों में किया कि वह दरवाज़े के भीतर प्रयास न करे, देहरी न लाँघे। वर्षों से वह अपना काम खुद करता है, और यात्रा करता है यहाँ तक कि जब ज़रूरत नहीं होती तब भी। महज़ इसलिए कि वह इस आँगन से दूर रह सके। एक लम्बे अरसे से वह ऐसा करने में सफल रहा है लेकिन अब उसे लगता है वह अपने पर क़ाबू नहीं रख पायेगा। वह काम की बातें भी भूल जाता है, निर्धारित समय पर किसी के पास नहीं पहुँच पाता। यह जानकर कि वह लापरवाह और अन्यमनस्क हो रहा है, वह भय से भर गया जैसे कि उसे अपने भीतर किसी बीमारी का पता लगा हो।

शायद एक और रास्ता भी था : विनाश के पूर्व ही सब कुछ छोड़ दे, उस दुनिया में भाग जाये जहाँ आदमी बिना सम्मान के होता है, अपराधी। यदि यह समस्या वास्तविक होती, उसे अपने शत्रु दिखाई देते तो उसने ऐसा कर लिया होता। लेकिन जैसी स्थिति है उसमें वह कहाँ जाये। उसके भय का निवास सर्वत्र है, हर जगह उसे मिलेगा, हर सड़क पर, हर नगर में।

उसने यहाँ तक सोचा कि अनीका को एक पत्र भेजे, उसमें उसे धमकाये, अपनी ही ख़ातिर, क़स्बे की ख़ातिर, उसकी ख़ातिर यहाँ से चले जाने की प्रार्थना करे। लेकिन उसे तुरत ऐसे सन्देश की निरर्थकता समझ में आ जाती।

वह अक्सर लाले के बारे में सोचता। उस सुन्दर, सीधे सरल नवयुवक के प्रति हमेशा वह अनुरक्त रहा। उसके और अनीका के भाई के बीच हमेशा एक प्रकार का आकर्षण रहा जिसमें प्रेम, अविश्वास और रूखेपन का मिश्रण रहता। मास्टर पीटर की बातचीत के बाद अक्सर वह लाले के बारे में सोचता। उसे

लगता कि अनीका का भाई होने के नाते लाले सब देखता और सब समझता है और सम्भवतः उसे ही वह व्यक्ति होना चाहिए जो अनीका को निरस्त्र और पराजित करे। एक दिन तड़के नानबाई की उसकी दूकान से गुज़रते हुए मिहाइलो ने लाले से मुलाक़ात की। उसने देखा लाले ज़ोर-ज़ोर से गा रहा है और सफ़ेद रोटियों में बड़े काले चाकू से छेद कर रहा है। दोनों ने बातचीत की, उतनी जितनी लाले से कोई बात कर सकता था। मिहाइलो ने बातचीत के दौरान अनीका का नाम लिया लेकिन कोई नतीज़ा न निकला। लाले एक प्रसन्न मूर्ख की तरह मुस्कराता रहा और आटे, पानी और रोटी की बातें करता रहा।

इस प्रकार अनीका के भाई को अपनी यातना में शामिल कर पाने की सभी आशाएँ मिहाइलो ने छोड़ दी। हर व्यक्ति किनारा कसता जा रहा है और उसे अनीका के साथ अकेला छोड़ता जा रहा है। हर चीज़ उसे आगे ले जा रही है और कभी-कभी ही वह दो-एक कदम पीछे लौटता है यह नापने के लिए कि वह इस रास्ते का, जिस पर वह सूक्ष्म रूप से सरक रहा है, कितना सफ़र तय कर चुका है।

विशेग्राद की वह सुन्दर शरद् ऋतु थी। मिहाइलो को लगा, वह भी अतीन्द्रिय रूप से, कि वह शीघ्र ही यात्रा पर जायेगा। एक सुबह वह यात्रा के लिए प्रस्थान के विचारों से भरा हुआ उठा। आँगन में चश्मे से कुछ देर बाद अपना मुँह धोते हुए उसने यकायक अंजलि में शीतल स्फूर्तिदायक जल भर कर कहा, "अलविदा" और तुरत ही पानी गिरा दिया। बहते पानी के साथ उसके विचार भी बह गये।

मिहाइलो चारों ओर हर चीज़ से विदा ले रहा था। एक दिन वह अनीका के कंजरिन के पास गया जो अक्सर उसे चार्शिया में दिखायी दे जाती थी और उससे स्वाभाविक स्वरों में कहा :

"अनीका से पूछना क्या मैं कल सुबह उससे मिलने आ सकता हूँ। मैं तभी आऊँगा जब कोई और वहाँ न हो। मुझे उससे कुछ कहना है।"

कंजरिन चली गयी। मिहाइलो थोड़ा काँप उठा और चारों तरफ देखने लगा जैसे कि उसे मदद या सलाह चाहिये। लेकिन सारे दिन वह व्यवस्थित रहा। उसने ध्यान से हिसाब-किताब का अपना काम किया और चारों ओर से घर साफ़ किया। सूर्यास्त के ठीक पूर्व स्त्राजीस्ते की पहाड़ी की ओर रवाना हो गया, जिस

पर अनेकों बार उसने अपने दोस्तों के साथ शामें बितायी थीं।

वह धीरे-धीरे चढ़ा और तुर्कों के कब्रिस्तान से कुछ ऊपर एक खुली जगह में बैठ गया। उसकी बग़ल में ज़मीन पर कुछ खाने का सामान और राकिया का एक प्याला रखा हुआ था। उसने धीरे से लोहे का एक टुकड़ा चकमक पर रगड़ा और आहिस्ता से जली हुई सिगरेट अपने बायें हाथ की उँगलियों में थामे रहा। उसकी आँखों के सामने धुआँ उठता था, दृश्य को धुँधला करता था, फिर छल्लों की तरह चारों ओर उठ कर हवा में धीरे-धीरे खो जाता था। उसकी दृष्टि उससे बँधी थी। अभी भी देवदारु के वृक्षों के बीच सूरज की रोशनी की हल्की चमक थी। नीचे विशेग्राद के सफ़ेद मकानों की काले-लाल छतों से धुआँ धीरे-धीरे उठ रहा था। रिज़ाव नदी की एक बढ़ी हुई शाखा में आकाश और उसके तट पर उगी झाड़ियाँ प्रतिबिम्बित थीं।

मिहाइलो ने बहुत-सी ऐसी चीज़ें भी देखीं जो उस स्थान से दिखाई नहीं देती थीं; दूकानों के दरवाज़े, घरों के फाटक बड़े ओपदार पत्थरों के साथ, जिनके बाहर बच्चे खेलते हैं; आदमी, उनकी दृष्टियाँ और उनके अभिवादन।

उन्होंने एक प्याला राकिया पी लेकिन खाना भूल गये। धुआँ गुलाबी हो रहा था और उसके छल्ले हवा में बहुत देर तक चक्कर काटते थे और फिर धीरे-धीरे पतले होते जाते थे। उस झुटपुटे में हर चीज़ की आकृति देर तक बनी रहती। और मिहाइलो ने धुआँ और हवा अपने फेफड़ों में भर ली, विशेग्राद की हवा, घरों को, पहाड़ों की तीखी चोटियों को, और वनपथी को देखा, जिन सबसे अब तक अनेक वर्षों से वह जुड़ा हुआ था। सोचते-सोचते चोटियाँ खो गयीं; रात के पूर्व की काली-नीली चमक ने उन्हें छिपा लिया था।

इन पहाड़ियों और यहाँ के लोगों के बीच रहते उसे छः साल हो गये। यहाँ उसने एक बार फिर आदमियों के बीच अपना स्थान बनाया। यहाँ उसने अपनी जड़ें फैलायीं यहाँ उसका जीवन फिर से शुरू हुआ। अपनी आकृति बदलने और उसकी गति को एक बार फिर तोड़ने से उसे कितनी घृणा थी।

उसने सिगरेट की दो-एक कश ली और धुआँ क़स्बे पर मँडराने लगा जहाँ घरों में आग जलनी शुरू हो रही थी। वह एक के बाद एक सिगरेट पीता रहा और उसे लगा कि राकिया ने उसकी छाती में एक भनभनाहट पैदा कर दी है। क्षितिज के पास जहाँ सूरज डूबा था बादल जलते हुए सुर्ख़ रंग के दीख रहे थे

जिससे यानयात्स पर्वत के ऊपर एक निर्वृक्ष क्षेत्र दीप्त हो रहा था। इस वनपथ को मिहाइलो ने पहले कभी नहीं देखा था। इसे देखकर, जैसे किसी ने संकेत दिया हो, मिहाइलो उठ खड़ा हुआ और अँधेरे में उतर कर क़स्बे में चला गया।

वह सीधे घर गया। उसने अहाते के फाटक को धक्का दिया और उसके लकड़ी के ताले को टोटला—वर्षों से वह इस जर्जर दरवाज़े को खोल-बन्द कर रहा है जिसकी सारी कमियाँ और विशेषताएँ उसे अच्छी तरह मालूम हैं। घर का दरवाज़ा आधा खुला था और भीतर आग जल रही थी। अहाता पार करके वह अचानक चौंक पड़ा जैसे वह किसी चीज़ से ठोकर खा गया हो। बखार के पास अनीका की कानी कंजरिन खड़ी थी। भौचक्का-सा उसने पास जाकर पूछा कि वह क्या चाहती है। वह पहले बोली, लगभग फुसफुसाती हुई :

"अनीका ने कहलाया है कि आप कल सवेरे जितने तड़के हो सके उसके यहाँ आयें।" तब वह धीरे-धीरे दबे पाँव चली गयी।

उस रात उसने अपने सारे काग़ज़ात, अपने साझेदार मास्टर निकोला के लिए व्यवस्थित किये। उस समय तक सुबह हो चुकी थी और वह अपनी तैयारियाँ पूरी कर चुका था। मिहाइलो सोया नहीं था। एक शान्त उल्लास ने, जो उस पर छाया हुआ था, रात छोटी कर दी थी और हर यथार्थ को मिटा दिया था।

तीखी ढलान वाले ऊँचे पर्वतों से घिरे होने के कारण सूरज विशेग्राद में देर से निकलता है। लेकिन सूर्योदय के कहीं पहले क़स्बे में एक अप्रत्यक्ष रोशनी भर जाती है जो लगता है कि आकाश के मध्य से ही गिर रही हो। इस शान्त रोशनी में मिहाइलो ने अहाता पार किया, कन्धे पर एक थैला डाला, जैसा कि वह अक्सर यात्रा पर जाने के पूर्व करता था और मैदान के लिए रवाना हो गया।

सड़कें उस समय वीरान थीं और अधिक चौड़ी तथा चमकदार लग रही थीं। वह लाले की रोटियों की दूकान के सामने से गुज़रा लेकिन वहाँ से गाने की आवाज़ नहीं आ रही थी जो दिन के इस समय के लिए असाधारण बात थी। वस्तुतः दूकान बन्द थी, वह किसी पुराने मक़बरे की तरह अकेली और अँधेरी दिखाई दे रही थी। लेकिन क़स्बे में और हर चीज़ अपनी-अपनी जगह बदस्तूर लगती थी।

ऊपर मैदान को जाने वाली पगडंडी सूनी थी। आकाश जलते हुए खेत की तरह लग रहा था जिस में से [illegible] सूर्य निकलने वाला था। घरों की ओरियों

के नीचे फाख्ताएँ बोल रही थीं। अनेक घरों के दरवाज़े खुले थे और अँधेरे थे जैसे कि घरवाले चाहते हों कि अँधेरा दरवाज़ों पर पड़ा रहे।

अनीका का फाटक भी भट्टा-सा खुला था। घर के ऊपर ढलुआं बग़ीचे में येलेंका हरियाली में छिपी हुई केवाँच की फलियाँ तोड़ रही थी और झींगुर की तरह गा रही थी।

मिहाइलो ने ज्योंही घर के भीतर प्रवेश किया उसकी निगाह चूल्हे की ओर गयी। राख में एक काला नानबाई का चाकू पड़ा था जो मूठ तक खून से सना था। यह वही चाकू था जिसे उसने अक्सर लाले के हाथ में रोटियों की दूकान पर उससे बातचीत करते हुए देखा था।

आश्चर्य से भरा चकराया हुआ जैसे कि एक विचित्र स्वप्न के भीतर दूसरा विचित्र स्वप्न हो, मिहाइलो धीरे-धीरे अनीका के दरवाज़े तक गया, बेहिचक उसने दरवाज़ा खोला और खड़ा रहा। वह एक साफ़-सुथरा छोटा कमरा था जिसमें क़ालीन बिछा हुआ था। मिन्देरलुक से दो गद्दे हटे हुए थे। अनीका का शरीर फ़र्श पर पड़ा था। वह कपड़े पहने हुई थी; उसकी बंडी और कमीज़ में छाती के बीच सूराख था। उसे देखकर ऐसा लगता था जैसे वह बहुत शान्तिपूर्वक मरी हो; मौत की कोई यातना उसके चेहरे पर नहीं थी। सामान्यतया जैसी वह दीखती थी इस समय उससे बड़ी दीख रही थी, फ़र्श पर पसरी हुई, उसकी पीठ गद्दे पर थी और उसका सिर दीवार के सहारे रखे तोशकों पर। उसके बालों में एक फूल लगा था। कहीं भी ख़ून दिखायी नहीं दे रहा था।

भय से बर्फ़ हुए मिहाइलो ने प्रार्थना के लिए अपने हाथ सलीब की मुद्रा में उठाये फिर ठिठका और उन्हीं उठे हाथों से उसने अनीका के कमरे का दरवाज़ा भेड़ दिया। चलते समय उसने एक बार फिर ख़ून से सना चाकू राख में पड़ा देखा, वह इस तरह उस खामोशी में पड़ा था जैसे सदियों से मृत चीज़ों के बीच कुछ पड़ा रहता है। वह घूमा और एक गहरी कँपकँपी के साथ उसने चाकू उठा लिया, पहले उसे उसी राख से पोंछा फिर चूल्हे के लकड़ी के चौखटे से और उसे अपनी पेटी के नीचे दूसरे बड़े चाकू के पास खोंस लिया जिसे वह उस सुबह खुद अपने साथ ले गया था।

बाहर सूर्योदय हो रहा था और येलेंका ऊपर बग़ीचे में गा रही थी। चश्मा ज़ोरों से कल-कल कर रहा था। [illegible] के तले एक नीची बेंच

पर दिन भर के लिए बैठ गया था। ग्रपने में प्रसन्नचित मगन चारों तरफ़ चीनी की ढेरियाँ लगा रहा था! यहाँ तक कि उसने पास से जाते हुए मिहाइलो की ग्रोर देखा तक नहीं जो तेज़ी से चश्मे की ग्रोर जा रहा था जिसमें ग्रभी भी सुबह की छायाएँ मँडरा रही थीं।

ग्रनीका की मृत्यु से विशेग्राद बदल गया जैसा कि होना ही था। जिस तेज़ी से सारी चीज़ें पुरानी गति में ढल गयीं उस पर वस्तुतः यक़ीन कर पाना कठिन था। कोई यह जानने का इच्छुक नहीं था कि वह स्त्री कहाँ से ग्रायी थी, वह क्यों रही थी ग्रौर क्या चाहती थी। वह हानिकारक थी ग्रौर ख़तरनाक थी ग्रौर वह मर गयी, दफ़ना दी गयी ग्रौर भुला दी गयी। क़स्बा, जिसमें क्षणिक उलट-पुलट हुग्रा था ग्रब फिर चैन की नींद सोने लगा था, निर्बन्ध घूमने लगा था ग्रौर चैन की साँस लेने लगा था। यदि ऐसा ग्रभिशाप फिर ग्रायेगा—ग्रौर कभी न कभी ग्रायेगा ही—तो क़स्बा फिर उसका मुक़ाबला करेगा, पराजित होगा, लड़ेगा, उसे तोड़ेगा, दफ़ना देगा ग्रौर भूल जायेगा।

हेदो साल्को ने हत्या की जाँच की। येलेंका, सवेता ग्रौर कंजरिन से पूछताछ की गयी, उन्हें पीटा गया, निःसन्देह बेकार ही, क्योंकि वे सत्य कह रही थीं।

पता चला कि ग्रनीका ने उस सुबह ग्रकेले रहने की इच्छा व्यक्त की थी। उसने घर ग्रच्छी तरह साफ़ किया था ग्रौर सबको उसमें ग्राने की मनाही कर दी थी। उसने दोनों कंजरों को ग्रौर सवेता को वुशीन किसी ग्रौरत के पास भेज दिया था (जो कई घंटों का सफ़र था) ग्रौर येलेंका को ग्रादेश दे दिया था कि वह ऊपर बग़ीचे में केवाँच की फलियाँ तोड़े; उसे यह हिदायत थी कि जब तक बुलाया न जाये घर में न ग्राये।

कंजरिन ने बताया कि उसी शाम जब उसने ग्रनीका का निमन्त्रण मिहाइलो को दिया था उसने लाले को भी जाकर ऐसा ही निमन्त्रण दिया था :

"ग्रनीका ने कहलाया है कि तुम कल सबेरे जितने तड़के हो सकता हो जरूर ग्राग्रो।"

लाले ने उसे कोई जवाब नहीं दिया था।

ग्रनीका ने क्यों उसी सुबह जब मिहाइलो को बुलाया था, ग्रपने भाई को भी बुलाया था जिसे उसने इतने लम्बे ग्ररसे में कभी देखा तक नहीं था? क्या यह संयोग था या वह कोई जाल रच रही थी, ग्रचरज में डालना चाहती थी? ग्रौर

इन दोनों में से किसने अनीका की हत्या की ? कंजरिन कुछ बता नहीं सकी न ही येलेंका या सवेता, क्योंकि अनीका उनसे बहुत कम बात करती थी और निश्चय ही अपनी योजनाएँ कभी उन्हें नहीं बताती थी।

येलेंका इतना ही बता सकी कि पहाड़ी पर से वह देखती रही थी कि घर में कौन आ-जा रहा है और उसने देखा था कि लाले पहले आया था और कुछ देर बाद उसने उसे घर से भाग कर जाते हुए देखा। उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वह जानती थी कि लाले थोड़ा सनकी है। लेकिन फिर इसके बाद मिहाइलो आया; वह घर में थोड़ी देर रहा और फिर घर से सधे हुए लम्बे-लम्बे डग भरता चला गया। यद्यपि वह यह जानने की बहुत इच्छुक थी कि लाले क्यों आया था जिससे अनीका का झगड़ा था, और उसे मिहाइलो से क्या काम हो सकता है, जिससे इधर उसे कोई मतलब नहीं था, परन्तु येलेंका की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह बग़ीचे से बिना बुलाये हुए जाये। फिर जब उसने एक बूढ़ी औरत का, जो घर-घर कपड़ा बेचती फिरती थी और अचानक जिसने अनीका को मरा हुआ देखा, रोना-चिल्लाना सुना तो वह दौड़ी हुई गयी।

किसानों का कहना था कि उन्होंने लाले को दोब्रुन के ऊपर उज़ित्से की सड़क पर देखा है जब कि आम तौर पर यह जाना जाता था कि मिहाइलो बिल्कुल दूसरी दिशा में सरायेवो सड़क पर चला गया है। जिस चाकू से अनीका की हत्या हुई वह कभी नहीं मिला।

हर चीज़ अस्पष्ट थी, चकरा देने वाली थी, जिसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती थी। हेदो साल्को को अस्पष्टता पसन्द थी क्योंकि उसका मतलब था कि वह ऐसी जाँच ख़त्म कर सकता है जिससे रहस्य का कुछ पता ही न चलता हो, किसी बात की पुष्टि ही न होती हो, और यदि सत्य मालूम भी हो जाए तो किसी को उसकी ज़रूरत नहीं है और न ही कोई जानना चाहता है।

क़ायममुक़ाम ने दो-तीन सप्ताह प्लेवल्ये में अपने सम्बन्धियों के साथ गुज़ारे और बाद में विशेग्राद लौट कर हमेशा की तरह अपने सुख और दूसरों के सुख के लिए रहने लगे। यह सच है कि अपने उद्यान में बैठे, हुक्का गुड़गुड़ाते और तेज़ी से बहती द्रिना नदी को निहारते हुए, वह कभी-कभी मैदान की इस मसीही स्त्री के बारे में सोचते। "चमत्कार है ! कि इतने अपार सौन्दर्य का कुछ भी शेष नहीं रहा।" जो भी हो यही उनके सोचने का विषय था। लेकिन वह यह नहीं मानते

थे कि क़स्बे में कोई भी ऐसा है जिसके साथ इस पर विचार करने से कोई फ़ायदा हो।

शेष क़स्बा तेज़ी से सँभल रहा था और अपने रीति के अनुसार ढलता जा रहा था। स्त्रियाँ अधिक प्रसन्न थीं और पुरुष अधिक शान्त।

मास्टर पीटर फ़िलीपोवात्स के लड़के का अपने बाप से झगड़ा ख़त्म हो गया था। वह अपना सिर झुकाए रखता, अचानक मोटा हो गया और पतली लम्बी मूँछें रख लीं; घुटनों के नीचे अपनी मुड़ी हुई टाँगों से वह सारे क़स्बे का लड़खड़ाते हुए चक्कर लगा आता था। क्रिसमस के बाद उसकी शादी कर दी जाएगी।

क़स्बे के आदमियों में मास्टर पीटर ही ऐसे थे जो अपनी दूकान में पहले की ही तरह चिड़चिड़ाते गुस्से में बैठे रहते। मिहाइलो के लिए उन्हें गहरा दुःख था, एक विलक्षण नवयुवक जिसने ज़रूर अपने भीतर कोई बड़ा दर्द छिपा रखा था। और जब चार्शिया के आदमी कहते कि भाग्य की बात है कि क़स्बे को अनीका से छुटकारा मिल गया तो वह केवल अपना हाथ हिलाते :

"वह अपनी मौत से भी हममें ज़हर घोलेगी और यह ज़हर सौ वर्ष तक रहेगा। मेरी बात याद रखना, उसका ज़हर हममें सौ साल तक रहेगा।"

लेकिन वही एक आदमी ऐसे थे जो इस तरह बोलते थे।

यहाँ तक कि दोब्रुन के पुरोहित के घर तक में स्थिति बेहतर हो गयी थी। अनीका की मृत्यु के बाद याक्षा ने सर्बिया आना-जाना शुरू कर दिया लेकिन रास्ते में उसने सुना कि उसके बाप मृत्युशय्या पर है। यकायक उसका मन बदल गया। रात में दोब्रुन पहुँचकर वह सीधे अपने पिता के कमरे में पहुँचा; पिता के हाथ चूमे और उनसे क्षमा और आशीर्वाद पा लिया। उसके पिता ने उसे सीधे त्रनावत्सी भेज दिया जहाँ उसे तब तक प्रतीक्षा करनी थी जब तक तूफ़ान ख़त्म न हो जाये। कुछ ही दिनों बाद पुरोहित इतने ठीक हो गए कि विशेग्राद जा सकें। वहाँ उन्हें पता चला कि क़ायममुक़ाम का अब याक्षा को सज़ा देने का कोई इरादा नहीं है। हेदो ने, अपनी ओर से, यह बहाना बना रखा था कि उसे नहीं मालूम किसने क़ायमुक़ाम पर गोली चलायी। हर चीज़ जैसे किसी गुप्त समझौते द्वारा भुला दी गयी और हर चीज़ इस तरह अपने-आप तय हो रही थी जैसे कि कोई चमत्कार हो।

अगली गर्मियों में याक्षा का विवाह हो गया और उनके पिता ने जीते जी

उनको अपना उत्तराधिकारी बनाया और दोब्रुन के पल्ली पुरोहित के रूप में उनका अभिषेक कर दिया ।

लाले की रोटियों की दूकान और क्नोयेलात्स का घर म्यूनिसिपैलिटी ने अपने कब्ज़े में ले लिया और उन्हें किराये पर चढ़ा दिया। अब वहाँ और लोग रहते, काम करते । बहुत कम लोगों को अंजा विदिनका के बच्चों की याद रह गई और मिहाइलो को भी लोग भुला रहे थे । केवल मिहाइलो के भूतपूर्व मालिक और साझेदार निकोला सुबोतीख़ उनकी याद करते । मिहाइलो के न रहने पर उनके लिए यह ज़रूरी हो गया कि वह विशेग्राद में आकर स्थायी रूप से रहें क्योंकि उनकी जगह कोई दूसरा दूकान में बैठने वाला नहीं था । वह कम यात्रा करते हैं और कम जुआ खेलते हैं । ऐसा लगता कि अब वह अपने को कम क्षय कर रहे थे । अब वह मास्टर पीटर फ़िलीपोवात्स से गपशप करते जो अक्सर शाम होते ही जहाँ ज़रा गर्मी कम होती उनके पास आ जाते । एक बड़े ख़ूबसूरत अहाते में चश्मे के ऊपर कामिनी के पेड़ों के पास जलबेंत की चटाई बिछाकर वह राकिया पीते और अक्सर मिहाइलो की बात करते ।

"वह आदमी जैसे कीचड़ में गिर गया" मास्टर निकोला अपनी रख़्त कखर-खराती आवाज़ में कहते, "और यदि वह मेरा अपना लड़का होता, तो मुझे लगता है, मुझे ज़्यादा अफ़सोस नहीं होता ।"

और वह सैकड़ों बार उस रोटी और नमक को धन्य मानते जो उन्होंने और मिहाइलो ने साथ-साथ खायी थीं । उनकी आँखों की कोरों में एक अचल चिनगारी चमकती है, एक आँसू जो कभी ढुलका नहीं लेकिन हर बार जब भी मिहाइलो की बात हुई छलका है जैसे कि हमेशा वह वही आँसू रहा हो ।

जेपा पुल

'ज़ेपा ब्रिज' नामक कहानी का अनुवाद

अनुवादक

भारतभूषण अग्रवाल

अपनी वज़ारत के चौथे साल में वज़ीरेआज़म यूसुफ़ अपनी एक ग़लती से गहरी साज़िश के शिकार हो गये और अपनी इज़्ज़त गँवा बैठे। यह कशमकश जाड़ों के शुरू से अगले वसन्त तक चलती रही और वह वसन्त भी ऐसा नागवार और ठंडा था कि गर्मियों के सूरज को किसी तरह चमकने ही न देता था। पर मई के महीने में यूसुफ़ मुक़दमा जीतकर क़ैद से रिहा हो गये। ज़िन्दगी फिर अपने पुराने ढर्रे पर आ गयी—शानदार, स्थिर और एकतान। पर जाड़ों के उन चन्द महीनों ने, जब ज़िन्दगी-मौत का, इज़्ज़त-बेइज़्ज़ती का फ़ासला चाकू की धार की बराबर ही रह गयी थी, जीत के बावजूद वज़ीर को कुछ संजीदा और गुमसुम बना दिया। जिन लोगों ने बहुत दुनिया देखी होती है और तकलीफ़ उठायी होती है, उनमें कुछ ऐसी चीज़ आ जाती है जिसे वे भीतर ही भीतर संजोये रहते हैं और जो कभी अनजाने ही उनकी निगाह, चाल-ढाल या बातचीत में प्रकट हो जाती है। क़ैद और बेइज़्ज़ती की सूनी घड़ियों में वज़ीर को अपने वतन और अपने ख़ानदान की बड़ी याद आती रही, क्योंकि सपनों के चूर-चूर हो जाने पर और मुसीबतों से घिर जाने पर इन्सान बीते दिनों की बातें सोचने लगता है। उन्हें अपने मां-बाप की याद आयी, जो दोनों के दोनों तभी गुज़र गये थे जब वज़ीर अभी शाही अस्तबल के नायब थे। निगहबान उनके मज़ार के चारों ओर उन्होंने संगमरमर का बाड़ा खिंचवा दिया था। और हाँ, उन्हें बोस्निया और ज़ेपा गाँव की भी याद आयी जहाँ से वह नौ बरस की कच्ची उम्र में ही बुला लिये गये थे।

कितना अच्छा था अपनी मुसीबत के बीच अपने दूर वतन और कशमकश में

पड़े गाँव ज़ेपा को याद करना, जिसके घर-घर में कुस्तुन्तुनिया में कमायी हुई उनकी शोहरत और कामयाबी की चर्चा होती थी और जहाँ किसी को इस बात का गुमान तक न था कि इसका कोई दूसरा पहलू भी है या कि उन्हें यह कामयाबी किस क़ीमत पर मिली थी।

उन्हीं गर्मियों में उन्हें ऐसे कुछ लोगों से बातचीत करने का मौक़ा मिला जो बोस्निया से आये थे। उन्होंने उनसे बहुत-सी पूछताछ की, और वे लोग एक-एक बात का जवाब देते रहे। उन्होंने बताया कि किस तरह बग़ावत और लड़ाइयों के बाद गड़बड़ी, भुखमरी और बीमारियों का दौर आया था। यह सुनते ही उन्होंने ज़ेपा में रहने वाले अपने बिरादरी के लोगों के लिए अच्छी-खासी मदद पहुँचाने का हुक्म दे दिया साथ ही उन्होंने कहा कि इस बात की भी जाँच-पड़ताल होनी चाहिए कि वहाँ किस तरह की सरकारी इमारतों की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है। उन्हें मालूम हुआ कि चार सेतकिच मकान अब भी खड़े हैं, पर गाँव में इनके सबसे ज़्यादा मालदार होने के बावजूद, गाँव और ज़िला दोनों का बुरा हाल है। मस्जिद टूट-फूट कर गिर गयी है, और सबसे बुरी बात तो यह कि नदी पर कोई पुल नहीं है।

वहीं पहाड़ी से सटा हुआ बसा ज़ेपा गाँव, ठीक जहाँ ज़ेपा नदी द्रीना में मिलती है, विज़ेग्राद जाने वाली एक मात्र सड़क संगम से कोई पचास क़दम ऊपर गाँव से गुजरती है। लकड़ी का कितना ही मजबूत पुल क्यों न बना दो, बाढ़ हर साल उसे बहा ही ले जाती है। या तो ज़ेपा सभी पहाड़ी नालों की तरह एकाएक तेजी से चढ़ती और तख़्तों को ढीला करके बहा ले जाती, या द्रीना में बाढ़ आ जाती जिससे ज़ेपा का पानी रुद्ध होकर चढ़ता और समूचे पुल को नींव पर से ऐसे उठा ले जाता मानो वह कभी रहा ही न हो। या फिर जाड़ों में तख़्तों पर बर्फ़ ज़म जाती और पौहे और आदमी आफ़त में पड़ जाते। संक्षेप में यह कि गाँव के लोगों की सबसे बड़ी सेवा कोई यही कर सकता कि उनके लिए एक टिकाऊ पुल बनवा दे।

वज़ीर ने ज़ेपा की मस्जिद के लिए छह कालीन भेंट किये और उसके सामने एक तीन टोंटियों वाला फ़व्वारा बनवाने के लिए काफ़ी रक़म दान दी। पर साथ ही उन्होंने एक पुल बनवाने का निश्चय किया।

उन दिनों कुस्तुन्तुनिया में इटली का एक कारीगर रहता था जिसने उस शहर

के आसपास के इलाक़े में कई पुल बनाये थे और बड़ा प्रसिद्ध हो गया था। वज़ीर के ख़ज़ानची ने उसे बुलवाया और दो प्यादों के साथ बोस्निया भिजवा दिया। प्यादे उसके साथ विज़ेग्राद पहुँचे, और पके बालों और झुकी कमर वाले उस कारीगर की जिसके चेहरे पर अब भी जवानी की लाली थी, कार्रवाई की निगरानी करते रहे। कारीगर ने पुल के विशाल पत्थरों का मुआयना किया और उन्हें ठोक कर देखा। चूने के टुकड़े अपनी उँगलियों से मसले, उन्हें जीभ पर रख कर जाँचा, और तख़्तों की नाप-जोख की। उसके बाद वह कुछ दिनों के लिए बंजा चला गया जहाँ चूना पत्थर की खदान थी; विज़ेग्राद पुल के लिए पत्थर यहीं से लाया गया था। फिर उसने वहाँ मज़दूर लगवा कर उनसे खदान साफ़ करवाया, क्योंकि अब उसमें मिट्टी भर गयी थी और चारों तरफ़ झाड़-झंखाड़ उग आये थे। खदान की सफ़ाई करते-करते मज़दूर आख़िर पत्थर की एक गहरी और लम्बी-चौड़ी पर्त तक पहुँचे जो विज़ेग्राद पुल में लगे पत्थर से ज़्यादा सफ़ेद और पुख़्ता था। अब वह खदान से चलकर द्रीना के किनारे-किनारे ज़ेपा तक गया जहाँ पत्थर की ढुलाई के लिए उसने घाट चुना। इतना काम हो जाने पर वज़ीर के कारिन्दों में से एक तख़मीनों और नक़्शों के साथ कुस्तुन्तुनिया लौट गया।

कारीगर उसके लौट आने की बाट देखता वहीं पड़ा रहा पर उसने न तो विज़ेग्राद में रहना मंज़ूर किया न ज़ेपा के किनारे के ईसाई घरों में। वरन् उसने वज़ीर के आदमी और विज़ेग्राद के मुंशी की मदद से अपने लिए उस पहाड़ी पर एक काठघर बना लिया जो द्रीना और ज़ेपा के संगम पर छायी हुई थी। उसमें रहता हुआ वह अपना खाना आप पकाता; किसानों से अंडे, मलाई, पनीर, प्याज़ और मेवा ख़रीदता। कहा जाता था कि मांस वह कभी नहीं ख़रीदता था। सुबह से शाम तक बैठा-बैठा वह पत्थर काटता रहता या नक़्शे बनाता या तरह-तरह के पत्थरों की जाँच करता या ज़ेपा नदी की धार और गति की पड़ताल करता रहता। आख़िरकार कुस्तुन्तुनिया से वज़ीर का परवाना और तख़मीने की एक तिहाई रक़म लेकर कारिन्दा वापस आया और काम शुरू हुआ। पर जो अजीबो-ग़रीब कार्रवाई होने लगी लोग उसका सिर-पैर कुछ भी नहीं समझ पा रहे थे, क्योंकि जो चीज़ यहाँ खड़ी हो रही थी वह पुल जैसी बिल्कुल नहीं दीखती थी। पहले तो नदी की तह में चीड़ के भारी-भारी लट्ठे तिरछे गाड़ दिये गये; फिर इनके बीच खम्भों की दो क़तारें खड़ी की गयीं और उन्हें ततराँ से कस कर मिट्टी

से लीप दिया गया। यों एक तरह का बाँध बन गया। इससे नदी का रुख़ बदल गया और नदी का आधा पाट सूख गया। यह काम अभी पूरा हुआ ही था कि ऊपर पहाड़ों पर बादल फट पड़े, ज़ेपा गंदली हो गयी और तेजी से चढ़ने लगी। उस रात बने-बनाये बाँध के बीच में दरार पड़ गयी, और पानी हालाँकि अगले दिन सुबह तक फिर उतर गया, पर तब तक पुश्ता टूट चुका था, खम्भे उखड़ गये थे और लट्ठे अपनी जगह से हट गये थे। आनन-फानन मज़दूरों और गाँव वालों में चर्चा होने लगी कि नदी अपनी छाती पर पुल कभी नहीं बँधने देगी। पर तीन दिन बाद कारीगर ने नये लट्ठे और भी गहरे जुड़वाये और बाक़ी के बड़े-बड़े शहतीर फिर से जगह पर जमा कर हमवार करा दिये। नदी की पथरीली तह की गहराइयाँ एक बार फिर मोगरों और काम में जुटे मजदूरों की लय-बद्ध थापों और पुकारों से गूँजने लग गयीं।

जब सारी तैयारी हो गयी और बंजा से पत्थर भी ढुल कर आ गया तब कहीं हर्जेगोविनी और दालमाती राज-मिस्त्री आये। उन्होंने अपने लिए झोंपड़ियाँ डाल लीं और उनके बाहर बैठ कर पत्थर तराशने में लग गये। पत्थर के चूरे में सने वे ऐसे दीखने लगे मानो आटा पिसाई में लगे हों। मैमार लगातार उनके बीच चक्कर काटता और झुक-झुक कर उनकी कारीगरी को पीतल के गोनिये और सीसे के हरी डोर वाले साहुल से नापता रहता। नदी के दोनों पथरीले कगारों की कटाई पूरी होते न होते पैसा चुक गया और मज़दूर-मिस्त्री बेचैन होकर बड़बड़ाने लगे कि पुल तो बन चुका। कुस्तुन्तुनिया से आने वाले मुसाफ़िर वज़ीर के बदलने की अफ़वाहें लाये। वज़ीर के हाल-चाल का तो किसी को पता न था, पर उन तक पहुँचना दिन-दिन मुश्किल होता जा रहा था और वह उन कामों को भी भूल रहे थे जो ख़ास कुस्तुन्तुनिया में ही हो रहे थे। फिर भी कुछ ही दिनों बाद वज़ीर का हरकारा बाक़ी रक़म ले कर आ पहुँचा, और काम फिर से चालू हुआ।

सन्त दिमित्रिये के पर्व के पंद्रह दिन पहले बाँध के ज़रा ऊपर से तख़्तों पर ज़ेपा पार करने वाले लोगों ने पहली बार देखा कि नदी के गहरे धूसर सलेटी किनारों से चिकने पत्थर की एक दीवार उठ रही है जिस पर मकड़ी के जाले की तरह पाड़ों की जाली लगी है। उस दिन से वह रोज बढ़ती गयी। पर इसके फ़ौरन बाद ही पहला पाला पड़ा और काम फिर रुक गया। राज-मज़दूर जाड़ा बिताने

अपने-अपने घर चले गये, और मैमार अपनी झोंपड़ी में दुबक कर बैठ गया। वह शायद ही कभी बाहर निकलता, हरदम नक़्शों और हिसाब-किताब के खातों पर जुटा रहता। बाहर उसका एकमात्र काम था बीच-बीच में अब तक के काम की जाँच करना। वसन्त ऋतु के ज़रा पहले जब बर्फ़ चटखने लगी तो वह परेशान होकर बाँध का और पाड़ों का मुआयना करता चक्कर लगाने लगा। कभी-कभी वह हाथ में टार्च लिये रात में भी गश्त लगाता।

सन्त जार्ज के त्योहार के कुछ पहले मज़दूर लौट आये और फिर से काम का लग्गा लगा। गर्मियों के ठीक बीचों-बीच काम पूरा हो गया। बड़ी धूमधाम से पाड़ें हटायी गयीं और लट्ठों और तख़्तों के जाल में से पुल प्रकट हुआ—कगार से कगार तक एक सफ़ेद इकहरी मेहराब।

उस मनहूस सुनसान में और चाहे जिसकी आशा की जा सकती हो, पर ऐसी अद्भुत रचना की नहीं की जा सकती थी। पुल क्या था मानो नदी के दोनों किनारों से फेनिल जल के फ़ुहारे छूट कर आकाश में धनुष-सा बनाते हुए मिले हों और फिर अधर में टँके रह गये हों। दूर, क्षितिज के नीचे परास्त ज़ेपा पछाड़ें खा रही थी। बड़ी सावधानी से रूपायित उस पतली मेहराब को देखने के आदी हो जाने में लोगों को वक़्त लगा। ऐसा लगता था मानो वह उड़ती हुई इन मरुवा और भाँग की बूटियों से लिपटी तीखी गहरी चट्टानों पर पल भर के लिए टिक गयी हो और किसी वक़्त भी फिर उड़कर ओझल हो जा सकती हो।

पुल को देखने के लिए आस-पास के गाँव से लोग उमड़ने लगे। विज़ेग्राद और रोगातिचा के क़स्बों से भी लोग आये। वे पुल को सराहते और शिकायत-भरे स्वर में कहते—"हमारे क़स्बे को छोड़ कर पुल बनाने के लिए यही ऊबड़-खाबड़ और सुनसान जगह रह गयी थी।"

जवाब में ज़ेपा के लोग पलट कर कहते—"पहले कोई वज़ीर तो पैदा करो।" और पत्थर की दीवार को थपथपाने लगते। दीवार इतनी सीधी थी और उसकी तराश इतनी साफ़-चिकनी थी, मानो वह पत्थर नहीं, पनीर काट कर बनायी गयी हो।

मुसाफ़िरों का पहला दल अभी पुल पार करके अचरज में आँखें फाड़े खड़ा ही था कि मैमार ने अपने आदमियों को हिसाब चुकाया, अपने औज़ार और काग़ज़ात बड़े-बड़े सफ़री सन्दूकों में भर कर लादे और वज़ीर के नौकरों के साथ

कुस्तुन्तुनिया को रवाना हो गया।

अब गाँव-गाँव में जगह-जगह मैमार की चर्चा फैल गयी। सलीम जिप्सी, जो अपने घोड़े पर विज़ेग्राद से मैमार का असबाब लाद कर लाया था और जिस अकेले को उसकी झोंपड़ी के भीतर जाने का मौक़ा मिला था, अब दूकानों पर बैठा सौवीं बार पुल के बारे में अपनी कहानी सुना रहा था—

"सचमुच, वह आदमी औरों जैसा न था। जाड़ों में जब काम खड़ा रहता तब मैं दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह दिनों तक उसके पास न जा पाता। फिर जब कभी मैं उसके यहाँ जाता तो देखता कि सारी चीज़ें ठीक वैसी की वैसी बिखरी पड़ी हैं। अपनी ठिठुरती झोंपड़ी में वह रीछ की खाल का टोपा पहने, बग़लों तक कम्बल लपेटे बैठा मिलता : सिर्फ़ उसके नीले पड़े हुए हाथ बाहर दीखते। वह उसी तरह अपने उन पत्थरों को छीलता दीखता; छीलना और लिखना, फिर छीलना और लिखना—बस, और कुछ नहीं। मैं जब कुछ सामान वहाँ उतारने जाता, तो वह अपनी भूरी आँखों से मुझे ताकता और उसकी भौंहें तन जातीं मानो मुझे खा जाएगा। मुँह से एक लफ़्ज तक न निकालता। मैंने ऐसा आदमी नहीं देखा। और जानते हो, भाई जान, यों जान खपा कर एक साल और छह महीने में सारा काम पूरा करते ही वह इस्ताम्बूल को रवाना हो गया। हमने उसे नाव में बिठा कर पार पहुँचाया और वह लपक कर अपने घोड़े पर यह जा, वह जा। आप क्या समझते हैं उसने पीछे मुड़ कर हमारी या पुल की तरफ़ देखा भी? जी नहीं।"

दूकानदार उस मैमार की और उसके रहन-सहन की बातें सुनते अघाते न थे। पर जितना ही वे सुनते जाते, उतना ही उन्हें अचरज होता, और उतना ही वे अफ़सोस करते कि जब यह शख्स विज़ेग्राद की गलियों में चक्कर काटता फिरता था तब उसे पास से देखने-समझने से वे क्यों चूक गये।

उधर मैमार सफ़र करता जा रहा था। पर जब कुस्तुन्तुनिया सिर्फ़ दो दिन दूर रह गया तब उसे प्लेग ने धर दबाया। जब वह शहर में दाख़िल हुआ तो उसका बदन बुख़ार से जल रहा था और उसे घोड़े पर बैठे रहने में भी कठिनाई हो रही थी। वह सीधा इतालवी फ्राँसिस्कन मठ के अस्पताल में गया और वहीं दूसरे दिन तक़रीबन उसी समय एक बिरादर की गोद में उसने दम तोड़ दिया।

अगले दिन लोगों ने वज़ीर को मैमार की मौत की ख़बर की और पुल के नक़्शे और बचे-खुचे काग़ज़-पत्र उनके हवाले कर दिये। मैमार अपने पावने का

सिर्फ़ चौथाई हिस्सा ही ले पाया था। अपने पीछे वह न क़र्ज़ छोड़ गया था न पूँजी, न वसीयत न वारिस। काफ़ी सोच-विचार के बाद वज़ीर ने हुक्म दिया कि उसके पावने के तीन चौथाई में से एक हिस्सा अस्पताल को दे दिया जाये और दो हिस्सों से ग़रीबों के लिए सदावर्त खोल दिया जाये।

उतरती गर्मियों की खामोश सुबह थी। वज़ीर अपना यह हुक्म सुना चुके थे कि कुस्तुन्तुनिया में बसे हुए एक बोस्नियाई कवि की दरख्वास्त उनके सामने पेश की गयी। यह जवान और सुशिक्षित कवि सुन्दर छन्द रचने में माहिर था और वज़ीर कभी-कभार उसकी मदद कर दिया करते थे या इसे कुछ भेंट देते रहते थे। उसने अर्ज़ी में लिखा था, 'सुना है, आपने बोस्निया में एक पुल बनवाया है। उम्मीद है कि और इमारतों की तरह आप इस पर भी प्रशस्ति-लेख खुदवा देंगे ताकि लोगों को पुल बनाने वाले का नाम और पुल के बनने की तारीख़ मालूम हो सके। इस काम के लिए मैं ख़िदमत पेश करता हूँ। मुझे उम्मीद है कि मैंने बड़ी मेहनत से जो मसविदा तैयार किया है और जो मैं हुज़ूर के पास इस अर्ज़ी के साथ भेज रहा हूँ उसे हुज़ूर क़ुबूल करने की इनायत फ़रमायेंगे।' पायेदार काग़ज़ पर लाल और सुनहरे अक्षरों में ये पंक्तियाँ बड़ी खूबसूरती से लिखी हुई थीं :

उत्तम शासन और भव्य शिल्प-कौशल
सहयोग से
इस आलीशान पुल का निर्माण हुआ
ताकि लोगों को सुख मिले
और इहलोक-परलोक में
यूसुफ़ की कीर्ति का विस्तार हो।

इसी के नीचे दो असमान हिस्सों में बँटी हुई वज़ीर की अंडाकार मुहर थी। बड़े हिस्से में लिखा था : 'अल्लाताला का सच्चा खादिम, यूसुफ़ इब्राहीम,' और छोटे में सूत्र: 'खामोशी में ही हिफ़ाजत है।'

वज़ीर दरख़्वास्त सामने रखे बहुत देर तक बैठे रहे : एक हाथ इस इबारत पर था और दूसरा मैमार के नक़्शों और खातों पर। ऐसे मामलों का फ़ैसला करने में इधर उन्हें और भी ज़्यादा वक़्त लगने लगा था।

उनकी थोड़े दिन की तनज़्ज़ुली और क़ैद के बाद अब दो गर्मियाँ बीत चुकी थीं। दोबारा वज़ारत मिलने पर शुरू में उन्हें अपने भीतर कोई परिवर्तन नहीं दीखा।

वह अपनी शक्तियों के शिखर पर थे, उस आयु में जब लोग जीवन का भरपूर मोल जानते-भोगते हैं। उन्होंने अपने सारे विरोधियों को पछाड़ दिया था और अब उनकी ताक़त पहले से भी ज़्यादा हो गयी थी। कितना नीचे वह गिरे थे, यह जान कर ही वह पहचानते थे कि अब फिर उनका इक़बाल कितना है। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, भूलने की बजाय अपनी क़ैद के दिनों को वह अधिकाधिक याद करने लगे। यहाँ तक कि वह इन विचारों को दबा देने में कभी सफल भी हो जाते तो सपनों पर उनका बस नहीं चलता था, सपनों में उन्हें क़ैद की बातें अक्सर दिखाई देतीं और इसकी यातना किसी भी नामहीन डर की तरह और कठोर यथार्थ बन कर उनके जीवन में कटुता का विष घोल जाती।

छोटी-छोटी बातों पर वह बिगड़ उठते। पहले जो चीज़ें उन्हें दिखाई भी न देती थीं, वे ही अब उन्हें परेशान करने लगीं। उन्होंने अपने महल में सब जगह से मख़मल हटवा कर सादा नम्दा लगाने का हुक्म दिया जिससे कि गुदगुदाहट न हो। सीप से उन्हें बड़ी वितृष्णा हो गयी, क्योंकि सीप उन्हें ठंडी वीरानगी और सूनेपन की याद दिलाता था। अगर वह कभी सीप छू क्या, देख भी लेते तो उनका मुँह किरकिरा जाता और सारा बदन सिहर उठता। इसलिए सीप की बनी या उससे अलंकृत हर चीज़ महल से हटवा दी गयी।

वह हर बात में शक करने लग गये—वह शक छिपा और गुपचुप होने पर भी गहरा था। न जाने क्यों उनके मन में यह बात बैठ गयी थी कि इन्सान का कोई भी काम या कोई भी बात अनिष्टकर हो सकती है, और वह जो कुछ भी सुनते, देखते, कहते या सोचते सब में उन्हें यह संभावना सताने लगती। जीत कर भी वज़ीर ज़िन्दगी से खौफ़ खाने लग गये। इस प्रकार अनजाने ही वह उस हाल में पहुँच गये जो मृत्यु का पहला चरण होती है। जब लोग चीज़ों की बजाय उनकी छाया से ज़्यादा शंकित होने लगते हैं।

इस कष्ट से वह भीतर ही भीतर घुल रहे थे, पर किसी और को अपने मन की बात बताने या उससे सलाह लेने का ख़्याल उन्हें सपने में भी न आता था। यह रोग किसी को भीतर से खोखला कर के सतह पर प्रकट होता है, और लोग उसका सही निदान नहीं कर पाते, वे उसे बस मृत्यु का नाम दे देते हैं। वे क्या जानें कि कैसे-कैसे बड़े और बली व्यक्तित्व इस रोग में घुल कर भीतर ही भीतर ख़त्म हो जाते हैं।

उस दिन सवेरे भी हमेशा की तरह वज़ीर नींद न आने के कारण थके हुए थे, पर ऊपर से शान्त और प्रकृतिस्थ थे। उनकी पलकें भारी थीं, उनके गाल सुबह की ताज़ी हवा के कारण ठंडे थे। उन्हें अचानक उस मैमार का ख्याल हो आया जो परलोक सिधार चुका था, और उन ग़रीबों का जो उसकी कमाई खायेंगे। उन्हें बोस्निया का ख्याल हो आया। सुदूर, पहाड़ी और अँधियारे बोस्निया का—न जाने क्यों उनकी कल्पना में बोस्निया हमेशा अँधियारा ही आता था—वह बोस्निया जिसे इस्लाम की रोशनी अंशतः ही आलोकित कर पायी थी, जहाँ की बेरौनक़ और बेमुरव्वत जिन्दगी बड़ी ग़रीब, बाँझ और रूखी थी। न जाने और भी कितने ऐसे इलाक़े होंगे जिन पर खुदा का ज़रे-करम नहीं है, न जाने कितने ऐसे दरिया हैं, जिन पर न पुल है न घाट। न जाने कितनी जगहें हैं जहाँ मीठा पानी नहीं है, कितनी मस्जिदें हैं जिनमें न खूबसूरती है न सजावट।

इस तरह उनके मन के सामने एक ऐसी दुनिया का चित्र खिंच गया जो तरह-तरह की ज़रूरतों, अभावों और ख़तरों से भरी थी।

उनके बाग़ के कुंज की नन्हीं-नन्हीं खपरैलों पर धूप बरस रही थी। वज़ीर ने फिर एक बार कवि की पंक्तियों पर नज़र डाली, फिर धीरे-धीरे अपना हाथ उठाया और उन्हें काट दिया, धीरे-धीरे फिर अपना हाथ उठाया और कवि के शब्द दोबारा काट दिये। क्षण भर रुक कर उन्होंने मुहर के उस हिस्से पर भी एक लकीर खींच दी जिसमें उनका नाम था। बच गया सिर्फ़ उसका सूत्रः ख़ामोशी में ही हिफ़ाजत है। कुछ देर तक वह उस पर भी सिर झुकाये बैठे रहे, तब एक बार फिर उन्होंने हाथ उठाया और पक्की क़लम से वे शब्द भी काट दिये।

इस तरह ज़ेपा का पुल नाम या परिचय के बिना ही रह गया। सुदूर बोस्निया में वह धूप में चमकता और चाँदनी में झिलमिलाता रहा और हैवान-इन्सान सब उस पर चलते रहे। धीरे-धीरे करके खोदी हुई मिट्टी का ढेर ग़ायब हो गया, पाड़ों और इमारती सामान का बचा-खुचा मलबा था तो लोग उठा कर ले गये या नदी बहा ले गयी। राज-मजदूरों के काम-धाम के रहे-सहे निशान मेंह ने पोंछ डाले। जो हो, गँवई-गाँव का वह इलाक़ा उस पुल को कभी नहीं अपना पाया, न वह पुल ही गँवई-गाँव को अपना सका। दूर से उसकी तनी हुई इकलौती चौड़ी सफ़ेद मेहराब हमेशा अलग और अकेली दिखाई देती रहती और मुसाफ़िरों को उसी तरह अचरज में डाल देती जैसे चट्टानी

बियाबान में कोई बेमौक़े का बेढब ख़याल ।

सबसे पहले इस कहानी के लेखक को ही यह सूझा कि इस पुल के आरंभ का पता लगाया जाए। क्योंकि एक बार ऐसा हुआ कि पहाड़ों से थक कर लौटते हुए एक शाम वह उसकी मुंडेर के पत्थरों के सहारे बैठा। मौसम ऐसा था कि दिन तो गर्म होते थे पर रात में बड़ी सर्दी पड़ती थी। पत्थर पर अपनी पीठ टिकाए वह अब भी उनमें दिन की गर्मी महसूस कर रहा था। उसे पसीना आ रहा था लेकिन द्रीना पर बहकर आने वाली हवा अभी से शीतल लग रही थी। तराशे हुए गर्म पत्थरों का वह स्पर्श सुखकर भी था और अनोखा भी। उन क्षणों में लेखक और वह पुल दोनों एक-दूसरे को समझ गये और तभी उसने उस पुल का वृत्तान्त लिपिबद्ध कर डालने का संकल्प कर लिया ।

वज़ीर का फ़ीला

'दि वज़ीर्स एलीफ़ैंट' नामक उपन्यास का अनुवाद

अनुवादक

सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

बोस्निया के शहर और क़स्बे कहानियों से भरे पड़े हैं। प्रदेश का सच्चा और अलिखित इतिहास, गुज़रे हुए लोगों और पीढ़ियों का जीवन इन क़िस्सों में अजीब घटनाओं के भेस में और अक्सर नक़ली नामों के मुखौटे से छिपा हुआ रहता है। यही तुर्की कहावत के वे 'पूरबी झूठ' हैं जो 'सच्चाई से अधिक सच्चे' होते हैं।

इन कहानियों का एक अजीब गोपन जीवन होता है : बोस्निया की ट्राउट मछली की तरह। बोस्निया के निर्झर-नालों में एक विशेष प्रकार की ट्राउट मछली होती है जिसकी काली पीठ पर दो या तीन बड़ी-बड़ी चित्तियाँ होती हैं। यह असाधारण रूप से भुक्खड़, तेज़ और चालाक मछली होती है। कुशल मछेरे की बंसी के काँटे की ओर वह अंधी हो कर दौड़ती है; लेकिन उस पानी या उस प्रकार की मछली से जो लोग परिचित नहीं है उनकी पकड़ में वह नहीं आती—बल्कि उन्हें दीखती भी नहीं। अजनबी अनंत काल तक हाथ में बंसी थामे इन नालों में घुटने-घुटने पानी में भटकते रह सकते हैं और कुछ भी उनकी पकड़ में नहीं आयेगा। बल्कि यहाँ तक हो सकता है कि उन्हें पानी में चट्टान से चट्टान तक दौड़ने वाली एक काली बिजली की-सी रेखा के अलावा कुछ न दीखे—ऐसी रेखा के, जो मानो मछली के सिवा और कुछ भी हो सकती है।

ये कहानियाँ भी वैसी ही हैं। यह बिल्कुल संभव है कि आप बोस्निया के किसी क़स्बे में महीनों रह जायें और इनमें से कोई भी कहानी सच्चाई से या पूरी सुनायी गयी सुनने को न मिले; दूसरी ओर यह भी हो सकता है कि अकस्मात् कभी कहीं एक रात ही रहना पड़े और उसी में ऐसी अचरजभरी दो-

तीन कहानियाँ सुनने को मिल जायें जिनसे प्रदेश का और उसके लोगों का मानो सजीव चित्र आँखों के सामने आ जाये।

त्राब्निक के लोग बोस्निया भर में सबसे सयाने हैं और सबसे ज़्यादा ऐसे क़िस्से जानते हैं। लेकिन अजनबी को वे ऐसे क़िस्से कम ही सुनाते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे अमीर लोग दान में धन देना नहीं चाहते। उनका एक-एक क़िस्सा दूसरों की तीन-तीन कहानियों के बराबर होता है, या कम से कम उनकी ऐसी ही राय है।

वज़ीर साहब के फ़ीले की कहानी भी ऐसी ही एक कहानी है।

त्राब्निक में यह ख़बर पहुँची कि उनके वज़ीर मुहम्मद सज़दी पाशा का तबादला होने वाला है, तब त्राब्निकियों को चिंता हुई जो अकारण नहीं थी। सज़दी पाशा मौजी और बेफ़िक्र आदमी थे; स्वभाव से ही लापरवाह और काम-काज में ढीले होने के कारण वह इतने अच्छे वज़ीर थे कि त्राब्निक के, बल्कि बोस्निया भर के, लोगों को उनकी मौजूदगी का एहसास तक न होता था। सयाने और समझदार लोग काफ़ी देर से इसी बात को लेकर चिंतित थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि ऐसी परिस्थिति देर तक नहीं बनी रह सकती। तबादले की ख़बर से वे सचमुच परेशान हो गये, जिसके दो कारण थे : एक तो यह कि अच्छा वज़ीर विदा ले रहा था, दूसरे यह कि उसकी जगह न मालूम कैसा आदमी आ जायेगा। इसलिए वे सब नये हाकिम के बारे में जल्दी से जल्दी अधिक से अधिक जानकारियाँ पा लेने की कोशिश में जुट गये।

परदेसी लोगों को अक्सर अचंभा होता था कि त्राब्निकी लोग हर नये वज़ीर के बारे में इतनी जांच-पड़ताल क्यों करते हैं। कुछ यह समझ कर उनका मज़ाक भी उड़ाते थे कि उनके कौतूहल का कारण उनका अहंकार है या उनकी ख़ाहम-ख़ाह सरकारी मामलों में उलझ जाने की आदत। लेकिन असल में त्राब्निकी जो हर नये वज़ीर की बारीक से बारीक शारीरिक या मानसिक विशेषता के, उसकी हर आदत और हर सनक के बारे में पूछ-ताछ करते थे, उसका कारण न कौतूहल था न अहंकार। बल्कि लंबा अनुभव और भारी आवश्यकता ही उसकी जड़ में थी।

वज़ीरों की लंबी परंपरा में सभी तरह के लोग रहे थे, समझदार और दयावान, लापरवाह और उदासीन, विनोदशील और दुर्व्यसनी। लेकिन कुछ भारी दुष्ट भी रहे—ऐसे दुष्ट, जिनके बारे में बाद में जो क़िस्से चलते थे उनमें

सबसे वड़ी बुराइयों का महत्त्वपूर्ण ब्यौरा छिपा लिया जाता था, कुछ वैसे ही डर के भाव से जिससे ग्रंधविश्वासी लोग महामारी या बुरी चीज़ों का नाम नहीं लेते। दुष्ट स्वभाव का वज़ीर यों तो सारे बोस्निया के लिए भार होता था, लेकिन राजधानी होने के कारण त्राब्निक पर उसका बोझ विशेष हो जाता था। क्योंकि बोस्निया में दूसरी जगहों में तो उसका शासन दूर परदेसी का शासन होता था लेकिन यहाँ त्राब्निक में उसका शासन ख़ास ग्रपना शासन होता था; उसके ग्रपने हाथ का, उसके ग्रनजाने स्वभाव का, उसके ग्रमले का, उसके नौकर-चाकरों का।

त्राब्निकी लोग ग्रपने होने वाले वज़ीर के बारे में छोटी से छोटी बात जानने के लिए भी हर किसी से सवाल करते थे, पैसा ख़र्च करते थे, लोगों को शराब पिलाते थे। कभी-कभी वह ऐसे लोगों को ग्रच्छी-ख़ासी रक़म दे देते थे जिनसे बहुत-सी जानकारी मिलने की संभावना की जाती थी, पर जो ग्रंत में झूठे ग्रौर मक्कार सिद्ध होते थे। फिर भी त्राब्निकियों को यह नहीं लगता था कि उनका पैसा बेकार गया, क्योंकि कभी-कभी लोगों के बारे में प्रचलित झूठ से भी उतना पता चल जाता है जितना सच से। होशियार ग्रौर तजुर्बे होने के कारण त्राब्निकी लोग झूठ के भूसे में से भी सच्चाई की ऐसी कनियाँ निकाल लेते थे जिनका पता ख़ुद झूठ का प्रचार करने वालों को नहीं रहता था। ग्रौर कुछ नहीं तो झूठ से इतना फ़ायदा तो होता था कि उस बिंदु से ग्रारंभ करके नयी ग्रटकलें लगायी जा सकती थीं; ग्रौर एक बार सच का पता लग जाने पर झूठ को एक तरफ़ कर देने में क्या देर लगती थी?

पुराने त्राब्निकियों में कहावत है कि बोस्निया में तीन शहर हैं जिनमें सयाने बसते हैं। यह ग्रकारण भी नहीं है। त्राब्निकी इस कहावत के साथ फ़ौरन इतना ग्रौर जोड़ देते हैं कि तीनों शहरों में सबसे सयाना त्राब्निक है, लेकिन यह बताना उन्हें कभी याद नहीं रहता कि बाक़ी दो शहर कौन-से हैं।

इस बार भी त्राब्निकियों ने नये वज़ीर के बारे में बहुत-सी जानकारी हासिल कर ली।

एक तो उन्होंने यही जाना कि उसका नाम था सैयद ग्रली जलालुद्दीन पाशा।

उसका जन्म ग्रद्रियानोपल में हुग्रा ग्रौर वह पढ़ा-लिखा था; पढ़ाई पूरी करके वह ग्रद्रियानोपल में इमाम बनाया जाने वाला था कि एकाएक शहर छोड़ कर

इस्तांबूल चला गया और सैनिक प्रशासन में भर्ती हो गया। इस्तांबूल में ही चोरों और बेईमान व्यापारियों को होशियारी से पकड़ने और कड़ी से कड़ी सज़ाएं देने में वह बहुत प्रसिद्ध हो गया। आगे क़िस्सा यों सुनाया जाता था कि एक बार उसने एक यहूदी को सैनिक जहाज़ी अड्डे को मिलावटी और ख़राब अलकतरा बेचते हुए पकड़ा। जाँच-पड़ताल करके और सेना के दो विशेषज्ञ पूर्ति-अधिकारियों की राय लेकर उसने हुक्म दिया कि यहूदी को उसी अलकतरे में डुबा दिया जाये। लेकिन वास्तव में घटना यों नहीं हुई थी। यह सच था कि यहूदी का धोखा पकड़ा गया था और उसे एक जाँच अदालत के सामने पेश किया गया था जो मौक़े पर अलकतरे की परीक्षा करने वाली थी। अलकतरे से भरे हुए लकड़ी के नाँद के आसपास दौड़-धूप करता हुआ व्यापारी अपनी निर्दोषता की दुहाई दे रहा था और हाकिम जलालुद्दीन एफ़ेंदी निश्चल बैठा हुआ उसे एकटक घूर रहा था। जलालुद्दीन की नज़र से बचना या स्वयं उधर से नज़र हटाना असंभव पा कर घबड़ाये हुए व्यापारी की बात और चाल दोनों लड़खड़ा रही थीं; इसीमें वह एकाएक फिसल कर नाँद में गिरा और झट डूब गया—जिससे भी यह सिद्ध हो गया कि यह अलकतरा मिलावटी और पतला था।

वास्तव में घटना इसी प्रकार हुई थी; लेकिन इसके बारे में जो मनगढ़ंत और भयानक क़िस्से प्रचलित थे उन पर जलालुद्दीन एफ़ेंदी को कोई आपत्ति नहीं थी। उसे इससे भी शिकायत नहीं थी कि उसकी क्रूरता के बारे में तरह-तरह के क़िस्से प्रचलित हो जायें। उसने बड़ी होशियारी से यह हिसाब लगाया था कि इन क़िस्सों से उसे एक 'कठोर शासक' की ख्याति मिल जायेगी और इस प्रकार बड़े वज़ीर का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट होगा। और उसका अनुमान ग़लत भी नहीं निकला।

सभी समझदार लोग सेना में उसका काम देखकर जल्दी ही पहचान गये कि जलालुद्दीन एफ़ेंदी को इनसाफ़ की ज़रूरत से ज़्यादा फ़िकर नहीं थी न ही शाही ख़ज़ाने की बहुत चिंता थी, कि वह जो कुछ करता था, उसके मूल में शासन की, दंड और यंत्रणा देने की और जान लेने की एक दुर्निवार सहज प्रवृत्ति थी, कि क़ानून और राज्य का हित इसके लिए एक बहाना-भर था। निस्संदेह इस्तांबूल में बड़े वज़ीर को जलालुद्दीन के चरित्र की इस विशेषता का पता रहा होगा; लेकिन ढहती हुई रक्तहीन शासन-व्यवस्था और जर्जर होते हुए दुर्बल राज्य-संगठनों

को ठीक ऐसे ही लोगों की ज़रूरत होती है।

यहीं से जलालुद्दीन का सितारा चमकना शुरू हुग्रा। यहाँ से ग्रागे घटनाग्रों की प्रगति ग्रपने सहज क्रम से होती गयी। जो शक्तियाँ एक दुर्बल ग्रौर पतनशील समाज-संगठन को नीचे खींच रही थीं, वही जलालुद्दीन को सफलता की सीढ़ी पर दिन-दिन ऊपर चढ़ाती रहीं। शीघ्र ही वह बितोल का वज़ीर नियुक्त हुग्रा। बितोल में कुछ बड़े तुर्की घरानों ने सत्ता हथिया रखी थी ग्रौर प्रत्येक ग्रपने-ग्रपने इलाक़े में बिलकुल मनमाना शासन कर रहा था। ये घराने ग्रापस में लड़ते रहते थे, ग्रौर ग्रपने ऊपर किसी को नहीं समझते थे। बितोल में जलालुद्दीन का काम ज़रूर बड़े हाकिम की नज़रों में संतोषजनक रहा क्योंकि एक बरस बाद ही उसे बोस्निया का वज़ीर नियुक्त किया गया जहाँ के हारे ग्रौर कुचले हुए सामंतों में एक ग्रर्से से न तो शासन की शक्ति रही थी ग्रौर न ग्रादेश मनवाने की योग्यता। इस ग्रव्यवस्थित लेकिन ग्रभिमानी ग्रौर विद्रोही वर्ग को जीतने ग्रौर क़ाबू में लाने का काम ज़रूरी था ग्रौर ठीक इसी काम के लिए जलालुद्दीन पाशा की नियुक्ति हुई थी।

त्राब्निक के सामंतों को इस्तांबूल से एक हितू सलाहकार ने यह संदेशा भेजा था कि "तुम पर एक तेज़ ग्रौर बेरहम हाथ से एक धारदार तलवार गिरने वाली है।" सलाहकार ने इसका भी ब्यौरा दिया था कि बितोल के सामंतों से जलालुद्दीन पाशा ने कैसा बर्ताव किया।

"बितोल में पहुंचते ही जलालुद्दीन ने सारे मुखिया इकट्ठे किये ग्रौर हुकुम दिया कि प्रत्येक बाँस की कम से कम तीन हाथ लंबी एक बल्लम काट कर उस पर ग्रपना नाम लिख कर उसे जलालुद्दीन पाशा के खेमे पर लाकर पेश करे। इस ग्रपमानजनक ग्रादेश को सामंतों ने ऐसे मान लिया मानो उन पर जादू हो गया हो। केवल एक ने जंगल में जा छिपना बेहतर समझा। लेकिन वज़ीर के सिपाहियों ने उसे वहीं जा घेरा ग्रौर कोई उसकी मदद को पहुँच सके इससे पहले ही उसको मार कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। पाशा ने सब नाम लिखी हुई बल्लमें कतारों में ग्रपने ग्राँगन में गड़वा दीं। फिर उसने सब सामंतों को इसी ग्राँगन में जमा किया ग्रौर बल्लमों की बाड़ दिखा कर उनसे कहा कि हर कोई 'ग्रपनी-ग्रपनी जगह' पहचान ले। फ़र्मान हुग्रा कि इलाक़े में किसी ने चूँ भी की तो सब को इन्हीं क्रम से लगी बल्लमों पर सूली चढ़ा दिया जायेगा।"

त्राब्निकियों ने इस कहानी पर विश्वास किया भी और नहीं भी किया। पिछले तीस बरस में उन्होंने बहुत-से अजीबोग़रीब और काले क़िस्से सुने थे और उनसे भी ज़्यादा अजीबोग़रीब काले कारनामे देखे थे। इसलिए उनके लिए कड़े से कड़े शब्दों का मानो अर्थ खो गया था और उन्हें किसी बात पर विश्वास नहीं होता था। विश्वास करने के लिए आँखों देखना ज़रूरी हो गया था।

नया वज़ीर जब आख़िर त्राब्निक पहुँचा तब लोगों के मन इन्हीं सब सोचों से भरे हुए थे। यों नये वज़ीर की आमद के ढंग में तो ऐसा कुछ नहीं था जिससे उसके बारे में प्रचलित कहानियों को बल मिले। दूसरे ख़तरनाक वज़ीर बड़े शोर-शराबे और दिखावे के साथ शहर में आये थे, जिससे कि उनके आगमन से ही लोग डर के मारे अधमरे हो जायें। लेकिन जलालुद्दीन पाशा फ़रवरी की एक रात में अनदेखे ही आ पहुँचा और लोगों को सवेरे ही त्राब्निक में उसकी मौजूदगी का पता लगा। किसी ने उसे देखा नहीं, लेकिन सबको ख़बर हो गयी कि वह शहर में आ गया है।

लेकिन जब वज़ीर ने शहर के मुखियों को बुलाया और उन्होंने जब उसे देखा-सुना तब उन्हें और भी अचंभा हुआ। जैसा सुन रखा था उसके प्रतिकूल वज़ीर अब भी जवान था, उम्र पैंतीस और चालीस के बीच, बाल ललौहें भूरे, रंग गोरा, लंबे-छरहरे बदन पर छोटा सिर। उसका मुंड़ा हुआ चेहरा अंडाकार और कुछ बच्चों जैसा था, हल्की ललाही भूरी मूँछें और चिकने गोल गाल जिन पर रोशनी ऐसे चमकती थी मानो चीनी की गुड़िया के गाल हों। और इस गोरे चेहरे में दो गहरे रंग की बल्कि लगभग काली और कुछ असमान आँखें थीं जो अक्सर लम्बी लाल भवों के नीचे छिप-सी जाती थीं—इससे सारे चेहरे की भंगिमा ऐसी जड़ हो गयी जान पड़ती थी मानो हँसी में फूटती हुई अटक गयी हो। लेकिन भवें ऊपर उठते ही गहरी आँखों से यह साफ़ दीख जाता था कि हँसी का आभास धोखा था और चेहरे पर मुस्कुराहट का कोई लक्षण नहीं है। जब वह बोलता था तो छोटा ज़र्द ओठों वाला मुँह गुड़िया के मुँह की तरह थोड़ा-सा खुलता था और ऊपरी ओठ बिलकुल नहीं हिलता था, जिससे अनुमान होता था कि इसके पीछे ख़राब या टटे हुए दाँतों की क़तार है।

वज़ीर से पहली मुलाक़ात के बाद जब तुर्की बेग अपनी-अपनी राय बताने और मिलाने के लिए इकट्ठे हुए तो बहुतों का ख़याल यह था कि पहले से दिये

गये ब्यौरे अतिरंजित हैं, इन सामंतों की राय में इस वज़ीर के बारे में (जिसे तक़दीर ने इमाम नहीं बनाया) कठोर राय रखने की ज़रूरत नहीं थी। लेकिन जो अधिक अनुभवी और बारीकी से देखने वाले थे, जो 'जमाने को पहचानते थे,' वे सब चुप रहे, उनकी नज़रें भी स्थिर और भावशून्य रहीं। मानो वे अपने मन में भी साफ़-साफ़ किसी पक्के या अंतिम नतीजे पर पहुँचने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे, लेकिन इतना पहचान रहे थे कि उनके बीच एक असाधारण आदमी और एक बहुत ही खास तरह का दुष्ट व्यक्ति आ धमका है।

जलालुद्दीन पाशा त्राब्निक में फ़रवरी के शुरू में दाखिल हुआ। बेगों की हत्या मार्च के मध्य में हुई।

सुल्तान के फ़र्मान का हवाला देकर जलालुद्दीन ने सारे बोस्निया के तुर्की बेगों, मुखियों और शहरी हाकिमों को एक जरूरी सभा के लिए त्राब्निक बुला भेजा। चालीस के नाम बुलावा गया। इनमें से तेरह नहीं आये, कुछ तो संकट के अंदेशे से सावधान होकर और कुछ खानदानी शान के कारण। कम से कम इस बार खानदानी गर्व होशियारी के बराबर साबित हुआ। जो सत्ताइस आये थे उनमें से सत्रह को उसी वक़्त वहीं जलालुद्दीन के आँगन में क़त्ल कर दिया गया; बाक़ी दस को अगले दिन सवेरे ही तौक़ और बेड़ियाँ डाल कर एक जंजीर से बाँध कर इस्तांबूल रवाना कर दिया गया।

घटना के कोई गवाह नहीं थे और यह जानने का कोई तरीक़ा नहीं रहा कि कैसे इतने सारे अनुभवी और प्रतिष्ठित आदमी एक साथ ही ऐसे जाल में फँस गये और बिना प्रतिवाद या विरोध के, भेड़ों की तरह त्राब्निक शहर के बीचों-बीच मौत के घाट उतार दिये गये। बेगों की यह हत्या इतने ठंडे दिल से सोच-विचार कर इतनी सफ़ाई से और खुद वज़ीर की आँखों के सामने की गयी थी कि उसकी कोई मिसाल नहीं थी। ऐसी बेमुरव्वती और क्रूरता इससे पहले कभी किसी वज़ीर ने नहीं दिखायी थी। लोग सोचते रह गये कि वह कोई बुरा सपना देख रहे हैं या कि कोई भयानक जादू। उस समय से जलालुद्दीन पाशा के, जो त्राब्निकियों में 'जलालिया' के नाम से प्रसिद्ध हो गया था, बारे में सब त्राब्निकियों की राय एक-सी हो गयी जो कि एक दुर्लभ घटना थी। इससे पहले हर बुरे वज़ीर को अब तक का सबसे बुरा वज़ीर कह कर बखाना जाता था—उनको भी जो इतने ज़्यादा बुरे नहीं थे। लेकिन इसके बारे में उस दिन से किसी ने कुछ कहना ही

छोड़ दिया। क्योंकि पहले के बुरे से बुरे वज़ीर और इस जलालिया के बीच एक भारी और भयानक फ़ासला था; और इस फ़ासले को पार करने में लोग सिट्टी भूल जाते थे—डर के मारे उनकी ज़बान बंद और याददाश्त बेहोश हो जाती थी। जलालिया कौन, क्या और कैसा है, तुलना करके यह बताने के लिए कोई शब्द उन्हें नहीं मिलता था।

अब क्या होता है, इसकी नीरव प्रतीक्षा में और एक ठंडे आतंकित अचंभे में अप्रैल का महीना बीत गया। क्या इस भयानक घटना के बाद और भी कुछ होने को रह गया है?

मई के शुरू के दिनों में वज़ीर ने एक हाथी खरीदा।

तुर्की में लोग जब बड़े ओहदों पर पहुँच जाते थे और धन और शक्ति जुटा लेते थे तब अक्सर उनकी अजीब जानवरों में रुचि हो जाती थी। यह रुचि शिकार के शौक़ से मिलती-जुलती थी लेकिन थी एक विकृत रुचि जो शिकार के परिश्रम से बचाती थी। इससे पहले भी वज़ीर लोग त्राब्निक में कई ऐसे जानवर ला चुके थे जो पहले नहीं देखे गये थे; बंदर, तोता, ईरानी बिलार—एक ने तो एक गुलदार का बच्चा भी मँगाया था लेकिन त्राब्निक की आबोहवा शायद इस बनैले पशु के अनुकूल नहीं थी। शुरू-शुरू में तो बाघ ने बड़ा जोश दिखाया और अपने खूँखार स्वभाव का परिचय दिया लेकिन फिर उसका बढ़ना ही बंद हो गया। ख़ैर, यों यह भी सच था कि वज़ीर के अमले के लोग और कोई शग़ल न पा कर बघेले को पानी की बजाय तेज़ राकिया (कच्ची शराब) पिलाते थे और अफ्यून मिली मिठाइयाँ खिलाते रहते थे। धीरे-धीरे बघेला रोगी हो गया और उसके दाँत झड़ गये। उसके बाल भी झड़ने लगे। बौना और मोटा हो कर वह आँगन में खुला पड़ा ऊँघता और घुरघुराता रहता; मुर्ग़े तक आकर उसे चोंचें मार जाते और कुत्तों के हठीले पिल्ले भी उसे छेड़ते रहते। जाड़ों के आते ही बिचारा त्राब्निक की गली के बिलार की तरह एक अत्यंत साधारण और बेइज़्ज़त मौत मर गया।

हाँ, तो, पहले भी मनचले क्रूर वज़ीरों ने अजीब जानवर मंगाये या पाले थे। मनचलेपन और क्रूरता के हिसाब से तो इस जलालिये को खूँखार दरिंदों का एक पूरा झुंड मँगाना चाहिए था—ऐसे जानवरों को जो सिर्फ़ क़िस्से-कहानियों या तस्वीरों में होते हैं। इसलिए त्राब्निकियों ने जब यह सुना कि वज़ीर का एक हाथी आने वाला है तब वे कुछ अचंभे में आ गये।

हाथी अफ़्रीका से आया था। अभी वह दो साल का लड़खड़ाता बच्चा ही था। यह ब्यौरा और कुछ और जानकारी हाथी से पहले ही त्राव्निक पहुँच गयी थी। बल्कि त्राव्निक को सब कुछ मालूम हो गया था; कैसे वह सफ़र कर रहा हैं, कैसे लंबा-चौड़ा अमला उसकी सेवा-टहल करता है, कैसे उसे खिलाया-पिलाया जा रहा है और कैसे रास्ते में अधिकारी उसकी अगवानी करते हैं। सभी त्राव्निकी तुर्की भाषा का सहारा लेकर उसे फ़ीला कहते थे।

फ़ीला अभी बच्चा ही था, क़द में अच्छे बोस्नियाई बैल से बड़ा न होगा। लेकिन फिर भी वह अपनी धीमी चाल से रास्ता तै करता आ रहा था। यों बच्चे हाथी के मनचलेपन से उसकी देखभाल करने वालों को मुसीबत कुछ कम नहीं थी। कभी-कभी फ़ीला खाना-पीना छोड़ कर चुप-चाप घास में लेट जाता और आँखें मूँद कर हिचकियाँ या हुंकार लेने लगता; तब उसकी टहल करने वाले एक-दम घबड़ा जाते कि कहीं वज़ीर के हाथी को कुछ हो न जाये। फिर वह मानो चालाकी से एक आँख खोल कर चारों ओर देखता और एकाएक उछल कर अपनी छोटी दुम ज़ोरों से हिलाता हुआ एक ओर को दौड़ पड़ता—इतनी तेज़ी से कि उसके पहरेदार बड़ी मुश्किल से उसके साथ रह पाते।

और फिर कभी-कभी वह एकाएक कहीं रुककर अड़ जाता। तब पहरेदार उसे ठेलते, खींचते, पुचकारते; जानी-अनजानी अनेक भाषाओं में निहोरे करते, बच्चों की तरह तुतलाते और दबी ज़बान से गालियाँ भी दे लेते; कोई-कोई चोरी-छिपे दुम के नीचे की नरम जगह में चुटकी भी काट लेते, लेकिन सब बेकार। अंत में हार कर उन्होंने आसपास के किसानों के कुछ बैली बेगार में पकड़ लिये और तख्तेरवाँ नाम की खास तरह की गाड़ी में जोत कर हाथी को लाद कर ले चले।

हाथी की तबीयत कोई पहचान नहीं पा रहा था और पहरेदारों में जो बोस्निया के निवासी थे वे सब अपना मुँह कस कर बंद किये रहते थे कि कहीं उनकी ज़बान से दुनिया के सब हाथियों और वज़ीरों के बारे में कोई बेजा बात न निकल जाये। मन ही मन वे लगातार उस घड़ी को कोस रहे थे जिसमें उन्हें ऐसे अजीब जानवर की रखवाली का काम मिला जो इससे पहले बोस्निया में नहीं देखा गया था।

हाथी की देखभाल करने वाली टोली में ऊपर से नीचे तक सब चिंतित थे

ग्रौर इसलिए चिड़चिड़े भी हो रहे थे। ग्रसफल होने पर वज़ीर जो करेगा उसकी कल्पना से ही वे डर से काँप जाते थे; उन्हें कुछ तसल्ली होती थी तो इसी बात से कि जहाँ-जहाँ वे ख़ुद जाते थे वहाँ उनके कारण भी तहलका मच जाता था, ग्रौर इसके ग्रलावा वज़ीर के नाम पर लूट ग्रौर दस्तूर में भी उन्हें कुछ न कुछ हासिल हो ही जाता था।

जिस भी गाँव या क़स्बे में से यह क़ाफ़िला गुज़रता था वहाँ एक-सा नज़ारा पेश आता था। जुलूस के क़स्बे में घुसते ही बच्चे लपककर देखने ग्राते थे ग्रौर फिर हँसते-चिल्लाते हुए ग्रौरों को जुटा लेते थे। बूढ़े भी इस ग्रजूबे को देखने के लिए चौक में इकट्ठे हो जाते थे, लेकिन पहरेदारों के गंभीर चेहरे देख कर ग्रौर जलालुद्दीन वज़ीर का नाम सुन कर ही उनकी ग्रावाज़ें दब जाती थीं, चेहरे ग्रकड़ जाते थे ग्रौर हर कोई फुर्ती से घर का रास्ता नापता हुग्रा ग्रपने को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करने लगता था कि उसने कुछ नहीं देखा ग्रौर कुछ नहीं सुना। स्थानीय हाकिम, सैनिक ग्रफ़सर, मुख़्तार ग्रौर पुलीस के सिपाही जो ग्रपनी नौकरी के कारण लाचार थे, डर से सहमे हुए वज़ीर के पोष्य पशु को सलाम बजाते थे। ग्रमला जो कुछ चाहता था, क़स्बे वालों से वह बड़ी मुस्तैदी से ग्रौर बेदर्दी से वसूल करके उन्हें सौंप देते थे, किसी को यह पूछने की हिम्मत नहीं होती थी कि यह क्यों ग्रौर किसलिए चाहिए। कोई-कोई तो सिर्फ़ रखवालों के सामने ही नहीं बल्कि हाथी के बच्चे के सामने भी एक ख़ुशामद भरी मुस्कान लेकर ग्राते थे; ग्रदब से हाथी की ग्रोर देख कर ग्रौर उसे क्या कहना चाहिए यह सोच न पा कर वे ग्रपनी दाढ़ियाँ सहलाते हुए धीरे-धीरे, लेकिन पहरेदारों को सुनाते हुए कहते थे :

"माशा ग्रल्लाह ! माशा ग्रल्लाह ! क्या बात है !"

लेकिन दिल में कहीं बहुत गहरे में यह डर उन्हें सताता रहता था कि हाथी को उनके इलाक़े में रहते हुए कहीं कुछ हो न जाये ग्रौर सब बड़ी बेचैनी से उस घड़ी की प्रतीक्षा करते रहते थे जबकि यह सारा काफ़िला उस मनहूस जानवर के साथ पड़ोस के ज़िले तक, यानी किसी दूसरे के इलाक़े में चला जाये। ग्रौर जुलूस के ग्रागे बढ़ जाने के बाद वे इत्मीनान की एक लंबी साँस लेते—वैसी लंबी साँस जो 'सुल्तान के ग्रादमी' कमी-कभी लेते तो हैं मगर ऐसे छिप कर कि वह किसी ख़ुदा के बंदे को तो क्या ख़ुद ख़ुदा को भी सुनाई न दे।

और मामूली लोग भी, ऐसे लोग जिनके पास गँवाने को कुछ नहीं था बल्कि जो स्वयं कुछ नहीं थे, वे भी जो कुछ उन्होंने देखा था उसके बारे में खुलकर बात न करते। केवल अपने-अपने घर में, बंद दरवाज़ों की ओट में वे हाथी का मज़ाक़ उड़ाते और इस बात पर टीका-टिप्पणी करते कि कितना ख़र्चा उठाकर वज़ीर के फ़ीले को ले जाया जा रहा है— मानो वह कोई पवित्र वस्तु हो।

सिर्फ़ बच्चे ही, सारी चेतावनियों की उपेक्षा करते हुए उल्टी-सीधी बातें करते रहते थे; हाथी की सूँड़ की लंबाई, टाँगों की मोटाई या कानों की चौड़ाई के बारे में शर्तें लगाते रहते थे। खेल के मैदानों में, जहाँ नयी घास उगने ही लगी थी, बच्चे अक्सर 'फ़ीला और रखवाले' का खेल खेलते थे। एक बच्चा हाथी बन कर हाथों और पैरों के सहारे आगे-आगे सिर इधर-उधर झुलाता हुआ चलता; सूँड़ और पंखों जैसे कान कल्पना के सहारे ही जुड़ जाते। बाक़ी बच्चे उसके रखवाले बनते, कुछ टहलुए, कुछ पहरेदार, लेकिन सभी चिड़चिड़े और बदज़बान। एक लड़का स्थानीय हाकिम की भूमिका में सच्चा डर और झूठी खुशी दिखाता हुआ नक़ली हाथी के पास आकर अपनी दाढ़ी पर हाथ रखता हुआ कहता :

"माशा अल्लाह! माशा अल्लाह! क्या ख़ूब! क्या बात है—ख़ुदा की क़ुदरत!"

और वह अपनी भूमिका इतनी कुशलता से निबाहता कि और सब लड़के— यहाँ तक कि हाथी बना हुआ लड़का भी—खिलखिला कर हँस पड़ते।

जब फ़ीला और उसका अमला सरायेवो के पास पहुँचा तो उनकी अगवानी उसी ठाट से की गयी जिससे त्राब्निक की ओर जाने वाले वज़ीरों की अगवानी की जाती थी। वज़ीर शहर में प्रवेश न करके पास ही गोरित्सा नाम की जगह में दो-एक रात ठहरते थे; सरायेवो शहर वहीं उनकी ज़रूरत का सब सामान प्रस्तुत करता था—रसद-पानी, शराब, ईंधन, मोमबत्तियाँ वग़ैरह। फ़ीले और उसकी टोली ने भी गोरित्सा में एक रात बितायी। लेकिन सरायेवो के नागरिकों ने इस अदभुत जंतु में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। वहाँ के बहुत-से परिवार अभी वज़ीर की आज्ञा से की गई हत्याओं के कारण मातम में थे। सरायेवो के धनी-मानी नागरिकों ने, जो वज़ीर को और उससे संबद्ध हर चीज़ को संदेह और आशंका की नज़र से देखते थे, एक दूत भेज कर पुछवाया कि दल कितना बड़ा है ताकि उसीके अनुसार प्रबंध कर सकें। लेकिन हाथी के लिए उन्होंने कुछ नहीं भेजा

क्योंकि उन्होंने यह कहला भेजा कि 'हाथी का वज़ीर क्या खाता है यह तो हम जानते हैं लेकिन वज़ीर के हाथी को क्या खिलाया जाता है यह हम नहीं जानते। उसके स्वभाव का पता चल जाए तो जो ज़रूरी होगा भेज दिया जायेगा।'

इस प्रकार क़स्बे पर क़स्बा लाँघता हुआ हाथी आधा बोस्निया पार करके अंत में किसी दुर्घटना के बिना त्राब्निक पहुँच गया। क़स्बे के लोगों ने जिस ढंग से हाथी का स्वागत किया उससे वज़ीर के बारे में उनकी भावनाएँ स्पष्ट प्रकट होती थीं। कुछ ने पीठ फेर ली मानो वे न कुछ जानते हों न उन्होंने कुछ देखा हो; कुछ डर और कौतूहल के बीच डगमगाते रह गये, कुछ ने वज़ीर के हाथी का सम्मान करने के ऐसे तरीक़े ढूँढ़ने की कोशिश की जिनका ठीक हलके में ठीक असर पड़े। और जो ग़रीब थे, जिन्हें वज़ीरों और हाथियों की ख़ास परवाह नहीं थी, उन्होंने इस घटना को भी उसी नज़र से देखा जिससे और सब कुछ देखते थे; यानी इस नज़र से कि कैसे उन्हें ज़िन्दगी में कम से कम एक बार चाहे थोड़ी-सी देर के लिए ही वे सब चीजें मिल जायें जिनकी उन्हें या उनके आत्मीयों को बहुत अधिक ज़रूरत थी।

जो थोड़े-से उत्साही नागरिक वज़ीर के हाथी का सम्मान कर के वज़ीर को ख़ुश करना चाहते थे वे कुछ असमंजस में रहे; और अन्त में अधिकतर ने समझदारी से अपने-अपने घर ही रहने का फ़ैसला किया। क्योंकि उन्होंने सोचा, घटनाएँ कब कौन-सी करवट ले लें, इसका क्या भरोसा है; क्या जाने उत्साह दिखाने से क्या नया हंगामा खड़ा हो जाये क्योंकि सुल्तान के आदमियों की तबीयत और उनके मिज़ाज का क्या ठिकाना है। इसी लिए जिस दिन फ़ीले ने त्राब्निक में प्रवेश किया उस दिन सड़कों पर कोई ख़ास बड़ी भीड़ें नहीं दिखायी दीं।

चार्शिया यानी त्राब्निक के मुख्य लेकिन तंग बाजार में फ़ीला जितना वास्तव में था उससे कुछ बड़ा और अधिक डरावना दीखा, क्योंकि हाथी की ओर एकटक देखते हुए लोग हाथी की नहीं बल्कि वज़ीर की ही बात सोच रहे थे। बहुत-से लोगों ने तंग बाज़ार में से गुज़रते हुए जुलूस में नयी हरी डालियों की ओट में हाथी की एक झाँकी-भर देखी; लेकिन बाद में कहवाघरों में बैठ कर या घरों में सूत कातती हुई स्त्रियों के बीच वे बड़े विस्तार से वज़ीर के इस नये अजूबे की डरावनी सूरत और ग़ैर मामूली हरकतों के बारे में गप्प हाँकते रहे। यों इसमें कोई अचंभे की बात नहीं थी क्योंकि यहाँ भी, जैसा दुनिया में हर जगह

होता है, आँख ने सहज ही वही देख लिया जिसकी मन ने कल्पना की। और फिर यह भी है कि हमारे देश में लोगों को यथार्थ के बारे में अपनी गढ़ी हुई कहानियाँ ज़्यादा पसन्द आती हैं, जिस यथार्थ के बारे में कहानियाँ गढ़ी गयीं उसका महत्त्व उनके निकट कम होता है।

वज़ीर की कोनक (हवेली) में फ़ीला कैसे रखा गया है, या कि त्राब्निक में उसके पहले कुछ दिन कैसे गुज़रे इसके बारे में कोई कुछ नहीं जान सका। क्योंकि अगर किसीको इसके बारे में कुछ पूछने की हिम्मत होती भी तो जवाब देने की हिम्मत रखने वाला कोई न मिलता।

लेकिन त्राब्निक लोग जिस बात की सही-सही जानकारी नहीं पा सकते उसके बारे में मनमानी गढ़ लेना खूब जानते हैं और जो उन्हें खुल कर कहने की इजाज़त नहीं होती उसे वह लगातार और हठपूर्वक कानों-कान फ़ुसफ़ुसाते रहते हैं। लोगों की कल्पना में हाथी का आकार दिन-दिन बड़ा होता गया; उसे बहुत-से नाम भी मिलते गये जो फ़ुसफ़ुसाये जा कर भी न मधुर थे न शिष्ट—लिखे जा सकने की तो बात ही दूर। फिर भी हाथी के बारे में न केवल ज़बानी चर्चा हो रही थी बल्कि लिखा भी जा रहा था।

दोलोत्स के पादरी मातो मिकिच ने अपने दोस्त, गुचेगोस्कीं मठ के मठाधीश को हाथी के आगमन की सूचना दी लेकिन बड़े रहस्यपूर्ण शब्दों में और लातीनी भाषा में, बाइबल के कुछ उद्धरणों का सहारा लेते हुए।[1] साथ ही उसने वज़ीर की हवेली, त्राब्निक और साधारणतः बोस्निया के हालात का अपना नियमित ब्यौरा भी भेजा। पादरी मातो ने लिखा :

"जैसा कि आप जानते हैं, हमारे कुछ लोगों ने तुर्की बेग सरदारों की हत्या देख कर ऐसा मान लिया था कि इससे रियाया का कुछ भला होने वाला है—हमारे ये भोले लोग यही समझते हैं कि दूसरे की मुसीबत में ज़रूर उनकी सहूलियत होगी। आप अपने लोगों को साफ़-साफ़ बता दें कि उससे कुछ नतीजा निकलने वाला नहीं है—ताकि वे अगर यह बात अब तक नहीं जानते थे तो अब जान लें। नया समाचार इतना ही है कि 'एक जानवर ने एक और जानवर पाल लिया है' निठल्ले लोग इसी की चर्चा करते हुए बेपर की उड़ाया करते हैं। जहाँ तक सुधार और तरक्क़ी की बात है न कुछ हुआ है न कुछ होने वाला है।"

---

१. बाइबल के [illegible] में कुछ विशाल जंतुओं का वर्णन है। —अनु०

क्योंकि उन्होंने यह कहला भेजा कि 'हाथी का वज़ीर क्या खाता है यह तो हम जानते हैं लेकिन वज़ीर के हाथी को क्या खिलाया जाता है यह हम नहीं जानते। उसके स्वभाव का पता चल जाए तो जो ज़रूरी होगा भेज दिया जायेगा।'

इस प्रकार क़स्बे पर क़स्बा लाँघता हुआ हाथी आधा बोस्निया पार करके अंत में किसी दुर्घटना के बिना त्राब्निक पहुँच गया। क़स्बे के लोगों ने जिस ढंग से हाथी का स्वागत किया उससे वज़ीर के बारे में उनकी भावनाएँ स्पष्ट प्रकट होती थीं। कुछ ने पीठ फेर ली मानो वे न कुछ जानते हों न उन्होंने कुछ देखा हो; कुछ डर और कौतूहल के बीच डगमगाते रह गये, कुछ ने वज़ीर के हाथी का सम्मान करने के ऐसे तरीक़े ढूँढ़ने की कोशिश की जिनका ठीक हलके में ठीक असर पड़े। और जो ग़रीब थे, जिन्हें वज़ीरों और हाथियों की ख़ास परवाह नहीं थी, उन्होंने इस घटना को भी उसी नज़र से देखा जिससे और सब कुछ देखते थे; यानी इस नज़र से कि कैसे उन्हें ज़िन्दगी में कम से कम एक बार चाहे थोड़ी-सी देर के लिए ही वे सब चीजें मिल जायें जिनकी उन्हें या उनके आत्मीयों को बहुत अधिक ज़रूरत थी।

जो थोड़े-से उत्साही नागरिक वज़ीर के हाथी का सम्मान कर के वज़ीर को ख़ुश करना चाहते थे वे कुछ असमंजस में रहे; और अन्त में अधिकतर ने समझ-दारी से अपने-अपने घर ही रहने का फ़ैसला किया। क्योंकि उन्होंने सोचा, घटनाएँ कब कौन-सी करवट ले लें, इसका क्या भरोसा है; क्या जाने उत्साह दिखाने से क्या नया हंगामा खड़ा हो जाये क्योंकि सुल्तान के आदमियों की तबीयत और उनके मिज़ाज का क्या ठिकाना है। इसी लिए जिस दिन फ़ीले ने त्राब्निक में प्रवेश किया उस दिन सड़कों पर कोई ख़ास बड़ी भीड़ें नहीं दिखायी दीं।

चार्शिया यानी त्राब्निक के मुख्य लेकिन तंग बाजार में फ़ीला जितना वास्तव में था उससे कुछ बड़ा और अधिक डरावना दीखा, क्योंकि हाथी की ओर एकटक देखते हुए लोग हाथी की नहीं बल्कि वज़ीर की ही बात सोच रहे थे। बहुत-से लोगों ने तंग बाज़ार में से गुज़रते हुए जुलूस में नयी हरी डालियों की ओट में हाथी की एक झाँकी-भर देखी; लेकिन बाद में कहवाघरों में बैठ कर या घरों में सूत कातती हुई स्त्रियों के बीच वे बड़े विस्तार से वज़ीर के इस नये अजूबे की डरावनी सूरत और ग़ैर मामूली हरकतों के बारे में गप्प हाँकते रहे। यों इसमें कोई अचंभे की बात नहीं थी क्योंकि यहाँ भी, जैसा दुनिया में हर जगह

होता है, आँख ने सहज ही वही देख लिया जिसकी मन ने कल्पना की। और फिर यह भी है कि हमारे देश में लोगों को यथार्थ के बारे में अपनी गढ़ी हुई कहानियाँ ज़्यादा पसन्द आती हैं, जिस यथार्थ के बारे में कहानियाँ गढ़ी गयीं उसका महत्त्व उनके निकट कम होता है।

वज़ीर की कोनक (हवेली) में फ़ीला कैसे रखा गया है, या कि त्राब्निक में उसके पहले कुछ दिन कैसे गुज़रे इसके बारे में कोई कुछ नहीं जान सका। क्योंकि अगर किसीको इसके बारे में कुछ पूछने की हिम्मत होती भी तो जवाब देने की हिम्मत रखने वाला कोई न मिलता।

लेकिन त्राब्निक लोग जिस बात की सही-सही जानकारी नहीं पा सकते उसके बारे में मनमानी गढ़ लेना खूब जानते हैं और जो उन्हें खुल कर कहने की इजाज़त नहीं होती उसे वह लगातार और हठपूर्वक कानों-कान फुसफुसाते रहते हैं। लोगों की कल्पना में हाथी का आकार दिन-दिन बड़ा होता गया; उसे बहुत-से नाम भी मिलते गये जो फुसफुसाये जा कर भी न मधुर थे न शिष्ट—लिखे जा सकने की तो बात ही दूर। फिर भी हाथी के बारे में न केवल ज़बानी चर्चा हो रही थी बल्कि लिखा भी जा रहा था।

दोलोत्स के पादरी मातो मिकिच ने अपने दोस्त, गुचेगोर्स्की मठ के मठाधीश को हाथी के आगमन की सूचना दी लेकिन बड़े रहस्यपूर्ण शब्दों में और लातीनी भाषा में, बाइबल के कुछ उद्धरणों का सहारा लेते हुए।[1] साथ ही उसने वज़ीर की हवेली, त्राब्निक और साधारणतः बोस्निया के हालात का अपना नियमित ब्यौरा भी भेजा। पादरी मातो ने लिखा :

"जैसा कि आप जानते हैं, हमारे कुछ लोगों ने तुर्की बेग सरदारों की हत्या देख कर ऐसा मान लिया था कि इससे रियाया का कुछ भला होने वाला है—हमारे ये भोले लोग यही समझते हैं कि दूसरे की मुसीबत में ज़रूर उनकी सहूलियत होगी। आप अपने लोगों को साफ़-साफ़ बता दें कि उससे कुछ नतीजा निकलने वाला नहीं है—ताकि वे अगर यह बात अब तक नहीं जानते थे तो अब जान लें। नया समाचार इतना ही है कि 'एक जानवर ने एक और जानवर पाल लिया है' निठल्ले लोग इसी की चर्चा करते हुए बेपर की उड़ाया करते हैं। जहाँ तक सुधार और तरक्क़ी की बात है न कुछ हुआ है न कुछ होने वाला है।"

---

१. बाइबल के [illegible] अंश में कुछ विशाल जन्तुओं का वर्णन है।—अनु०

और चिट्ठी के अंत में पादरी मातो ने साधारण भाषा में लैटिन के पद मिलाते हुए सांकेतिक भाषा में लिखा "और इस प्रकार बोस्निया सदा की भाँति असंगठित और अव्यवस्थित भटक रहा है और क़यामत तक भटकता रहेगा।"

और सचमुच दिनों पर दिन बीतते गये लेकिन वज़ीर की ड्यौढ़ी से समाचार का एक भी शब्द नहीं मिला—किसी भी विषय पर नहीं, यहाँ तक कि फ़ीले के बारे में भी नहीं। मानो त्राब्निक में प्रचलित क़िस्सों का वह दैत्याकार जंतु ड्यौढ़ी पार करके पीछे फाटक के बंद होते ही हवेली के भीतर कहीं हवा हो गया; मानो उसका कोई निशान ही नहीं रहा—मानो वह भी अदृश्य वज़ीर के साथ एक जान होकर अदृश्य हो गया।

वज़ीर हवेली से शायद ही कभी बाहर निकलता था। त्राब्निकियों को उसकी झाँकी भी दुर्लभ थी। यह छोटी-सी बात ही अपने साथ में आतंक फैलाने वाली थी; इससे लोग अटकल लगाते रहते थे और अफ़वाहों के सहारे और भी आतंक फैलता रहता था। शुरू से ही चार्शिया (बाज़ार) में लोग इसके लिए बेचैन थे कि वज़ीर के, उसके रहन-सहन के, उसकी आदतों के, उसके व्यसनों के, उसकी पसन्द-नापसन्द के बारे में कुछ और जान सकें, यानी किसी भी ऐसे दरवाज़े तक पहुँच सकें जिससे वज़ीर तक पहुँचने का कोई रास्ता मिल जाये।

हवेली के एक मुखबिर की हथेली गरम करने के बाद भी चुप्पे वज़ीर के बारे में इतनी ही जानकारी मिल सकी कि जहाँ तक व्यसनों का सवाल था, उसकी कोई ख़ास कमज़ोरी नहीं थी। वह साधारण संयत ढंग से रहता था, कम खाता था, तम्बाकू कम पीता था और शराब और भी कम; लिबास सादा रखता था; उसे न पैसे का लालच था न यश का और न ही उसकी तबीयत अय्याशी की तरफ़ थी।

इन बातों पर भरोसा करना उतना ही मुश्किल था जितना किसी भी सच्चाई पर होता है। यह ब्यौरा सुन कर त्राब्निकी लोग अधीर होकर पूछते; "हवेली में रहने वाला आदमी अगर ऐसा ही मासूम मेमना है तो बोस्निया भर में इतने लोगों का क़त्ल किसने कर दिया?"

लेकिन ख़बर थी सच ही। वज़ीर को अगर कोई व्यसन था—ऐसे शौक़ को अगर व्यसन कहा जा सके—तो वह बढ़िया काग़ज़ और क़लम-दवात इकट्ठा करने का शौक़ था।

उसके संग्रह में सारी दुनिया से लाये हुए काग़ज़ थे—चीन से, वेनिस से, फ्रांस से, हालैंड से, जर्मनी से। छोटी-बड़ी अनेक दवातें थीं—धातु की, हौलदिली की, विशेष रूप से पकाये हुए चमड़े की। वज़ीर लिखने में कुछ ख़ास पटु नहीं था इसलिए अपने हाथ से तो कम ही लिखता था लेकिन अच्छी लिपि का उसे बड़ा शौक़ था और सुन्दर लिखावट के अपने संग्रह को वह चमड़े के वेठनों में या बढ़िया काठ के डिब्बों में सँवार कर रखता था।

वज़ीर का क़लमों का भी बहुत बड़ा संग्रह था और इस पर उसे विशेष गर्व था। तरह-तरह के नरसलों या पतले बाँसों से बनी हुई ये क़लमें सावधानी से गढ़ कर और लिखने के लिए तैयार करके रखी रहती थीं।

अनमना और निश्चल बैठा हुआ वज़ीर जब-तब एक-एक क़लम उठा कर उँगलियों में उसे घुमाता हुआ एक हाथ से दूसरे हाथ में लेता रहता था। तरह-तरह की, अनेक रंगों की और विभिन्न आकारों की क़लमें, कुछ हल्की पीली, कुछ प्रायः सफ़ेद, कुछ ललछौंही और कुछ बैंगनी; कुछ काली और शोधे हुए फ़ौलाद की तरह चमकदार, सभी खुदरंग; कुछ पतली और इस्पात की पत्ती-सी चिकनी, कुछ अंगूठे जैसी मोटी और गठीली। कई क़लमें मानो प्रकृति के खिलवाड़ का नमूना पेश करती थीं; एक क़लम का सिरा खोपड़ी की तरह कल्लेदार दीखता था तो एक दूसरी की गाँठों पर ठीक इंसानी आँखों जैसे अँखुए नज़र आते थे। वज़ीर के आठ सौ से अधिक क़लमों के संग्रह में समूची तुर्की सल्तनत, फ़ारस और मिस्र के हर देश का कम से कम एक नमूना था, और कोई दो क़लमें एक-सी नहीं थीं। कोई वैसी मामूली क़लम नहीं थी जैसी दर्जन के हिसाब से ख़रीदी जा सकें, और कुछ तो रंगत या आकार में बिलकुल बेमिसाल थीं—इन क़लमों को वज़ीर हिफ़ाज़त से लपेट कर चीनी लाख के ओपदार लम्बे ख़ास डिब्बों में रखता था।

सन्नाटे में डूबे हुए एक बड़े कमरे में घंटों तक काग़ज़ की सरसराहट या वज़ीर के हाथों में क़लम की सुरसुराहट या खनखनाहट के सिवाय कोई शब्द नहीं सुनाई देता था। वज़ीर उन्हें नापता, एक दूसरे से मिला कर देखता; रंग-बिरंगी रोशनाइयों से बड़े-बड़े अलंकृत अक्षर लिखता; फिर ख़ास गीले स्पंज से एक-एक कलम को बड़ी सावधानी से पोंछ कर साफ़ करता और डिब्बों में रख कर संग्रह में यथास्थान सजा देता।

त्राव्निक में अपने लंबे दिन वज़ीर सैयद अली जलालुद्दीन पाशा इसी तरह

बिता रहा था।

और जब वज़ीर अपने दिन यों अपने क़लमों में गुज़ार रहा था, बाहर सारा बोस्निया प्रदेश एक अज्ञात डर से काँपता हुआ पूछ रहा था : 'वज़ीर आख़िर क्या कर रहा है। क्या मनसूबे बाँध रहा है?' हर कोई बुरी से बुरी बात सोचने को तैयार था; हर किसी को वज़ीर के संयम और मौन में अपने और अपने परिवार के लिए भारी ख़तरा दीख रहा था। और क्योंकि हर किसी के मन में वज़ीर का चित्र अलग था, इसलिए हर किसी की कल्पना उसे अलग काम में जुटा हुआ देखती थी—लेकिन जो भी काम हो वह बड़ा और ख़ूनख़राबे से भरा जरूर होता था।

लेकिन ये क़लमें वज़ीर का एक मात्र मनोरंजन नहीं थीं। रोज वह हाथी को देखने जाता था और उसके चारों ओर चक्कर काट कर उसका मुआयना करता था; कभी उसे मज़ाकिया नामों से पुकारता हुआ मुट्ठी-दो मुट्ठी घास या एक-आध फल उसकी ओर बढ़ा देता था लेकिन अपने हाथ से कभी हाथी को छूता नहीं था।

अदृश्य वज़ीर के बारे में चार्शिया को इतनी ही जानकारी मिल सकी थी। यह चार्शिया के लिए काफ़ी नहीं थी। और काग़ज़-क़लम के शौक़ पर लोगों को न तो विश्वास होता था, न ऐसा शौक़ उनकी समझ में आता था। हाँ, हाथी से उसका लगाव समझ में आने वाली बात भी थी और कुछ अधिक परिचित भी जान पड़ती थी। ख़ास कर इसलिए कि जल्दी ही हाथी उनकी चकित आँखों के सामने प्रकट भी होने लगा।

२

जल्दी ही फ़ीले को बाहर लाया जाने लगा। लंबी यात्रा की थकान के बाद फिर ताज़ा होकर हाथी अच्छी तरह खाने-पीने लगा था और वज़ीर की ड्योढ़ी उसके लिए बहुत छोटी हो चली थी। यह तो सभी जानते थे कि हाथी को बछड़े की

तरह तबेले में नहीं रखा जा सकता; लेकिन यह हाथी कितना चंचल ग्रौर मुँहज़ोर होगा इसका किसी ने ग्रनुमान नहीं किया था ।

फ़ीले को टहलाने के लिए बाहर ले जाना कठिन नहीं था क्योंकि खुली हरियाली की ग्रोर तो वह ललकता था; लेकिन उसे सँभालना या रोकना मुश्किल काम था । दूसरी बार टहलाने लाया जाने पर वह एकाएक छिछली लाश्वा नदी के पार भाग निकला; सूँड़ ऊँची उठाकर कभी चिंघाड़ता ग्रौर कभी सूँड़ से पानी इधर-उधर फेंकता हुग्रा । ग्रौर एक ग्रवसर पर बाग़ के जंगले के साथ-साथ चलते हुए उसने जंगले को टक्कर मारी मानो देख रहा हो कि खम्भों की झलाई कितनी मजबूत है; फिर कभी उसने सूँड़ उठा कर पेड़ों की डालें तोड़ना-मरोड़ना शुरू कर दिया । टहलुग्रों ने फिर उसे खदेड़ना चाहा, लेकिन तब तक वह फिर लाश्वा के पानी में घुस गया था ग्रौर ग्रपने तथा ग्रपने रखवालों के ऊपर पानी की बौछार करने लगा था । कुछ दिन बाद रखवालों ने तय किया कि फ़ीले को साँकल से बाँध कर टहलने ले जाया जाये; हाँ, साँकल देखने में ग्रच्छी होनी चाहिए । यह निश्चय करके उन्होंने फ़ीले के गले में लाल ग्रस्तरदार चमड़े का भारी पट्टा पहनाया जिसमें चमकीली घंटियाँ जड़ दी गयीं । पट्टे के दोनों तरफ़ दो लम्बी ज़ंजीरें लगायी गयीं जिन्हें दो-दो रखवाले थामकर चले । सामने एक संकर वर्ण का विदेशी दास ग्रकड़ता हुग्रा चला, यही हाथी का महावत ग्रौर शिक्षक था ग्रौर इसी के हाथ या ग्राँखों का इशारा हाथी कुछ मानता था । महावत का नाम लोगों ने 'फ़ील-फ़ील' रख छोड़ा था ।

शुरू में फ़ीले को हवेली के ग्रासपास की पहाड़ियों में ही घुमाया जाता था, लेकिन उसकी दौड़ धीरे-धीरे बढ़ती गई ग्रौर ग्रंत में उसे क़स्बे में से घुमाया जाने लगा । जब फ़ीले को पहली बार चार्शिया बाज़ार में से ले जाया गया तब लोगों का रवैया वही रहा जो त्राब्निक में उसकी पहली ग्रामद के दिन रहा था; वे लोग कुछ सहमे हुए ग्रौर तटस्थ थे लेकिन ऊपर से उदासीन दीख रहे थे । लेकिन धीरे-धीरे हाथी का ग्राना-जाना बढ़ता गया ग्रौर जल्दी ही उसकी सैर एक ग्राम बात हो गई । धीरे-धीरे फ़ीला भी चार्शिया का ग्रादी हो गया ग्रौर ग्रपनी ग्रसल तबीयत का परिचय देने लगा ।

फ़ीला ग्रौर उसके साथ की टोली जैसे ही चार्शिया के एक सिरे पर प्रकट होती, बाज़ार में सनसनी ग्रौर ग्रातंक फैल जाता । चार्शिया के ग्रसंख्य कुत्ते

एक अजीब और अजनबी जानवर को सूंघ कर बेचैनी और बौखलाहट से भर जाते और क़साई की दुकानों के आसपास अपना अड्डा छोड़ कर इधर-उधर बिखर जाते। जो कुत्ते बूढ़े और मोटे हो गए थे वे तो चुपचाप वहाँ से खिसक जाते लेकिन जो नये, दुबले और तेज़ थे वे जंगले के पार से या दीवार की ओट से बड़े ग़ुस्से से भौंकना शुरू कर देते, मानो अपने शोर में अपना डर डुबा देना चाहते हों। बाज़ार की बिल्लियाँ भी बेचैन हो उठतीं और सड़क के आर-पार दौड़ने लगतीं या दीवारों और बेलों के सहारे मकानों के छज्जों या छतों पर भी चढ़ जातीं। चौक में जुटी हुई जो मुर्ग़ियाँ देहाती घोड़ों के लिए फैलाये गये जौ के बोरों से चोंचें भरती रहती थीं वे भी कुड़कुड़ाती और पंख फड़फड़ाती हुई ऊँचे जंगले के पार उड़ने लगतीं। बत्तखें भी 'कें-कें' करती हुई अपनी बेढंगी चाल से बढ़कर दीवार पर से नदी में कूद पड़तीं।

देहातियों के घोड़े फ़ीले से खास तौर से डरते थे। बोस्निया के छोटे भूरे बालों वाले टट्टू, जो साधारणतः बड़े दीन और सब्र वाले होते हैं और जिनकी बड़ी-बड़ी आँखें लम्बे अयाल के बीच में से मानो संतोष से झाँकती रहती हैं, फ़ीले की झाँकी पाते ही या उसकी घंटियों की टुनटुनाहट सुनते ही मानो बिलकुल घबड़ा जाते थे। वे लगाम झटकने या अपना साज़ काटने लगते, बोझ या काठी उतार कर फेंकते, और अदृश्य शत्रु पर ज़ोरों से दुलत्तियाँ चलाते हुए भाग निकलते। घबड़ाये हुए किसान उनके पीछे-पीछे उनको पुकारते और उन्हें पुचकारते हुए दौड़ पड़ते कि किसी तरह उन्हें थाम कर शांत कर सकें। (एक तरफ़ बौखलाया हुआ घोड़ा और दूसरी तरफ़ हाथ-पैर फैलाये खड़ा, उतना ही बौखलाया हुआ घोड़े का मालिक किसान, जो अपनी थोड़ी-सी बुद्धि के सहारे अपने को घोड़े से ही नहीं, उन पागलों से भी जो सिर्फ़ घमंड के कारण इस मनहूस हैवान को चार्शिया में ले आए हैं, होशियार समझते! —बिचारे किसानों पर एकाएक दया आ जाती थी।) क़स्बे के बच्चे और खासकर जिप्सियों के बच्चे गलियों से दौड़े हुए आते और घरों की नुक्कड़ों की ओट से झाँकते हुए उस अद्भुत जानवर को भय-मिश्रित कौतूहल से देखते रहते। और दिन-ब-दिन बच्चों का साहस और शरारत की उनकी सूझ बढ़ती जाती थी। वे चीखते-चिल्लाते, सीटियाँ बजाते, एक दूसरे को आगे धकेलते, हँसी की किलकारियाँ मारते हुए हाथी का रास्ता काट कर सड़क के पार दौड़ जाते थे।

ऊपर अटारियों के छज्जों और गोखों से, काठ की जाली या झिलमिल की झोट से स्त्रियाँ और किशोरियाँ भी झाँक-झाँक कर नीचे से गुज़रते हुए सजे हुए हाथी और उसके वज़ीर के बने-ठने और क़द्दावर सिपाहियों को देखती रहतीं। एक-एक झिलमिल के पीछे तीन-तीन, चार-चार इकट्ठी होकर कानों-कान बातें करतीं, हाथी के बारे में हँसी-मज़ाक़ करतीं, एक दूसरे को गुदगुदातीं और कभी-कभी खिलखिला कर हँस पड़तीं। माँएँ और सासें गर्भवती बेटियों-बहुओं को इस डर से खिड़की के पास न फटकने देतीं कि कहीं कोख के बच्चे पर उस मनहूस जानवर की छाया न पड़ जाए।

पैंठ के दिन तो और भी बुरा हाल हो जाता। हड़बड़ाए हुए घोड़ों, मवेशियों और भेड़ों के अपनी टाँगें तुड़ा लेने की नौबत आ जाती थी। आसपास के गाँवों से आई हुई किसान औरतें अपनी लम्बी सफ़ेद पोशाकें और सिर पर बँधे हुए सफ़ेद रूमाल सँभालती हुई लम्बे डग भर कर गलियों में जा छिपती थीं और उत्तेजित स्वर से चीखती हुई सलीब का चिह्न बनाती जाती थीं।

और इस सारी हलचल के बीच से फ़ीला झूमता-झामता अपनी भारी मस्त चाल से बढ़ता चला जाता था और उसके रखवाले उसके आसपास उछलते-कूदते, हँसते-चिल्लाते जुटे रहते थे। सारे का सारा नज़ारा ऐसा असाधारण और अभूतपूर्व होता था कि जान पड़ता था, कि सारा जुलूस किसी अनसुने संगीत पर ताल देता हुआ बढ़ रहा है; कि फ़ीले के जुलूस के साथ सिर्फ़ घंटियाँ, जिप्सी बच्चों की हँसी और रखवालों की चीख-पुकारें ही नहीं बल्कि अदृश्य और अपरिचित प्रकार के ढोल, झाँझ और अन्य वाद्य चल रहे हैं।

और फ़ीला मंद गति से अपने मोटे, भारी पैरों पर झूमता हुआ धीरे-धीरे बढ़ता जाता था; मानो अंगों के संचालन या शरीर की गति के लिए जितनी शक्ति चाहिए उससे कहीं अधिक शक्ति पाकर वह सारी फ़ालतू शक्तियों को खेल और मनमानी में लगाना चाह रहा हो।

चार्शिया से पूरी तरह अभ्यस्त हो जाने पर फ़ीले की ढिठाई दिन-ब-दिन बढ़ने लगी और अपनी हर हरकत में वह अधिक हठ और चालाकी दिखाने लगा। अभी तक किसी का ऐसी सनक का अनुमान या संदेह नहीं हुआ था जिसमें इतनी गहरी शैतानी और बिलकुल इन्सानों जैसा पाजीपन (ऐसा चार्शिया के घबड़ाये हुए और नाराज़ लोग कह रहे थे) भरा हुआ हो। अब चलते-चलते

हाथी कभी किसी बेचारे की अलूचों से भरी टोकरी उलटा देता, कभी बिक्री के लिए दीवार के साथ टेक कर सजाये हुए गैंती, बेलचे, बल्लम सूँड़ से लपेट कर इधर-उधर छितरा देता। लोग उसका रास्ता छोड़कर ऐसे भागते मानो क़यामत से बच कर भाग रहे हों; अपना ग़ुस्सा वह पी जाते और अपने माल का नुकसान चुपचाप सह लेते। नानखताई वाले वेसिल ने अपना बचाव करने की कोशिश की थी। जिस तख्ते पर वह केक-नानखताइयाँ सजा कर बैठा था उसकी ओर फ़ीले ने सूँड़ बढ़ाया तो वेसिल ने फुर्ती से एक भारी बेलन उठा कर उसे धमकाया। हाथी ने तो अपनी सूँड़ खींच ली लेकिन तगड़े और ग़ुस्सैल फ़ील-फ़ील ने अपनी बनमानुष जैसी लंबी बाँह बढ़ा कर वेसिल के ऐसा थप्पड़ जमाया जैसा त्राब्निक में कभी किसी ने नहीं देखा-सुना था। खताई वाले को जब तक होश आया तब तक फ़ीला और उसका अमला आगे बढ़ कर ओझल हो चुके थे। होश में आने पर वेसिल ने पाया कि लोग उसे घेर कर उसके मुँह पर छींटे दे रहे हैं। थप्पड़ की मार से उसके चेहरे पर ल्हासें उभर आयी थीं और नीली पड़ गयी थीं; और फ़ील-फ़ील की भारी अंगूठी से एक घाव भी हो गया था जिससे ख़ून बह रहा था। लोग वेसिल को समझा रहे थे कि सस्ता ही छूट गया नहीं तो न जाने क्या हो जा सकता था।

सच बात यह थी कि फ़ीले के अजीब और नासमझ जानवर होने के बावजूद चार्शिया को उससे उतनी तकलीफ़ नहीं थी जितनी उसके खिदमतगारों से। लंबी बाँहों और अमानवीय चेहरे वाला फ़ील-फ़ील, जिसका असली नाम कोई नहीं जानता था, हमेशा साथ-साथ रहता था; फिर दो सिपाही तैनात रहते थे और हर बार दो-एक दरबारी डरी हुई भीड़ों का तमाशा देखने और गड़बड़ी पर होने वाले हँसी-मज़ाक़ में हिस्सा लेने आ जाते थे। छोटे ओहदेदारों और नायब अफ़सरों की नाराज़ी से चार्शिया बहुत दिनों से परिचित था। आततायी शासकों और रोज़ बदलने वाले क़ानूनों के इस देश में बूढ़े बुज़ुर्ग त्राब्निकी अक्सर कहा करते थे, "बुरा राजा तो बुरा होता ही है, लेकिन उसके नौकर और ख़ुशामदी और भी बुरे होते हैं।"

फ़ीले को कोई रोक-टोक नहीं सकता था; इसके प्रतिकूल गड़बड़ी फैलाने में उसे हर तरह का बढ़ावा दिया जाता था।

निठल्ले लोग और जिप्सी फ़ीले के जुलूस के लिए सवेरे से ही आ जुटते थे

और इंतज़ार में रहते थे कि उसके आने पर क्या तमाशा होता है। और उन्हें कभी निराश नहीं होना पड़ता था। एक दिन फ़ीला एकाएक रुककर थोड़ी देर कान हिलाता रहा मानो कुछ सोच रहा हो, और फिर अवदागा ज़लातारेविच की दुकान की ओर बढ़ा। ज़लातारेविच व्यौपारी तो छोटा था लेकिन नागरिक के नाते इज्ज़त-दार था। दुकान के छज्जे के खम्भे के साथ पिछाड़ी टेक कर हाथी थोड़ी देर तक अपने को खुजलाता-सहलाता रहा। सारी दुकान हिल गयी और शहतीरों के जोड़ चरमरा उठे। अवदागा छोटे दरवाज़े से होकर अंदर मालख़ाने में चला गया जो पक्का पत्थर का बना हुआ था। अमला खड़ा रहा कि हाथी अपने को खुजला ले; आसपास के लोग हँसते और बोलियाँ कसते रहे। अगले दिन अवदागा गुस्से से भरा हुआ फ़ीले के आने से पहले ही अपने मालख़ाने में जा बैठा। हाथी सीधा उसकी दुकान के सामने आया, उसी खंभे की ओर बढ़ा, लेकिन अपनी पिछाड़ी खुजलाने की बजाय उसने पिछली टाँगें थोड़ी फैलायीं और अवदागा की देहरी पर पेशाब कर दिया। देर तक और बहुत-सा पेशाब करने के बाद उसने कई बार अपनी पीठ हिलायी, कान डुलाये, और फिर धीरे-धीरे अपनी अभ्यस्त गति से आगे बढ़ गया।

दस क़दम पीछे आते हुए जिप्सी टिटकारियाँ मारते हुए और भद्दे मज़ाक़ करते रहे और ख़िदमतगारों ने हाथी की पिछाड़ी थपथपा दी।

कोई-कोई दिन ऐसा भी होता था जब हाथी के चार्शिया से गुज़र जाने पर भी कोई अजीब घटना नहीं होती थी। फिर किसी-किसी दिन उसे क़स्बे के किसी दूसरे हिस्से में भी टहलाने ले जाया जाता था। लेकिन चार्शिया के लोग हाथी की मनमानी हरकतों के और सनसनी के इतने आदी हो गये थे कि कोई घटना न होने पर भी वे एक-दूसरे को क़िस्से सुनाते रहते थे।

जो निठल्ले हाथी को देखने के लिए रोज़ जुटते थे, उनकी बातचीत का सिलसिला टूटता ही नहीं था।

एक ने कहा, "फ़ीला कल तो नज़र नहीं आया।"

और दूसरे, कारिशिक नाम के बातूनी शराबी ने जवाब दिया, "हाँ, नज़र तो नहीं आया लेकिन मालूम है जिप्सी मुहल्ले में क्या हुआ?"

"नहीं तो। क्या हुआ?" दो आदमियों ने एक साथ पूछा। वे यह भूल गये कि कारिशिक आह्निक और उनके आसपास के इलाक़े में सबसे बड़ा झूठा

ग्रौर गपोड़ी प्रसिद्ध था।

"ग्ररे एक गर्भवती जिप्सी ग्रौरत ने एक नज़र फ़ीले को देखा ग्रौर वहीं सड़क पर बच्चा जन दिया—ग्रौर क्या हुग्रा! तुम मेरी बात का यकीन करो या न करो, हुग्रा सचमुच यही! उसका ग्राठवाँ महीना था, ग्रौर वह एक वर्तन घोने के लिए गली में ग्राई थी। एकाएक उसने नज़र उठायी तो देखा, फ़ीला उसकी ग्रोर बढ़ा चला ग्रा रहा है। हाँडी उसके हाथ से छूट गयी ग्रौर वह चीख़ी, 'हाय!' ग्रौर वहीं ढेर हो गई। ख़ून से लथपथ उसको ग्रौर ग्रकाल जन्मे बच्चे को घर के भीतर ले जाया गया। ग्रौरत को तो फिर होश नहीं ग्राया, बच्चे को ग्राया; वह ज़िंदा है ग्रौर बच जायेगा लेकिन गूँगा है—एकदम गूँगा। डर से गूँगा हो गया! हाँ, तो मेरे भाई, यह बात हुई।"

कारिशिक के सबके सब क़िस्से इसी तरह, 'हाँ तो, मेरे भाई!' के साथ समाप्त होते थे। यह मानो उसकी ख़ास मुहर थी जिससे उसकी गप्पें पहचानी जाती थीं।

निठल्ले लोग इधर-उधर बिखर गये ग्रौर इस क़िस्से का प्रचार करने लगे—इस बात का ज़िक्र करना उन्होंने ज़रूरी नहीं समझा कि यह क़िस्सा उन्होंने पहले-पहल जिप्सी कारिशिक से सुना। ग्रौर चार्शिया के लोग ग्रौर भी उत्तेजित होकर फ़ीले की ग्रगली सैर की या कम से कम उसके बारे में एक नयी झूठी-सच्ची कहानी की प्रतीक्षा करने लगे।

त्राव्निक के सौदागरों के मन की हालत की कल्पना ही की जा सकती है। वे बोस्निया भर के सबसे ग्रधिक शांत ग्रौर शालीन व्यापारी माने जाते थे—गंभीर ग्रौर ग्रहंमन्य, ग्रौर ग्रपनी बिरादरी की सफ़ाई, संजीदगी ग्रौर व्यवस्था-प्रेम पर गर्व करने वाले।

फ़ीले की समस्या बढ़ती ही गयी: उसका ग्रंत कहाँ होगा, कोई सोच ही नहीं सकता था। एक जानवर के मन के भीतर क्या गुज़र रही है, यह तो ग्रपने बोस्निया के जानवरों के बारे में भी नहीं बताया जा सकता; फिर दूर-दूर प्रदेश से लाये हुए जानवर के बारे में कोई क्या कहेगा? फ़ीले ने भी क्या-क्या तकलीफ़ें सही होंगी, कौन समझ सकता है? लेकिन दूसरों की समस्याग्रों के बारे में फ़लसफ़ा वघारने की ग्रादत चार्शिया को नहीं थी। वह ग्रपने विचार ग्रपनी ज़रूरतों ग्रौर स्वार्थों तक ही सीमित रखता था। जब कि साम्राज्य चरमरा कर

टूट कर चारों तरफ़ से बिखरने लगा था और बोस्निया डर और दुश्चिंता से भरा हुआ जैसे-तैसे दिन गुज़ार रहा था, बेग हताश होकर बदला लेने की योजनाएँ बना रहे थे, तब यह चार्शिया फ़ीले के अलावा कुछ नहीं सोच पा रहा था। फ़ीला ही उसे अपना सबसे बड़ा दुश्मन दीखता था।

परंपरा से और विश्वास के कारण भी ये लोग सभी जानवरों की रक्षा करते थे—यहाँ तक कि हानि पहुँचाने वाले जानवरों की भी; वे कुत्ते-बिल्लियों और कबूतरों को खिलाते थे और कीड़े-मकोड़े भी कभी नहीं मारते थे। लेकिन वज़ीर के हाथी पर यह नियम नहीं लागू होता था; उससे सबको वैसी सांघातिक घृणा थी जैसी किसी मानवी दुश्मन से हो सकती है और सभी उसकी जान के गाहक हो रहे थे।

लेकिन दिन और सप्ताह बीतते जा रहे थे और फ़ीला दिन-ब-दिन बड़ा और तगड़ा होता हुआ और भी चंचल और शैतान होता जा रहा था।

कभी-कभी वह त्राब्निक के चार्शिया से वैसा ही दौड़ता हुआ गुज़र जाता जैसा कभी बचपन में अफ्रीका के सपाट मैदानों में दौड़ता होगा, जहाँ कि लंबी और तीखी घास उसके किशोर पौरुष को और उसकी तीखी भूख को चुनौती देती होगी। चार्शिया के आसपास भी वह मानो कुछ खोजता हुआ दौड़ता जिसे न पाकर वह मुड़ कर सारे बाज़ार में तोड़-फोड़ करता हुआ तहलका मचा देता। फ़ीले को मानो किसी चीज़ की तलाश थी; शायद अपनी ही उम्र के और ताक़तवाले सहचरों की। उसकी दाढ़ें भी निकलने लगी थीं जिससे वह और भी बेचैन हो गया था और मानो विवश प्रेरणा से सामने पड़ जाने वाली हर चीज़ को चबाने लग जाता था। उसकी इस आदत में चार्शिया के लोगों को जला-लिया की और न जाने किन-किन शैतानों की तबीयत की प्रतिच्छाया दीखती थी।

कभी-कभी फ़ीला बहुत ही शांत और प्रसन्न भाव से टहलता हुआ निकल जाता, बिना किसी की ओर ध्यान दिये या किसी चीज़ को छुए, केवल जब-तब अपनी सूँड़ से मानो अपना ही माथा पीटता हुआ। फिर कभी वह चार्शिया के बीचों-बीच रुक कर अपनी सूँड़ उदास भाव से लटका कर और आंखें झुका कर मानो हताशा की मूर्ति बनकर खड़ा हो जाता। लेकिन ऐसे अवसरों पर भी आसपास दुकानों के सामने खड़े हुए लोग कोहनी से एक-दूसरे को ठेल कर इशारों

ही इशारों में बातें कर लेते।

सुनार ने एक दिन अपने पड़ोसी से पूछा, "जानते हो, फ़ीला मुझे किसकी याद दिलाता है ?"

"किसकी ?"

"वज़ीर की ! हू-ब-हू वही शक्ल है।" सुनार ने आग्रहपूर्वक कहा, हालाँ कि जब कभी वज़ीर उसकी दुकान के सामने से गुज़रा तो उसकी नज़र उठाकर वज़ीर का चेहरा देखने की हिम्मत कभी नहीं हुई थी। और उसकी बात से पड़ोसी ने बिना हाथी की ओर नज़र डाले यह नतीजा निकाल लिया कि ज़रूर ऐसी ही बात होगी और एक तरफ़ को थूकते हुए दबे स्वर में वज़ीर को फ़ीले की माँ से जोड़ते हुए गाली दी।

ऐसी थी उन सबकी घृणा। और चार्शिया की यह ख़ूबी थी कि एक चीज़ पर केंद्रित हो जाने पर वह कभी उसका पीछा नहीं छोड़ती थी बल्कि दिन-ब-दिन घनी होती हुई बढ़ती जाती थी। यहाँ तक कि घना होते-होते उसका रूप ही बदल जाता था, अपने मूल से अलग होकर घृणा एक स्वतंत्र जीवन जीने लगती थी। घृणा का लक्ष्य नाम मात्र रह कर ओट हो जाता था; घृणा ठोस होकर अपने ही नियमों के अनुसार अपने ही पर पलती हुई और भी तीखी, बलवती और दुष्कर होती जाती थी। मानो कोई पाप वासना भरा प्रेम हर चीज़ से प्रेरणा और प्रोत्साहन पाता हुआ अपने लिए नित्य नये आधार पैदा करता चले। जो भी एक बार चार्शिया की घृणा का लक्ष्य बन जाता उसका पतन आगे-पीछे अवश्यंभावी हो जाता था—घृणा के अदृश्य लेकिन घातक बोझ से निस्तार का कोई उपाय नहीं था—सिवाय इसके कि चार्शिया को ही मलियामेट कर दिया जाये और उसके निवासियों को भी नष्ट-निर्मूल कर दिया जाये।

चार्शिया की घृणा अंधी और बहरी है, लेकिन गूँगी नहीं है। चार्शिया में बैठे हुए तो कोई कुछ नहीं कहता क्यों कि जलालिया आखिर जलालिया है; लेकिन शाम को अपने-अपने घरों के सामने इकट्ठे होने पर लोगों की ज़बान की लगामें ढीली हो जातीं और कल्पना उड़ान भरने लगती। और मौसम भी इसमें योग देने लगा था : शरद् ऋतु आ गयी थी। रातें अब भी सुंदर थीं, अँधेरा आकाश तारों से भर गया था। इसमें जब-तब तारे टूट कर एक फुलझड़ा-

सी छोड़ते हुए क्षण भर सारा आकाश आलोकित कर के क्षितिज की ओर बढ़ जाते थे। पहाड़ों की उपत्यकाओं में अलाव जलने लगे थे : फल पका कर जाड़ों-भर के लिए रखे जा रहे थे। अलाव के आसपास चक्कर काटने या बैठते लोग अपना-अपना काम करते या बातचीत, क़िस्से-कहानी, हंसी-मज़ाक़ में जुट जाते। फल और मेवे कहवा और तम्बाकू के दौर चलते रहते और लगभग सभी जगह राकिया (कच्ची शराब) के प्याले घूमते रहते। लेकिन ऐसा कोई अलाव या जमाव न होता जिसमें बात घूम-फिर कर वज़ीर और उसके फ़ीले पर आ कर न अटक जाती।

"बस, बहुत हो गया ! अब और नहीं सहा जाता !"

अक्सर बातचीत इसी वाक्य से शुरू होती। त्राब्निक के चार्शिया में बीते वर्षों और शताब्दियों में यह वाक्य बहुत बार सुना गया होगा; शायद ही कोई पीढ़ी ऐसी हुई होगी जिससे और सहा जाता रहा होगा, बल्कि एक-एक पीढ़ी के जीवन में कई-कई बार ऐसे मौक़े आये होंगे जब बहुत हो चुका होगा। यह ठीक-ठीक निश्चय करना बहुत कठिन था कि ठीक किस बिंदु पर आ कर बहुत हो चुका होता था या और सहना असंभव हो गया होता था; कि ठीक किस बिंदु पर आ कर उस पीढ़ी को ये शब्द कहने का अधिकार मिल जाता था। लेकिन जब भी ये शब्द कहे जाते थे, एक लम्बी साँस के साथ या भिंचे हुए दाँतों में से गुज़रती हुई एक लंबी सिसकी की तरह, और हमेशा ये शब्द कहने वाले के लिए बिल्कुल कठोर सच होते थे।

अलग-अलग जगह अलग-अलग अलावों के आसपास अलग ढंग से एक ही समस्या की चर्चा होती थी। कहीं पर अलाव के चारों ओर बैठे हुए नौजवान लड़कियों की और सगाइयों की, खेलों की या शराबघरों में अपनी-अपनी बहादुरी की चर्चा करते थे। कहीं किसी दूसरे अलाव के आसपास चार्शिया के सौदागर या छोटे शिल्पी जुटे हुए थे। कहीं और बड़े ज़मींदारों, अमीर व्यापारियों और ख़ानदानी रईसों की टोलियाँ थीं।

एक आग के पास दो नौजवान बैठे थे। मेहमानदार शहरागिच और उसका मेहमान था गुलबेगोविच। मेहमानदार परिवार का इकलौता बेटा था; बीस बरस का दुबला-पतला बीमार युवक, कंधे झुके हुए। मेहमान की उम्र भी यही थी, लेकिन उसका बदन गठीला, लंबा और तीर-सा सीधा था, आँखें

तीखी और नीली, जिनके ऊपर पतली सीधी भँवें ऐसी तनी हुई थीं मानो लोहे की पत्तियाँ रख कर उनके दोनों सिरों पर धार कर दी गयी हो। शक्ल-सूरत में इतने भिन्न होते हुए भी दोनों नौजवान पक्के दोस्त थे और उन्हें अपने हमउम्र लोगों से अलग बैठकर उन बातों की निजी और खुली चर्चा करनी अच्छी लगती थी जिनमें इस उम्र के लोगों की दिलचस्पी होती है।

शुक्रवार था। उनके सब साथी क़स्बे की तरफ गये हुए थे इस उम्मीद में कि फाटकों की दरारों में से या जंगले के आरपार लड़कियों से कानाफूसी करने का अवसर मिल सकेगा।

दोनों नौजवान तम्बाकू पीते बैठे हुए धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। आग पर कड़ाहों में मुरब्बे के लिए फल पक रहे थे और छोटी-छोटी लड़कियाँ उन-के आसपास मँडरा रही थीं। एक सेवक जब-तब चाशनी को हिला रहा था।

आग की ओर एकटक देखता हुआ और मानो अपने ही विचारों में डूबा हुआ झुके कंधों वाला युवक अपने दोस्त से कह रहा था :

"लोगों के पास वज़ीर और उसके फ़ीले के अलावा कोई बात ही नहीं है।"

"ठीक तो है। बहुत हो चुका, लोग अब और नहीं सह सकते !"

"मैं तो बार-बार वही एक बात सुनते-सुनते तंग आ गया हूँ : वज़ीर-फ़ीला; फ़ीला-वज़ीर ! मैं तो जब इस बारे में सोचता हूँ, मुझे बेचारे जानवर पर दया ही आती है। उस बिचारे ने क्या क़सूर किया है ? लोगों ने उसे कहीं समुंदर पार जंगल में घेर कर पकड़ लिया, बाँध कर ले आये और बेच दिया :, और वज़ीर ने उसको यहाँ परदेस में अकेला कष्ट भोगने के लिए मँगा लिया। फिर मुझे यह भी ख़्याल आता है कि वज़ीर भी तो यहाँ ज़बरदस्ती ही लाया गया; दूसरों ने बिना उसकी पसंद-नापसंद की बात पूछे उसको यहाँ भेज दिया। और जिस किसी ने भी उसको यहाँ भेजा वह भी लाचार था कि बोस्निया में शांति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए किसी को भेजे। इस तरह मुझको लगता है कि हर जगह कोई किसी दूसरे की इच्छा और ज़रूरत के लिए जहाँ-तहाँ ठेल दिया जाता है; कोई भी जहाँ रहना चाहता है या जहाँ उसको पसंद किया जाता है वहाँ नहीं रह सकता।"

गुलबेगोविच ने उसकी बात काटते हुए कहा :

"बस करो दोस्त ! इतनी दूर-दूर तक सोचने से कुछ हाथ आने वाला नहीं है। तुम यही पता लगाते रह जाओगे कि किसने किसको कहाँ भेजा और हाथी तुम्हारे सिर पर आकर बैठ जायेगा। कुछ समझने-समझाने की कोशिश छोड़ो, अपनी जान बचाओ और जब जिस पर तुम्हारा दाँव चले गहरा हाथ मार दो।"

कुबड़े युवक ने लम्बी साँस ले कर कहा, "लेकिन हर कोई हर किसी पर या जो सामने आ जाये उसपर हाथ चलाने लगे तो हमेशा लड़ाई ही होती रहेगी—इसका अंत कहाँ होगा ?"

"होती रहे ! अंत की फ़िक्र मुझको क्यों हो !" शहरागिच ने कोई जवाब नहीं दिया; अपने ही भीतर और सिमट कर और भी अधिक एकाग्र दृष्टि से आग की ओर देखने लगा।

अलावों के आसपास की इन बातों का क़स्बे या फ़ीले के जीवन पर न कोई असर हुआ, न हो सकता था; निरी बातों से कोई काम थोड़े ही होता है।

कुछ दूर पर एक दूसरी आग के आसपास एक दूसरे ढंग की भीड़ का जमाव था और बातचीत का रंग-ढंग भी बिल्कुल दूसरा था। यह जमाव बड़ा था। कोई एक दर्जन छोटे सौदागर बैठ कर राकिया पी रहे थे। कुछ चुपचाप और पूरी तरह डूब कर, कुछ दूसरे सोच-समझ कर और निरंतर बातें करते हुए। बातचीत बढ़ती हुई चुटकुलों, फिर तीखी व्यंग्योक्तियों, लम्बे एकालापों, भारी गप्पों और उससे भारी डींगों में बदल गयी; फिर छोटी-छोटी बिजली-सी तेज़ सच्चाइयों में। राकिया से लोगों में तरह-तरह के विचार उमड़ते हैं, नयी और अभूतपूर्व कल्पनाएँ जागती हैं, नये शब्द सूझते हैं, नया साहस पैदा होता है। एक तरफ़ आग की प्रसन्न लपटों और दूसरी तरफ अँधेरे में डूबी हुई सोती दुनिया के बीच की स्थिति में ये सब बातें सहज और स्वाभाविक जान पड़ती हैं।

अवदागा ज़्लातारेविच ने दाँत पीसते हुए कहा, "दोस्तो, वज़ीर के उस हैवान की याद से तो मेरे तन में आग लग जाती है—मेरे ही क्यों, सारे चार्शिया के। मैं इस ज़िंदगी से तंग आ गया हूँ।"

और उसके यह कहते ही चारों ओर धीमे स्वर से लेकिन गर्मागर्म चर्चा आरम्भ हो गयी। हर कोई उसमें भाग ले रहा था; हर कोई अपने ढंग से,

अपनी तबीयत और अपनी आमदनी के अनुसार—या कि राकिया के असर की गहराई के अनुसार—अपना गुस्सा प्रकट कर रहा था। कुछ लड़ाई-झगड़े पर उतारू थे और कड़े तथा ज़ोरदार प्रस्ताव रख रहे थे, कुछ बहुत सतर्क थे और लक्ष्य तक पहुँचने के लिए बिना शोर और धूम-धड़क्के के चारों रास्तों से बढ़ने की बात सुझा रहे थे।

नाटे क़द के, लाल बाल, तीखे नक़्श और छटी हुई मूँछों वाले एक लड़ाकू आग़ा ने सब बातों से सहमत होते हुए कहा कि धरती पर और अपने ही क़स्बे में अपनी ऐसी बेइज़्ज़ती देख कर बड़ी शर्म आती है। त्राव्निक को और उसे बनाने वाले को कोसते हुए वह बोला, "क़स्बे को आग लगा देनी चाहिए जिससे कि दीवारों में बसे हुए चूहे तक जल मरें!" फिर वह सारे बोस्निया को कोसने लगा। गुस्से से लाल होते हुए उसने कहा, "सचमुच यह देश और देशों से बिल्-कुल अलग है। दुनिया में ऐसा कोई नहीं होगा जिसने इसे पैरों तले न रौंदा हो। एक हाथी की कसर थी, सो वह भी आ गया। उसको ये इसीलिए यहाँ ले आए कि यह अजूबा भी हमें देखने को न रह जाये। मैं तो—मैं तो बंदूक़ लेकर बैठूंगा और फ़ीला जब मेरी दुकान के सामने आयेगा मैं पूरे बीस ड्राम सीसा उसकी खोपड़ी में दाग दूंगा; फिर वे मुझे चाहे चौक में सूली देते रहें।"

आग़ा की बात का सिर्फ़ एक आदमी ने रुँधे गले से अनुमोदन किया—और वह भी जब आ कर बैठा था तभी नशे में। और सबने बिल्कुल चुपचाप नाटे आग़ा की बात सुन ली। उससे और उसकी धमकियों से सब अच्छी तरह परिचित थे। वही बीस ड्राम सीसा वह और भी अनेकों की खोपड़ी पर दाग चुका था, लेकिन उसका निशाना बने हुए सब लोग जीवित थे, हँसते, खाते थे और इतमीनान से धूप सेंकते थे। सब लोग यह भी जानते थे कि त्राव्निक की बंदूक़ का घोड़ा आसानी से नहीं उठाया जाता, लेकिन बंदूक़ जब चलाई जाती है तो बड़े गुप-चुप ढंग से।

लेकिन नाटा आग़ा सबकी चुप्पी से ज़रा भी नहीं सकपकाया और बढ़-बढ़ कर धमकियाँ देता रहा। धीरे-धीरे कुछ और लोग भी बातों में शामिल हो गये, लेकिन अधिक संयत स्वर से, और बोस्निया तथा उसके वज़ीर को गालियाँ देने लगे। अन्त में षड्यंत्र रचने का समय आ गया। अनेक प्रस्ताव सामने आये। कुछ लोग फ़ौरन किसी ज़ोरदार कार्रवाई के पक्ष में थे, यद्यपि ठीक-ठीक

नहीं बता सकते थे कि क्या कार्रवाई की जाये। कुछ दूसरे धीरे-धीरे सतर्कता से चल कर कुछ दूर भविष्य के बारे में निर्णय करना चाहते थे; तब तक के लिए उनकी राय थी कि त्राब्निक धीरज रखे और सब कुछ सहता चले।

किसी ने बात काटते हुए बिगड़ कर कहा, "कब तक धीरज रखते चलें? जब तक कि फ़ीला और बड़ा होकर हमारे घरों में घुस कर स्त्रियों पर हमला न करने लगे? जानते हो, हाथी की उम्र सौ बरस से भी ज़्यादा की होती है? कुछ समझते हो?"

एक पीले चेहरे वाले बुज़ुर्ग सौदागर ने शांत स्वर से कहा, "हाथी की होती होगी, उसके मालिक की तो नहीं होगी।"

इस बात पर कुछ सौदागरों ने गंभीरता से सिर हिला दिया। बाक़ी जो ज़्यादा गर्म हो रहे थे क्षण भर के लिए निरुत्तर हो गये। बातचीत फिर षड्यंत्रों की ओर मुड़ गयी।

लेकिन इस मजलिस में भी, एक तरफ़ बड़ी-बड़ी डींगों और दूसरी तरफ़ गुपचुप धमकियों के बावजूद कोई गंभीर या कारगर तरकीब नहीं सोची जा सका। जितने प्रस्ताव आये सभी ऐसे साहसभरे थे कि प्रस्तावकों को और कभी-कभी सुनने वालों को भी ख़ुश कर जाते थे; लेकिन निश्चय था कि अगले दिन सवेरे, दिन के खुले प्रकाश में, किसी को उनपर अमल करना न सूझता। और अगली शाम को बातों का और मनगढ़ंत योजनाओं का क्रम फिर चालू हो जाता। अगर कोई संयोगवश पिछली रात की योजना की याद दिला भी देता तो उसकी किसी को परवाह न होती; बल्कि याद ताज़ा हो जाने से और नयी योजनाएँ गढ़ने का मानो रास्ता खुल जाता। इसी तरह आल्यो और फ़ीले की कहानी का भी विकास हुआ।

सितम्बर की वह रात विशेष निर्मल और स्निग्ध थी। स्त्रियाँ मुरब्बे पका रही थीं और पुरुष आग के आसपास कहवा, राकिया और तम्बाकू लिये बैठे थे। अपना कहा हुआ हर शब्द उन्हें मीठा लग रहा था, जो कुछ वह आँखों से देख या हाथों से छू रहे थे सब उन्हें बड़ा प्यारा लग रहा था। जीवन आसान नहीं था, आज़ाद नहीं था और सुरक्षित तो बिलकुल नहीं था; फिर भी उसे भरा-पूरा बनाया जा सकता था, उसके बारे में सयानी और मज़ेदार बातें का जा सकती थीं।

एक आग के आसपास असाधारण शोर था। यहाँ कोई एक दर्जन दुकान-दार जुटे हुए थे—सभी छोटे सौदागर और इसीलिए सबसे अधिक लड़ाकू तबीयत के! आल्यो कज़्ज़ाज़ चार्शिया की एक छोटी लेकिन प्रसिद्ध रेशम की दुकान का मालिक था। दुकान में रेशमी थैले, कमरबंद डोरे और रिबन बिकते थे; कुछ की बुनाई भी दुकान में ही होती थी। कज़्ज़ाज़ एक बड़े पुराने नामी और शक्तिशाली ख़ानदान शाहबेगोविच की एक शाखा थे। लेकिन यह ख़ानदान अब मिट चुका था। घटनाओं के फेर से कज़्ज़ाज़ परिवार की ज़मीन छिन गयी थी और उन्हें शिल्प और व्यवसाय में हाथ लगाना पड़ा था। पिछले पचास बरस से यह परिवार रेशम के सौदागर कज़्ज़ाज़ियों के संघ का सदस्य था, इसीलिए शाहबेगोविच के बदले उनका नाम ही कज़्ज़ाज़ हो गया था। वे लोग भलेमानुस और कुशल कारीगर प्रसिद्ध थे। आल्यो की भी ऐसी ही ख्याति थी लेकिन वह थोड़ा मनचला और ज़िद्दी भी था। लम्बा और गठीला बदन, पका लाल चेहरा, काली आँखें और महीन असमान दाढ़ी; आल्यो एक साथ ही सीधा और चालाक था; वह मज़ाक़िया प्रसिद्ध था; साहसपूर्वक ऐसी बातें कह जाता जो दूसरे कभी न कह पाते, ऐसे काम कर बैठता जिनका दूसरों को कभी साहस न होता; फिर भी कोई कभी ठीक-ठाक यह न तय कर पाता कि कब वह मज़ाक़ कर रहा है या कि कब दूसरे भी उसके साथ मज़ाक़ कर सकते हैं। कब वह चालाकी से सच कह रहा है और कब वह सच के साथ खेलवाड़ करने की चालाकी दिखा रहा है।

बहुत दिन पहले, जवानी में मांटेनिग्रो की लड़ाई में उसने सुलेमानपाशा की सेना में काम किया था। उसकी बहादुरी और उसकी चतुराई दोनों प्रसिद्ध थे।

आल्यो आकर आग के पास बैठा ही था कि लोगों ने उससे सवाल पूछने शुरू कर दिये।

"आल्यो, हम लोगों में यह बहस हो रही थी कि दुनिया में सबसे बुरी और भयानक बात क्या है; सबसे अच्छी और मीठी बात क्या?"

"सबसे बुरी बात है आँधी की रात में मांटेनिग्रो की पहाड़ियों में मांटेनिग्रो सिपाहियों से घिर जाना—उनकी एक टुकड़ी सामने और दूसरी टुकड़ी पीछे।"

इतना तो आल्यो बिना सोचे-समझे ऐसे कह गया मानो उसे ज़बानी याद हो। फिर वह एकाएक रुक कर चुप हो गया और उसके माथे पर सोच के बल पड़ गये। लोगों ने हठ किया कि वह दूसरे सवाल का जवाब दे लेकिन अपनी काली चमकती हुई आँखों में शरारत-भरे हुए वह उनकी ओर देखता रहा। फिर सँभल कर बोला :

"सबसे मीठी बात ?...सबसे मीठी बात ?...तुम्हीं बताओ...सबसे मीठी बात क्या हो सकती है--कोई बेवकूफ़ ही ऐसा सवाल पूछ सकता है; हर समझदार आदमी जानता है कि सबसे मीठी बात क्या है। वह कोई पूछता नहीं। वह तो जानी हुई बात होती है। यह भी कोई पूछने की बात है भला ?"

लेकिन इस थोड़े-से हँसी-मज़ाक़ के बाद बात फिर फ़ीले पर आ कर टिक गयी। वही रोज़ वाली शिकायतें, धमकियाँ, डींगें। किसी ने राय दी कि चार्शिया के पाँच प्रतिनिधि जाकर वज़ीर से फ़ीले और उसके अमले की शिकायत करें।

दुबले-पतले दर्ज़ी तोसुन आग़ा ने जल्दी से राकिया का प्याला चढ़ा कर भारी साँस लेते हुए (राकिया की साँस बड़ी-बड़ी बातों के साथ मेल खाती है) कहा :

"चलो, सबसे पहले मैं जाने को तैयार हूँ।"

तोसनु आग़ा आदमी की परछाईं-भर था, पुराना पापी और ऊपर से बदनाम भी; पर उसका अहंकार इतना बड़ा था कि हर भावना पर छा जाता था, यहाँ तक कि डर पर भी। आग की लाल रोशनी में वह और भी थका-हारा, पीला और निर्जीव-सा दीख रहा था।

"अच्छी बात है, अगर तुम सबसे पहले हो तो, चलो, मैं कम से कम तीसरा तो हो ही जाऊँ!" आल्यो ने हँसते हुए कहा। और कई भी जल्दी-जल्दी राकिया के प्याले खत्म करके एक दूसरे से होड़ करने लगे।

"मुझे भी शामिल कर लो।"

"मुझे भी!"

इस प्रकार थोड़ी देर सब डींगें हाँकते रहे और रोब गाँठते रहे। देर रात को जब सभा भंग हुई तब तक पक्की योजना बन गई थी और क़समें भी खा ली गई थीं कि अगले दिन पाँच बजे [illegible] तोसुन आग़ा की दुकान के सामने

मिलेंगे ग्रौर साथ जाकर वज़ीर से मिलने की ग्रनुमति चाहेंगे; वज़ीर को सारी बात बता कर फ़ीले ग्रौर उसके ज़ालिम रखवालों के बारे में चार्शिया की सच्ची भावनाएँ बतायेंगे ग्रौर प्रार्थना करेंगे कि यह बोझ उनकी पीठ पर से उठा लिया जाये।

उस रात डींगें हाँकने वाले बहुत-से लोग ग्रपने-ग्रपने बिस्तर पर पड़े यह सोचते-सोचते जाग कर रात काट रहे थे कि क्या सचमुच उन्होंने नशे की झोंक में क़सम खा ली थी कि जलालिया का सामना करेंगे, या कि सब एक सपना था।

३

ग्रगले दिन सवेरा हुग्रा ग्रौर नियत समय हो गया तो पाँच में से केवल तीन ग्रादमी तोसुन ग्राग़ा की दुकान के सामने इकट्ठे हुए बाक़ी दोनों का कहीं कोई पता नहीं लगा। वज़ीर की डयोढ़ी के रास्ते में तीन में से भी एक के पेट में इतने ज़ोर का दर्द हुग्रा कि वह सड़क के किनारे के घने बाग़ के झुरमुट में घुस गया—ग्रौर फिर दोबारा दिखाई नहीं दिया। बाक़ी रह गये ग्राल्यो ग्रौर उसके साथ तोसुन ग्राग़ा।

दोनों साथ-साथ एक ही बात सोचते हुए चल रहे थे: कि उन्हें इस खतरनाक ग्रौर बेवकूफ़ाना रास्ते से लौट जाना चाहिए। लेकिन कोई भी ग्रपना विचार शब्दों में प्रकट करने को तैयार नहीं था, इसलिए दोनों बढ़ते चले जा रहे थे। इस प्रकार मन ही मन एक दूसरे के प्रति खीझ ग्रौर संदेह से कटे हुए दोनों लाश्वा के पुल तक पहुँच गये: पुल के पार डयोढ़ी थी। तोसुन ग्राग़ा थोड़ी देर हिच-किचाया ग्रौर रुक गया; ग्राल्यो पुल की ग्रोर बढ़ता गया। उसने सोच रखा था कि पुल तक पहुँच कर ही रुकेगा ताकि दोनों एक बार फ़ैसले पर नये सिरे से विचार कर सकें जिसके कारण उन्हें ग्रपनी जान से हाथ धोना पड़ सकता है। ऊँची ग्रावाज़ें सुन कर वह चौंक कर ग्रपने विचारों से जागा। पुल के दूसरे छोर

पर खड़े हुए दो पहरेदार एक साथ ही चिल्लाकर कुछ कह रहे थे।

पहले तो आल्यो ने समझा कि वे उसे पुल पर से पीछे हट जाने को कह रहे हैं। इससे खुश हो कर वह मुड़ने ही जा रहा था कि उसने देखा, वे लोग इशारों से उसको बुला रहे हैं :

"ए ! इधर आओ।"

ड्योढ़ी पर पहरा बढ़ा दिया गया था मानो किसी का इंतज़ार हो। दाढ़ी-मूँछ मुड़ाये हुए दोनों पहरेदार आल्यो की ओर बढ़ आये। वह डर गया, लेकिन अब कोई चारा नहीं था; चारा नहीं था इसलिए वह दोस्ती दिखाता हुआ तेज़ी से उन दोनों की ओर बढ़ने लगा।

उन्होंने कड़ककर पूछा, "कहाँ जा रहे हो ? क्या चाहिए ?"

आल्यो ने सहज और मासूम स्वर में जवाब दिया कि मैं तो अपने दोस्त आलोविच परिवार से मिलने जा रहा था—कुछ खूबानियों के लिए—लेकिन रास्ते में एक पड़ोसी मिल गया था, उसके साथ बातें करते-करते अनजाने ही इतनी दूर इधर निकल आया। और यह कहानी सुनाकर वह मानो अपने पर और अपनी बेवकूफ़ी पर हँस दिया; एक खुली और ज़रूरत से ज़्यादा आत्मीयता-भरी हँसी। पहरेदारों ने क्षण भर संदेह से भरे उसकी ओर देखा, फिर दोनों में जो उम्र में बड़ा था उसने कुछ नर्म पड़ कर कहा, "चलो, अपना रास्ता देखो !"

आल्यो अब तक अपने आरंभिक डर से छुटकारा पा कर सँभल गया था। उसका मन हो रहा था कि इन जवानों से थोड़ी बातचीत करे; जिस ख़तरे से वह बच गया था उस पर थोड़ा हँस ले।

"अच्छा, दोस्तो, अपना ख़याल रखो और फ़र्माबरदार बने रहो ! खुदा आपके मालिक को लंबी उम्र दे !"

जलालिया के सिपाही, जिन्हें किसी की जान लेने में ज़रा भी झिझक नहीं रही थी, अपने रूखे चेहरों पर एक मुस्कान फैलाये उसकी ओर ताकते रहे।

वज़ीर के बाग़ के बाहर की दीवार के पास से पहाड़ी पर चढ़ते हुए आल्यो ने एक बार फिर मुड़कर सिपाहियों की ओर देखा और मुस्करा दिया लेकिन सिपाही उसकी तरफ़ नहीं देख रहे थे। फिर आल्यो ने लाश्वा नदी के दूसरे किनारे पर नज़र [illegible] सब प्रतिज्ञाएँ तोड़

कर और अपने दोस्त को मुसीबत में छोड़ कर रफ़ू चक्कर हो गया था।

दोनों ओर ऊँची बाड़ के बीच से गुज़रती हुई ऊबड़-खाबड़ पगडंडी के सहारे चढ़ता हुआ आल्यो पहाड़ी की चोटी पर पहुँच गया। वहाँ नाशपाती के एक लंबे पेड़ के नीचे, जिसकी पत्तियाँ अभी से पीली हो गयीं थीं, थोड़ी-सी समतल जगह थी। वहाँ बैठ कर आल्यो ने तंबाकू की थैली निकाली और वट कर एक सिगरेट तैयार किया। नीचे वज़ीर का महल लाश्वा नदी के दाहिने किनारे की घाटी में छिप गया था। त्राव्निक दूर पर एक काली और भूरी छतों का बेतरतीब ढेर-सा दीख रहा था जिसकी चिमनियों से धुएँ के नीले और सफ़ेद डोरे बल खाते हुए उठ रहे थे। कभी दो-तीन डोरे मिल कर, एक दूसरे से उलझ कर फैलते-सिकुड़ते आकाश में घुल जाते थे।

सिगरेट के कुछ कश लगा लेने के बाद ही आल्यो कुछ शांत हुआ; तब उसे ध्यान आया कि सवेरे उसके साथ कितना बड़ा धोखा किया गया और चाशिया ने उसे अकेले इतने बड़े जोखम में डालकर उसके साथ कितना बुरा किया।

सारे मामले से कुल मिलाकर उसका कोई वास्ता नहीं था, फिर भी सबने मिलकर उसी को फँसा दिया और जिसका सामना वे ख़ुद नहीं कर सकते थे उसका सामना करने की ज़िम्मेदारी उसके सिर मढ़ दी।

इस ढाल की इस ऊँचाई पर इस छोटी-सी खुली जगह बैठे-बैठे आल्यो ने अपने गाँव को नयी आँखों से देखा। दिन में ऐसे वक़्त अपनी दुकान के अलावा और किसी जगह गये उसे वर्षों हो गये थे; वर्षों बाद वह इस तरफ़ आया या इस पहाड़ी पर चढ़ा था। सब कुछ दूर और अपरिचित दीख रहा था और निरंतर नये और असाधारण विचार उसके मन में उमड़ रहे थे; उसकी भावनाओं पर बलपूर्वक छा रहे थे। समय अलक्षित तेज़ी से बीता जा रहा था। आल्यो सारी दोपहर और तीसरे पहर भी वहीं बैठा रहा। कौन कह सकता था कि सितंबर के इस मधुर दिन में क्या-क्या विचार उस कज़्ज़ाज़ी खोपड़ी में से गुज़र रहे हैं जिसमें साधारणतया सच्चाई और मज़ाक़ लगातार ज्वार-भाटे की तरह उमड़ते-उतरते एक दूसरे की निशानियाँ मिटाते रहते थे। आल्यो गंभीरता से सोच रहा था, जैसा उसने पहले कभी नहीं किया था : उस दिन सवेरे की घटनाओं के बारे में, फ़ीले के बारे में, चाशिया के, बोस्निया के, साम्राज्य के बारे में।

उसकी खोपड़ी गहरे चिंतन की आदी नहीं थी; लेकिन आज मानो बिजली की एक हल्की कौंध उसके मस्तिष्क को भेद गई थी और उसके सामने एकाएक स्पष्ट कर गयी थी उसके क़स्बे की, देश की, और साम्राज्य की यथार्थता—जिस क़स्बे, देश, और साम्राज्य में वह, आल्यो, और उसके जैसे हज़ारों प्राणी रहते थे, कुछ उससे थोड़े और बेवकूफ़ या थोड़े समझदार, बहुत-से उससे भी कहीं ज़्यादा ग़रीब और कुछ थोड़े अमीर। क्या ज़िंदगी थी उनकी ! सूनी, प्रतिष्ठारहित ज़िंदगी, बेवकूफ़ों की तरह जी गयी और बहुत महँगे दामों पाई गयी—और सच पूछो तो उस क़ीमत के लायक बिल्कुल नहीं, बिल्कुल नहीं···और ये सब विचार मिलकर एक सिद्धांत का सूत्र बन गये : लोगों में न दम है न हौसला।

इन्सान डर से अभिशप्त है, और इसलिए कमज़ोर है। चार्शिया में हर कोई डरा हुआ है, कोई ज़्यादा, कोई कम; लेकिन लोगों के पास अपना डर छिपाने की, अपने या दूसरों के सामने उसकी सफ़ाई देने की सैकड़ों तरकीबें हैं। और इन्सान को ऐसा डरपोक नहीं होना चाहिए—कभी नहीं होना चाहिए। उसे होना चाहिए निडर, अभिमानी, हमेशा अपनी ताक़त पहचानने वाला; उसे कभी किसी के हाथों बेवकूफ़ नहीं बन जाना चाहिए। एक बार भी वह बिना भड़के (क्योंकि आग उसके भीतर है ही नहीं), एक मामूली-सी बेइज़्ज़ती भी सह ले, बस इसी से वह खत्म हो जायेगा। हर कोई उसके सिर पर सवार हो जायेगा—सिर्फ़ सुल्तान और वज़ीर ही नहीं, वज़ीर के प्यादे और फ़ीले भी और अदना से अदना जानवर—यहाँ तक कि जूँ और खटमल भी। बोस्निया का कभी कुछ नहीं हो सकता। जब तक उस पर किसी जलालुद्दीन का राज्य रहेगा। आज जलालुद्दीन है कल कोई दूसरा हो जायेगा, उससे भी बुरा और काले दिल का। इन्सान को चाहिए कि बुराई को मार गिराये, तन कर खड़ा हो और किसी को पास न फटकने दे। किसी को ! लेकिन ऐसा क्या हो सकता है ? इस चार्शिया में जिसमें ऐसे पाँच आदमी नहीं मिल सकते जो वज़ीर के मुँह पर एक साफ़ बात कह दें ? नहीं, कुछ नहीं हो सकता ! और न जाने कब से यही हाल चला आ रहा है; जो अभिमानी हैं उनकी रोज़ी और आज़ादी बहुत जल्दी छिन जाती है; और जो सिर झुका कर अपने को डर को सौंप देते हैं वे वैसे ही मिट जाते हैं—उनका डर ही उन्हें खा जाता है। जो लोग संयोग से जलालिया के ज़माने में जी रहे हैं उन्हें दोनों में से एक चीज़ चुननी होगी। यानी उनको,

जिनमें चुनने का दम है।

और इतना दम किसमें है ?

तो यह है असली सवाल। और वही, जो यहाँ बैठा यह सब सोच रहा है, वह भी इसका क्या जवाब दे सकता है ? वह हमेशा अपनी बहादुरी पर ज़ोर देता रहा है, डींग हाँकता रहा है कि वह निडर होकर तीन आदमियों का, दस आदमियों का, आधे त्राब्निक का मुक़ाबला कर सकता है, और त्राब्निक के भी दिलेर आधे का। दूसरे भी उसकी तारीफ़ करते रहे हैं। तो फिर ? रात भी आग के पास बैठा हुआ वह निडर था और इस समय भी वह अपने को उतना ही निडर समझ रहा है। तो फिर जब वह पहरेदारों से बात कर रहा था तब उसका साहस कहाँ गया था ? उस समय तो एक डर का भूत उसके सिर पर सवार हो गया था और उसकी लड़खड़ाती टागें बड़ी मुश्किल से उसकी पिछाड़ी का बोझ पहाड़ी के ऊपर तक ढो सकी थीं ! चारों निकम्मे एफ़ेंदी उसे दग़ा दे गये थे—तो क्या इसी से सच सच नहीं रहा था, या कि इन्साफ़ नहीं रहा था ? नहीं; बात यही है कि त्राब्निक में या उसके चार्शिया में अब न हौसला रह गया है न दम, जो थोड़ी-सी साँस बाक़ी है वह भी हा-हा, हू-हू में, या अपने पड़ोसियों को धोखा देने, देहातियों को उल्लू बनाने और टके जोड़ने में ख़र्च हो जाती है। इसीलिए वे सब जैसे जी रहे हैं जी रहे हैं; इसीलिए उनकी ज़िंदगी इतनी घटिया है, ज़लील है ··

इन सब, और ऐसे ही अनेक विचारों के पीछे आल्यो मन की कई अँधेरी गलियों में बहुत देर तक भटकता रहा; किसी प्रश्न का कोई हल उसे नहीं मिला।

भेड़ों की गल-घंटियों की आवाज़ से ही वह विचारों से चौंक कर जागा। गड़रिये अपने रेवड़ पहाड़ी से नीचे क़स्बे की ओर ले जा रहे थे। धुँधलके में वह भी धीरे-धीरे उतरता हुआ क़स्बे की ओर चला। पहाड़ी से उतरते-उतरते उसके उलझे हुए विचारों का ज्वार भी मानो उतर गया। वह फिर वही पुराना आल्यो रह गया, चार्शिये का पुराना दिल्लगीबाज़। हर क़दम के साथ एक तीव्र इच्छा उसके मन में उभरने लगी कि ईंट का जवाब पत्थर से दे, चार्शिया वालों को उनकी थोथी शेख़ियों और डरपोकपने का पूरा मज़ा चखाये। इस विचार से ही उसके चेहरे पर उसकी पुरानी मक्कार मुस्कान फैल गयी।

कुछ छिप कर अपने घर तक पहुँचने के लिए वह तंग गलियों में से गुज़रता हुआ बढ़ने लगा। सबको बेवक़ूफ़ बनाकर बदला लेने की एक योजना उसके मन में पक रही थी।

घर पर उसकी पत्नी और बच्चों ने आँसूभरे आनंद के साथ उसका स्वागत किया। उनका दिन गहरी चिंता में बीता था। आल्यो ने डटकर खाना खाया और गहरी नींद सो गया। अगले दिन सवेरे जब वह घर से निकला तो पिछली शाम की चिंताओं की कोई छाप उसके चेहरे पर नहीं थी। बल्कि तब तक वह वज़ीर की ड्योढ़ी की अपनी सैर और वज़ीर के साथ अपनी मुलाक़ात की पूरी कहानी तैयार कर चुका था।

चार्शिया के व्यापारियों ने उससे पहले दिन सवेरे अपनी-अपनी दुकानें खोलते ही लक्ष्य किया था कि आल्यो कज़्ज़ाज़ अपनी दुकान पर नहीं आया है। थोड़ी ही देर बाद उन्हें यह खबर भी मिल गयी थी कि तोसुन आग़ा भी लाश्वा नदी के पुल से अधमरा-सा वापिस आ गया था और आल्यो आगे बढ़ कर वज़ीर के सिपाहियों के बीच ओझल हो गया था। सभी सौदागर पड़ोसी बहुत घबराये हुए-से रह-रह कर आल्यो की दुकान की ओर झाँकते रहे थे : कुछ कारीगरों ने अपने शागिर्दों को पड़ताल करने भी भेजा था।

शाम को चार्शिया बंद हुआ तो सब लोग आल्यो के बारे में गंभीर दुश्चिंताएँ कर रहे थे, इसलिए सवेरे ही जब स्वस्थ और मुस्कुराता हुआ आल्यो उनकी नज़रों के सामने से गुज़रा और दुकान खोल कर रोज़ की तरह शांति से पीले रेशम का थान खोल कर दुकान के सामने फैलाने लगा तो सबको बड़ी सांत्वना मिली। इतना ही नहीं, कल सब लोग आल्यो के भाग्य (यानी अपने भाग्य) के बारे में जैसे चिंताओं से भरे हुए थे वैसे ही आज सब दावा कर रहे थे कि उन्हें शुरू से पता था कि परिणाम अच्छा होगा क्यों कि पागल के कंधों पर पागल का सिर ही सुरक्षित रहा करता है। कौतूहल से भरे निठल्ले लोग आल्यो की दुकान के सामने चक्कर काट रहे थे। हर किसी से आल्यो ने मुस्कुरा कर दुआ-सलाम की, लेकिन उस चालाकी-भरी भोली मुस्कान से अधिक किसी को कुछ नहीं मिला। सारा दिन बीत गया। चार्शिया कौतूहल से भरा जा रहा था, लेकिन आल्यो चुप्पी साधे था। जब दिन ढलने लगा तभी जा कर आल्यो ने अपने एक पडोसी को बड़े गुपचुप ढंग से

ग्रौर गोपनीयता की शपथ दिला कर पिछले दिन का क़िस्सा बताया। फुस-फुसाते स्वर में ग्राल्यो ने कहा, "तुम्हें मैं सारी बात बता सकता हूँ क्योंकि मुझे पूरा भरोसा है कि तुम किसी को बताग्रोगे नहीं। सच कहूँ तो जब मैंने देखा कि इधर मैं सिपाहियों के साथ उलझ गया हूँ ग्रौर उधर तोसुन ग्राग्रा नुक्कड़ से ही खिसक गया है तब मैं थोड़ा घबड़ा तो गया, लेकिन फिर मैंने देखा कि ग्रब कोई छुटकारा नहीं है। इसलिए मैंने बहाना किया कि मैं तो ग्रपने ही काम से ग्रपने दोस्त ग्रालोविच परिवार से मिलने जा रहा था। लेकिन वे माने ही नहीं। बोले, 'हम सब जानते हैं; तुम ड्योढ़ी के भीतर जाने के लिए ग्राये थे ग्रौर इसलिए ड्योढ़ी का फाटक भी खुलवाया गया है।' वे मुझे हवेली के भीतर ले गये, पहले एक फाटक के पार, फिर दूसरे के, ग्रौर फिर एक बड़े ग्रँधेरे कमरे में। मैं हक्का-बक्का चारों ग्रोर देखता रहा, सोचता रहा कि किस तरह यहाँ से निकल सकूँ। वे लोग मुझे ग्रकेला छोड़ गये। मैं बड़ी देर तक इंतज़ार करता रहा, तरह-तरह के विचार मन में उठते रहे, मैं सोचता रहा कि न जाने कभी फिर ग्रपने घर की देहरी देखना भी नसीब होगा या नहीं। दो-तीन दरवाज़े मुझे दीख रहे थे लेकिन सब बंद थे। एक में चाबी के सुराख़ से धूप जैसी तेज़ रोशनी ग्रा रही थी। मैं इसी दरवाज़े की ग्रोर बढ़ कर सुराख़ में से झाँकने के लिए झुका; सुराख़ से मैंने ग्राँख लगायी ही थी कि दरवाज़ा एकाएक खुल गया ग्रौर मैं मुँह के बल एक बड़े जगमग कमरे में जा गिरा। फिर उठ कर देखा : क्या ठाठ थे उस कमरे के! शानदार कालीन ग्रौर ऐश-ग्राराम के सारे इंतज़ाम। मुश्क ग्रंबर की ख़ुशबू से कमरा भर रहा था, झलमल पोशाक पर बख़्तर पहने दो पहरेदार खड़े थे; उनके बीच में कुछ दूरी पर जलालुद्दीन बैठा था। मैंने फ़ौरन पहचान लिया। उसने मुझसे कुछ पूछा लेकिन मैं इतना घबराया हुग्रा था कि सुन कर भी कुछ सुन नहीं पाया। उसने फिर रेशम जैसी चिकनी ग्रावाज़ में पूछा, 'तुम कौन हो, क्या चाहते हो?' मैं लड़खड़ाती हुई, मानो मँगनी की ज़बान से टूटा-फूटा कुछ कहने लगा, 'सरकार, देखिए सरकार, फ़ीले के कारण, बात यह है, सरकार, कि हम लोगों ने तय किया था, कि ग्रापके सामने हाज़िर हो कर फ़रियाद करेंगे…'

"वज़ीर ने उसी चिकनी ग्रावाज़ में मानो बड़ी दूर से बोलते हुए, पूछा,

'तुम्हारे साथ और कौन है ?' वह एकटक मेरी ओर देख रहा था।

"मेरा तो सच, लहू जम गया। मैंने मुड़ कर देखा कि कम से कम वह कमबख्त तोसुन तो मेरे साथ हो, हालाँ कि मैं जानता था कि कोई नहीं है और सब मुझे दगा देकर अकेला छोड़ गये हैं, कि इस मुसीबत का सामना मुझे अकेले ही करना पड़ेगा। फिर मेरे भीतर कुछ हो गया। मैंने हौसला बाँधकर वज़ीर की ओर देखा और फिर सीने पर हाथ रखते हुए सिर झुका-कर (मानो बहुत दिन से अभ्यास कर रखा हो) कहना शुरू किया :

"'हुज़ूरे आला, मुझे सारे चार्शिया ने इसलिए भेजा था कि आपके कारिन्दे से कहकर आप तक अपनी फ़रियाद पहुँचायें (आपको तकलीफ़ देने के लिए उतनी जुर्रत कोई कैसे कर सकता ?) कि आपका यह फ़ीला हमारे क़स्बे की शान और रौनक़ है और चार्शिया को इस बात से बड़ी ख़ुशी होगी कि आप उसकी जोड़ी भी मँगवा लें ताकि सारे बोस्निया के आगे हम फ़ख्र कर सकें। और यह भी होगा कि फ़ीला भी इतना अकेला और उदास नहीं रहेगा। हम लोग तो उससे इतने हिल-मिल गये हैं कि ख़ुद अपने पालतू जानवरों को इतना प्यार नहीं करते जितना उसको। चार्शिया ने यही कहने और फ़रियाद करने के लिए मुझे भेजा था। क्या करना ठीक होगा यह तो हुज़ूर ज़्यादा जानते हैं और हुज़ूर फ़ैसला करेंगे। लेकिन चार्शिया की ओर से मुझे यह अर्ज़ करना है कि आप दो या तीन या चार भी और मँगा लें तो हम पर कोई बोझ नहीं पड़ेगा। और हम लोगों की यह फ़रियाद है कि आप हम लोगों के बारे में झूठे या हमारा बुरा चाहने वाले लोगों की फैलायी हुई अफ़वाहों पर यकीन न करें। ऐसे लोगों से चार्शिया का कोई वास्ता नहीं है और न ही होगा। मैंने आपके सामने पेश होकर आपको बिला वजह तकलीफ़ दी इस कुसूर के लिए हुज़ूर माफ़ फ़रमायें।'

"और भी बहुत कुछ मैंने कहा—न जाने कहाँ से मुझको इतनी बातें आ गयीं। और अपनी बात पूरी करके मैंने फ़र्श तक झुककर वज़ीर का पहुँचा चूमा। वज़ीर ने अपने प्यादे से कुछ कहा जो मैं ठीक सुन नहीं पाया और उठकर भीतर चला गया। लेकिन उसने कुछ अच्छा ही कहा होगा क्यों कि सिपाही जब मुझे उस अंधेरे कमरे और फिर आँगन में लाये तो मुझसे बड़ी अच्छी तरह पेश आये। आँगन में वज़ीर के दस-बारह कारिंदे थे जो सब

मेरी ओर देख कर मुस्करा दिये मानो मैं कोई जज होऊँ। दो ने आगे बढ़कर मेरे एक हाथ में अच्छे तम्बाकू का डिब्बा और दूसरे में मिठाइयों की पोटली पकड़ा दी और इस तरह मुझे सदर फाटक तक ले आये।

"सच मानो, दोस्त, पुल को और लाश्वा नदी को देखकर मुझे लगा कि मुझे दूसरी ज़िंदगी मिल गयी है! यों मैंने अपनी जान बचायी। अगर बात चार्शिया वालों के या उनके साथ होती जो मेरे साथ चले थे तब तो मुझे दुबारा सूरज की रोशनी देखना नसीब न होता, न मेरी दुकान के किवाड़ फिर कभी खुलते! लेकिन यह सब किसी को बताना नहीं, तुम्हारी जान की क़सम··· लोग कैसे हैं, तुम तो जानते ही हो।"

पड़ोसी ने कहा, "ख़ूब जानता हूँ! तुम इत्मीनान रखो। लेकिन तुम्हारा क्या ख़्याल है, वज़ीर सचमुच एक और हाथी मँगवा लेगा?"

आल्यो ने कंधे सिकोड़ कर दोनों हाथ फैला दिये।

"अब मैं क्या जानूँ। यह तो ख़ुदा ही जानता है। और इसकी फ़िक्र भी चार्शिया करे, मुझे क्या! मेरे साथ जो गुज़री उसके बाद मैं तो कभी वज़ीरों और फ़ीलों से कोई वास्ता रखने से रहा।"

"हाँ, हाँ, सो तो है," लंबी साँस लेकर पड़ोसी ने कहा। उसने कोशिश की कि आल्यो कुछ और भी कहे लेकिन आल्यो मुस्कुरा कर चुप हो गया।

कहानी समाप्त कर के आल्यो जब अपने दोस्त से अलग हुआ तब वह जानता था कि जो कुछ उसने किया है वह चार्शिया में ढिंढोरा पिटवा देने से कुछ कम नहीं होगा। और उसका अनुमान ठीक भी था। दिन छिपे तक चार्शिया में शायद ही कोई दुकान बची होगी जिसे वज़ीर से आल्यो की मुलाक़ात का पूरा ब्यौरा सुनने को न मिल गया हो।

अगले कई दिनों में आल्यो की कहानी दुकानों में और शरत् कालीन साँझ के अलावों के आसपास न जाने कितनी बार सुनायी और दोहरायी गयी होगी। कुछ इस बात पर नाराज़ होते थे कि इस पागल और कीना रखने वाले आदमी ने सारे चार्शिया को मुसीबत कर दी; कुछ आल्यो की तारीफ़ करते हुए उनको कोसते थे जिन्होंने पहले तो योजना बनायी और फिर ऐन मौक़े पर दग़ा दे गये। कुछ दूसरे अपने को सारी बात से अलग रखना चाहते हुए फ़ैसला देते कि जब ऐरे-गैरे दर्ज़ी तक सार्वजनिक मामलों में टाँग अड़ाने लगे, यहाँ की फ़रि-

याद लेकर वज़ीर के पास तक पहुँचने लगे, तब ऐसी हरकतों पर अचंभा नहीं होना चाहिए ।

कानों-कान फैलती हुई कज़्ज़ाज़ की कहानी हर बार बदलती हुई हर किसी तक पहुँच गयी। और आल्यो ख़ुद चुप लगाये रहा; वह न किसी की बात काटता, न किसी की ताईद करता । अलाव के पास कभी कोई उसे टोककर पूछता भी तो वह दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ मुस्कुरा देता और कहता :

"चार्शिया ने मुझे एक सबक सिखाया। मैं अपने ढंग से उसका शुक्रिया अदा कर रहा हूँ।" और वह सीने पर हाथ रखकर झुककर सलाम करता। लोग इससे और कुढ़ते और वह सुन न रहा होता तो यह भी कहते कि आल्यो बड़ा बेवकूफ़ है और उसके साथ गंभीर बातचीत हो ही नहीं सकती ।

जब त्राब्निक के छोटे सौदागर आग के आसपास बैठ कर आल्यो और उसकी साहस-यात्रा की चर्चा कर रहे थे, तब एक दूसरे अलाव के आसपास अधिक अमीर और प्रतिष्ठित बड़े व्यापारियों का एक और दल इन्हीं मामलों पर अपने ढंग से बातचीत कर रहा था। यह मंडली चार्शिया के मुखियाओं की थी ।

यहाँ न राकिया चल रही थी, न हँसी-मज़ाक़ था; यहाँ नपे-तुले फ़िकरे कहे जा रहे थे जिनके शब्दार्थ से कहीं अधिक महत्त्व बातचीत की चुप्पियों, इशारों और ओठों के कसाव का था। इस मंडली के सभी लोग अधिक उम्र के, पके बालों वाले, शांत और सबके सब बहुत संपन्न थे।

यह मंडली भी फ़ीले को लेकर ही परेशान थी। लेकिन उनकी बातचीत के शब्द साधारण और मधुर थे, ऐसे जिनका अपने आप कोई ख़ास अर्थ नहीं था और जिनका आशय उसके साथ के इशारों और मुद्राओं से ही समझा जा सकता था। चार्शिया के ऊँचे वर्ग की असली भाषा यही मुख-मुद्राओं और इशारों की भाषा थी ।

चार्शिया फ़ीले से अपने बचाव के लिए जो निर्णय करेगा वह बिना धमकियों और शपथों के इन्हीं लोगों के द्वारा किया जायेगा। फ़ीले की समस्या का अगर कोई हल हो सकता था तो उसे चार्शिया के ये बुज़ुर्ग अमीर लोग ही पा सकते थे। क्यों कि इस समस्या के हल के लिए चालाकी की ज़रूरत थी; और चालाकी और समृद्धि का पुराना साथ है; चालाकी संपत्ति के आगे-आगे

चलती है और साथ-साथ भी।

४

इस तरह चार्शिया के लोग अपनी दुकानों में, बग़ीचों में और अलावों के आसपास हँसी-मज़ाक़ करते और क़िस्से-कहानियाँ सुनाते हुए फ़ीले को और जो उसे आब्निक लाया उसको कोसते हुए दिन काट रहे थे। और रोज़ हत्या की नयी-नयी तरकीबें सोचा करते थे।

अकेले बोस्निया में ही क्यों, दुनिया में ऐसी गालियाँ और गुपचुप साज़िशें कहीं भी बहुत दिन बातों तक सीमित नहीं रह सकतीं। कुछ दिन निरी बेकार जान पड़ने वाली बातचीत होती रहती है; निरे शब्द, हाथों के इशारे, जबड़ों या ओठों का फड़कन, भिंचे हुए दाँतों की किचकिचाहट। लेकिन फिर एक दिन एकाएक न जाने कब और कैसे यह सारा ज़बानी जमा-खर्च घना होकर एक हरकत का, घटना का रूप ले लेता है। अक्सर ऐसा होता है कि सयाने समझदार बुज़ुर्गों के सतर्क विचारों और इरादों को किसी नौजवान का जोश और हौसला अभिव्यक्ति दे देता है।

अखरोट पकने लगे थे। पाया गया कि फ़ीले को आब्निक के ताज़ा रसीले अखरोट बहुत पसन्द हैं। वह आकर डालें पकड़ कर हिलाता, नीचे गिरते हुए हर छिलके के भीतर से गिरी निकल कर बाहर गिर पड़ती; फ़ीला उन्हें सूँड़ से उठाकर चबाता और बड़ी सफ़ाई से बचा हुआ छिलका अलग करके थूकता हुआ दूधिया गिरी को फिर से चबाकर निगल लेता।

लड़के अक्सर सड़क पर अखरोट फेंकते; फ़ीला अपना बेडौल बड़ा सिर झुका कर बड़ी सफ़ाई से उन्हें उठा लेता। फिर एक दिन एक अजीब घटना हुई। एक लड़के ने एक अखरोट तोड़ कर आधी गिरी निकाल कर उसकी जगह एक जिंदा मधुमक्खी रख कर दोनों आधों को फिर जोड़ दिया और फ़ीले के आगे फेंक दिया। फ़ीले ने अखरोट उठा कर तोड़ा और एकाएक अजीब आवाज़ें

निकालता हुग्रा सिर इधर-उधर झटकता भागने लगा। रखवाले पीछे रह गये; फ़ीला लाश्वा नदी तक पहुँच कर बहुत देर तक पानी पीता रहा। ग्रौर उसके बाद ही कुछ शांत हुग्रा। रखवाले यही समझते रहे कि उसे किसी मक्खी ने काट खाया है। इस प्रकार यह क्रूरता ग्रौर चालाकी-भरी चाल ग्रकारथ गयी। ग्रक्सर ऐसा होता कि फ़ीला ग्रखरोट के साथ मधुमक्खी को भी चबा डालता ग्रौर बेझिझक निगल जाता। लेकिन यह तो शुरुग्रात थी; लोगों की घृणा दिन-दिन भयानक होती हुई नये उपाय खोज रही थी।

बच्चों की इन शरारतों में बड़े भी दिलचस्पी रखते थे। लेकिन बड़ी होशियारी से ग्रौर ग्रपनी ग्रोर ध्यान खींचे बिना।

जिस रास्ते से फ़ीला गुज़रता था उस पर ग्रब लोग सेब फेंकने लगे—ऐसे-वैसे सेब नहीं बल्कि बड़े-बड़े सुन्दर सुनहरी सेब। लेकिन इनमें से किसी-किसी सेब में त्राब्निकियों ने एक टुकड़ा काटकर भीतर का हिस्सा निकालकर उसकी जगह पिसा हुग्रा शीशा ग्रौर संखिया भर दिया था ग्रौर ऊपर से कटा हुग्रा टुकड़ा फिर ऐसे जमा दिया था कि सेब साबुत दीखे। काँच बहुत बारीक पिसा हुग्रा होता था ग्रौर संखिया की मात्रा भी थोड़ी होती थी। दूकान के दरवाज़ों से ग्रौर बंद खिड़कियों से लोग फ़ीले पर नज़र रखते थे ग्रौर ज़हर का ग्रसर होने का इंतज़ार करते थे। उन्हें बताया गया था कि यह ज़हर धीरे-धीरे ग्रसर करता है लेकिन इतना ग्रचूक है कि बड़े से बड़े जानवर को भी चित्त कर देता है। त्राब्निकी लोग यह देखकर चकित थे कि एक हाथी को मारने के लिए कितने विष की ज़रूरत पड़ती है; फ़ीला मानो सब तरह का ज़हर पचा जाता था। रोज़ विष दिया जाने पर भी फ़ीला कुछ समय तक त्राब्निक के चार्शिया की सैर करने के लिए ग्राता रहा। लेकिन सर्दियाँ शुरू हो जाने पर धीरे-धीरे फ़ीले का वज़न कम होने लगा ग्रौर उसके पेट ग्रौर ग्रँतड़ियों में कष्ट के लक्षण भी दीखने लगे।

त्राब्निकियों को फ़ीले के ग्रागे फल ग्रौर मेवे डालने की मनाही कर दी गयी ग्रौर कुछ दिन के बाद उसका चार्शिया की तरफ़ ग्राना बिल्कुल बंद हो गया। उसे वज़ीर की ड्योढ़ी के ग्रासपास ही थोड़ी देर टहलाया जाने लगा। इससे वह थोड़ा प्रसन्न होता दीखता; सावधानी से बर्फ़ पर पैर रखता हुग्रा वह गंभीरता से थोड़ी-सी बर्फ़ सूँड़ से उठा कर मुँह तक लाता ग्रौर फिर गुस्से

से फुंकार कर आकाश की ओर फेंक देता। धीरे-धीरे यह सैर भी छोटी होती गयी; रखवालों के उसे लौटाने की तैयारी करने से पहले ही फ़ीला अपने-आप तवेले की ओर लौट कर पुआल पर लेट जाता और बराबर पानी पीता हुआ कराह के स्वर निकालता रहता।

वज़ीर की ड्योढ़ी के भीतर क्या हो रहा है यह जानने को चार्शिया बहुत उत्सुक था। सीधे ख़बर पाने का कोई तरीक़ा नहीं था लेकिन एक मुख़बिर को बहुत-सी रिश्वत देकर उन्हें जो कुछ पता लगा वह यों था :

पहली बात यह कि फ़ीला दिन-रात लेटा रहता है और 'अगाड़ी और पिछाड़ी दोनों से बह रहा है'। दूसरी बात यह कि ड्योढ़ी में नौकर-चाकर यह चर्चा कर रहे हैं कि 'हाथी की खाल की क़ीमत क्या होती होगी'; कुछ की राय थी कि वह हज़ारों की बिकेगी, लेकिन कुछ दूसरों का ख़्याल था कि चमड़ी कमाने में ही एक साल लग जायेगा। चार्शिया के लोग असल बात पहचानने में बहुत तेज़ थे और उन्होंने इस ब्यौरे का भी अर्थ लगा लिया। इस अच्छी खबर के लिए उन्हें जो खर्चा उठाना पड़ा उसमें उन्होंने कोताही नहीं की; आशा भरी नज़रों से एक दूसरे की ओर देखते हुए चुपचाप प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक दिन चार्शिया में एकाएक अफ़वाह फैल गयी कि फ़ीला चल बसा।

'फ़ीला मर गया।'

ये शब्द पहले पहल किसने कहे, इसका किसी तरह पता नहीं लग सकता, चाहे कितनी पड़ताल कर ली जाये। यह वाक्य जैसे सामने रखा गया है उससे कोई समझेगा कि कभी ऐसी कोई साफ़ दो टूक घोषणा हुई होगी और इसका स्वागत उत्साह के साथ किया गया होगा। लेकिन नहीं; चार्शिया के लोग कभी अपने मनोभाव इस ढंग से नहीं प्रकट करते थे, कम से कम जलालिया के और उसके फ़ीले के ज़माने में तो कभी नहीं। ऐसी अभिव्यक्ति मानो उनके स्वभाव में ही नहीं थी, वे चाहते भी तो जानते ही नहीं कि यह कैसे किया जाये। पहाड़ों से घिरे हुए इस क़स्बे में, जिस पर जहाँ तक लोगों की स्मृति जाती थी तभी से किसी वज़ीर और उसके अमले का राज रहा, सीलन और ठंडी हवाओं के बीच जन्म लेकर और पल कर, निरंतर एक ऐसे डर की छाया में दिन काटते हुए, जिसका नाम-धाम तो बदलता रहता था लेकिन जिसका स्वभाव कभी नहीं

बदलता था, त्राब्निकी लोग चार्शिया के सैकड़ों रीति-रिवाजों के नीचे पीढ़ियों से दबे हुए थे। समय की गति का कोई असर इन पर नहीं पड़ता था। यहाँ तक कि कभी उनके दिलों में जीत की उमंग उठती भी थी तो एक ख़ास ऊँचाई तक ही उठ सकती थी; किसी-किसी में गले तक आकर भी उमंग अपनी जगह लौट जाती थी और उसी एक पुरानी क़ब्रगाह में अनंत काल से दबी हुई अनेक दूसरी उमंगों, अरमानों और विरोध के प्रकारों के साथ पड़ी रह जाती थी।

यह भी इसी तरह हुआ कि ऐसे ही सुर में कहीं किसी ने फुसफुसा कर कहा कि फ़ीला मर गया, और किसी छिपे हुए चश्मे के चट्टानों के भीतर ही भीतर बहने वाले और सिर्फ़ आवाज़ से पहचाने जा सकने वाले पानी की तरह ये शब्द चार्शिया में एक कंठ से दूसरे कंठ तक, एक मुँह से दूसरे मुँह तक बहते चले गये। ख़बर इसी तरह फैली; बोस्निया के इन रुँधे हुए गलों और हमेशा के लिए भिचे हुए ओठों ने सारे शहर को सूचना दे दी: "फ़ीला मर गया।"

"मर गया?"

"मर गया, मर गया!"

जैसे गर्म तवे पर पानी की बूँद छनछनाती है उसी तरह ये शब्द चार्शिया में एक सनसनी-सी फैलाते हुए दौड़ गये। हर कोई सब कुछ जान गया; और कुछ पूछने की ज़रूरत न रही। एक और मुसीबत कहीं दफ़न हो गयी।

लेकिन चार्शिया जब इस सवाल के साथ उलझ रहा था कि फ़ीला कहाँ दफ़नाया जायेगा और चिंतित होकर अनुमान लगा रहा था कि इस सबकी प्रतिक्रिया वज़ीर पर क्या होगी तब एक दूसरे मुख़बिर ने, जो पहले विश्वस्त मुख़बिर से ज़्यादा विश्वस्त लेकिन कम महँगा था, एक रक़म लेकर चार्शिया को फ़ीले के बारे में एक दूसरा संवाद दिया। और यह संवाद सच्चा था। फ़ीला अभी जीवित है और तेज़ी से स्वास्थ्य-लाभ कर रहा है। कई दिन पहले सच-मुच उसकी हालत बहुत खराब हो गयी थी लेकिन फिर वज़ीर के किसी चाकर ने उसे बन-तुलसी, चोकर और तेल खिला कर ठीक कर दिया। अब हाथी ठीक हो रहा था और चल-फिर रहा था। वज़ीर की ड्योढ़ी में कारिंदे-कर्मचारी बहुत ख़ुश थे; क्यों कि जैसे-जैसे हाथी ज़हर से मर रहा था वैसे-वैसे वे सब डर से मरे जा रहे थे। नये मुख़बिर ने, जिसकी सच्चाई के दाम पहले

मुख़बिर के झूठ से कम ही थे, ड्योढ़ी में मनायी जाने वाली इसी ख़ुशी का समाचार चार्शिया को दिया।

ख़ैर, यह तो हो ही सकता है कि चार्शिया कभी धोखा खा जाये।

जैसे पहली अच्छी ख़बर बिना किसी के कुछ कहे बड़ी तेज़ी से शहर में फैल गयी थी वैसे ही यह बुरी ख़बर भी फैल गयी। लोग एक दूसरे की ओर देखते और मुँह तनिक-सा बिचका कर आँखें झुका लेते।

केवल कोई-कोई नौजवान कड़ुवाहटभरे अचरज से पूछ बैठता, "ज़िंदा है?" जवाब में केवल हाथ का एक उलाहना-भरा इशारा ही मिलता, जवाब देने वाला मुँह फेर लेता।

हाथी सचमुच जीवित था। मार्च के शुरू में कई महीनों बाद पहली बार वह अपने तबेले से बाहर निकाला गया। चार्शिया ने एक दूत को नियुक्त किया कि वज़ीर की ड्योढ़ी तक जाकर हालात का सही-सही पता लगाये। यह दूत देखने में भोला था लेकिन यों बहुत होशियार और विश्वसनीय था। उसने हाथी को अपनी आँखों से देखा और लौटकर ख़बर दी कि वह सिकुड़ कर आधा हो गया है, उसका सिर भी छोटा और कोनेदार दीखने लगा है, चमड़ी के नीचे हड्डियाँ दीख रही हैं, आँखों के आसपास गहरे गड्ढे पड़ गये हैं जिससे आँखें बड़ी-बड़ी दीखने लगी हैं; चमड़ी झूल कर एक लबादे-सी दीखती है और लोम विरल होकर पीले-से दीखने लगे हैं। कई टहलुए हाथी के आसपास चक्कर काट रहे थे लेकिन वह वसंती धूप की ओर पीठ फेरे हुए ऐसे बैठा था मानो उसे चारों ओर की चहल-पहल से कोई मतलब न हो। तेज़ी से पिघलती हुई बरफ़ के बीच जहाँ-तहाँ सूखी पीली घास के चकत्ते दीखने लगे थे, इन्हीं को सूँघता हुआ हाथी लगातार अपना सिर इधर से उधर हिलाता बैठा था।

त्राब्निक में वसन्त के आगमन के साथ-साथ फ़ीला भी बाहर दीखने लगा, उसकी हालत धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से सुधर रही थी। दुगुनी घृणा से भरे हुए निराश चार्शिया के लोग उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जब फ़ीला पूरी तरह स्वस्थ होकर अपनी सैर फिर शुरू कर देगा और न जाने क्या-क्या नये उपद्रव करेगा।

फ़ीले के रखवालों ने, और ख़ास तौर से उसके काले महावत ने शुरू से मान रखा था कि चार्शिया के लोग जान-बूझ कर और लगातार फ़ीले को

ज़हर देते रहे हैं। जब वे दुबारा हाथी को टहलाने ले जाने लगे तो उनके चेहरे पर विजय का भाव स्पष्ट था। चार्शिया की ओर विषभरी आँखों से देखते हुए वे बदला लेने की अपनी योजनाएँ बना रहे थे। जाड़ों में फ़ीले की बीमारी के दौरान महावत ने वज़ीर से कहकर चार्शिया को सज़ा दिलाने की कोशिश भी की थी—इसीलिए कि इस तरह वज़ीर का अपना अमला सज़ा से बच जायेगा। लेकिन वज़ीर का ध्यान इस सबकी ओर नहीं था। कई दिनों से उसका ध्यान एक और ही स्थल पर केंद्रित था—सल्तनत के दूसरे छोर पर; और उसे फ़ीले की जान की उतनी चिंता नहीं थी जितनी ख़ुद अपनी जान की।

जलालुद्दीन ने हुकूमत करने, फ़ैसले सुनाने, दंड देने और क़त्ल करने की अपनी अदम्य इच्छाएँ पूरी कर ली थीं। अगर बोस्निया के या उतमानी सल्तनत के सब जटिल प्रश्न बल से, रक्तपात से या आतंक से हल हो सकते तो जलालुद्दीन का शासन भी सफल माना जाता। लेकिन सल्तनत की समस्याएँ हल करने के लिए दूसरे गुणों की ज़रूरत थी, और ये गुण सल्तनत में कहीं भी दुर्लभ हो गये थे—कम से कम जलालुद्दीन में तो नहीं थे।

और बल जब असहाय हो जाता है, अपने सामने रखी गयी समस्याओं का हल नहीं निकाल पाता, तब बली के, अत्याचारी के ही विरुद्ध हो जाता है। उतमानी सल्तनत में हमेशा ऐसा ही हुआ और सन् १८२० में तो विशेष रूप से, जिस समय जलालुद्दीन त्राब्निक का वज़ीर था और जब सल्तनत मानो सिर्फ़ एक फेफड़े के एक तिहाई से साँस ले रही थी और भीतर-बाहर सैकड़ों शत्रुओं से आक्रांत थी।

ये जटिल शक्तियाँ अब जलालुद्दीन पर ही अपना असर दिखा रही थीं। जलालुद्दीन वैसा आततायी था जो बुनियादी तौर पर एक भाड़े का हत्यारा भर होता है—यानी जिससे एक ही बार काम लिया जा सकता है। वह काम सही ढंग से पूरा न हो तो ऐसे लोगों का बदल उनको ही नष्ट कर देता है।

शुरू-शुरू में जलालिया ने यह बात अच्छी तरह नहीं समझी थी। अब भी इसका पूरा आशय तो उस पर स्पष्ट नहीं था लेकिन इतना वह समझ रहा था कि उसकी चालों से न तो तुर्की सामंतों की शक्ति नष्ट हुई थी, न बोस्निया में शांति स्थापित हो सकी थी। और अब अपने सारे साधन चुका लेने के बाद उसके पास परिस्थिति का सामना करने का कोई उपाय नहीं था।

अब बोस्निया पर शासन के लिए एक नया कार्यक्रम निर्धारित करना होगा—और उसके लिए एक नये वज़ीर की ज़रूरत होगी। और यह तो साफ़ ही था कि अगर नये वज़ीर की नियुक्ति होती है तो पुराने वज़ीर के लिए इस दुनिया में बहुत कम जगह रह जायेगी—उसके लिए क़ब्र, या क़ब्र के बराबर देश-निकाला ही रह जायेगा।

इतना जलालिया साफ़-साफ़ देख सकता था, क्योंकि इतने के लायक जानकारी उसे थी।

दूसरे वज़ीरों के साथ कभी-कभी ऐसा भी होता था कि वे निर्वासन से लौटकर फिर प्रतिष्ठा पा लें, लेकिन जलालुद्दीन ऐसी कोई आशा नहीं कर सकता था, क्योंकि इस्तांबूल में उसकी कोई बनी-बनाई जगह या ताल्लुकात नहीं थे। उस जैसे आत्म-केंद्रित स्वेच्छाचारी के लिए देशनिकाले का मतलब था सब कुछ का अंत—धीरे-धीरे, भद्दे और प्रतिष्ठा-रहित ढंग से घुल-घुल कर मर जाना। जलालुद्दीन को इसमें ज़रा भी शक नहीं था कि इससे तो एकाएक अपनी मर्ज़ी से मर जाना अच्छा है। स्वभाव से ही अत्याचारी और उत्पीड़क जलालुद्दीन दूसरों को सताने की ताक़त के बिना जी नहीं सकता था, लेकिन दूसरी ओर इतना भी नैतिक बल उसमें नहीं था कि दूसरों के द्वारा सताया जाना सह सके।

मार्च में ही इस्तांबूल से एक विशेष दूत फ़रमान लेकर आया कि बोस्निया के लिए नया वज़ीर नियुक्त हो गया है। जलालुद्दीन पाशा को हुक्म हुआ कि वज़ारत शाही पाशा को सौंप कर अद्रियानिया चला जाये और वहाँ नये शाही फ़रमान का इंतज़ार करे।

सदेशवाहक ने निजी तौर पर और पूरे निश्चय के साथ जलालुद्दीन को बताया कि आगे चलकर जलालुद्दीन को रुमीलिया का हाकिम बनाया जायेगा; कि इस बीच उसे कोरिया द्वीप के एक विद्रोह का दमन करने भेजा जायेगा। उसने इन नयी नियुक्तियों पर जलालुद्दीन को बधाई भी दी। ये सब बातें उसने बड़ी तेज़ी से और यंत्रवत् कह डाली मानो रट कर आया हो।

शराब और रिश्वत के सहारे संदेशवाहक से यह कहला लेने में जलालुद्दीन को अधिक देर नहीं लगी कि उसे ख़ास तौर से यह आदेश किया गया था कि इन संभाव्य नियुक्तियों की बात किस गोपनीय ढंग से वज़ीर को बताए। सच्चाई यह थी कि रुमीलिया के हाकिम के पद पर पहले ही एक 'तगड़े' आदमी

की नियुक्ति हो गयी थी। अर्थात् जलालिया के लिए जाल बिछा दिया गया था। जलालिया ने जान लिया कि फ़ैसले की घड़ी आ गयी है, कि उसके अंतर्मन की प्रेरणाएँ उसे जिस रास्ते पर चला रही थीं, त्राब्निक उसकी आख़िरी मंज़िल थी।

और एकाएक जलालुद्दीन ने साफ़-साफ़ देख लिया कि मृत्यु का विचार हमेशा उसके कितना निकट रहा है—सिर्फ़ दूसरों की मृत्यु का नहीं बल्कि खुद अपनी मृत्यु का भी।

जलालुद्दीन ने बड़ी एकाग्रता और होशियारी से अपनी वसीयत लिखकर अपनी सारी संपत्ति अपने साथियों और सहायकों के बीच बाँट दी, जो सब उसी की तरह हत्यारे थे। एक बड़ी रक़म उसने अपनी क़ब्र पर एक शानदार स्मारक बनाये जाने के लिए निर्धारित कर दी और मदफ़न के छोटे से छोटे खर्च की व्यवस्था भी कर दी। क़ब्र पर क्या शिलालेख हो यह भी उसने बता दिया: क़ुरान की वह आयत 'हुवल हय्यूल क़य्यूम' (वह सनातन जीवन है)। क़लमों का अपना भारी संग्रह उसने अपने हाथों एक-एक कर के आग में झोंक कर जला दिया: पिछले कई दिनों से लगातार उसके कमरे में आग जल रही थी मानो यह मार्च का महीना न हो, आधा जाड़ा अभी बाक़ी हो। क़स्बे में किसी को इन बातों की खबर नहीं थी, जैसे यह भी कोई नहीं जानता या सोच सकता था कि उसने अपने सहायक उमर एफ़ेंदी को एक हाथ का लिखा हुआ प्राचीन और अत्यंत मूल्यवान् काव्य-ग्रंथ वसीयत कर दिया है। इस ग्रंथ में फ़ारसी और अरबी कवियों की बत्तीस सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें अलंकृत लिपि में लिखी गई थीं। गुलाब, गुललाल, शराब, साक़ी, चश्मे, अलग़ोज़े और बुलबुलों की भरमार इन ग़ज़लों को रौनक़ दे रही थी; उस काली मिट्टी और उजली धूप का भी गुणगान इन ग़ज़लों में था जो बड़ी दरियादिली से ये सब नियामतें इन्सान को देती हैं, और फिर उससे वापिस लेकर किसी दूसरे शख़्स को दे देती हैं।

यह सब काम पूरा कर चुकने के बाद वज़ीर अपनी आरामगाह में चला गया। नौकरों को उसने यह हिदायत कर दी कि एक घंटे बाद, दोपहर के खाने के लिए उसे जगाया जाये। त्राब्निक के ठंडे पानी के एक गिलास में उसने एक पुड़िया से एक चम्मच भर सफ़ेद चूर मिलाया और कड़वी दवा की तरह पी

गया। यों जिस शांत और अलक्षित ढंग से कुछ बरस पहले वह त्राव्निक में प्रकट हुआ था, उसी ढंग से वह दुनिया से चला गया।

दोपहर से ठीक पहले त्राव्निक की मस्जिदों की मीनारों से मुअज्ज़िम अज़ाँ देने लगे। थोड़ी ही देर में क़स्बे वालों ने पहचाना कि दोपहर की नमाज़ नहीं पढ़ी जा रही है, बल्कि जनाज़ा पढ़ा जा रहा है। प्रार्थना की लंबाई और मौलवी के उत्साह से उन्होंने नतीजा निकाला कि जिसका फ़ातिहा पढ़ा जा रहा है वह ज़रूर कोई अमीर और बड़ा आदमी रहा होगा।

वज़ीर की मौत की खबर बड़ी तेज़ी से फैल गयी। जलालिया के बारे में यह पहली खबर थी जिस पर चार्शिया में कोई टीका नहीं हुई। इसी सन्नाटे के वातावरण में उसे उसी दिन दफ़ना दिया गया। चार्शिया के सभी लोग चुपचाप जनाज़े के साथ गये। उस मौक़े पर या उसके बाद कभी किसी ने वज़ीर के बारे में अच्छा या बुरा कोई शब्द नहीं कहा (यह इतनी बड़ी जीत थी कि इसकी ख़ुशी मनाने की भी कोई ज़रूरत नहीं थी)।

इस बात की लोगों को परवाह नहीं थी कि जलालुद्दीन त्राव्निक में ही दफ़नाया जाएगा। उनके क़स्बे में दो गज़ मिट्टी के नीचे अचल और असहाय वह शांति से सो सकेगा; दिन-ब-दिन छोटा होता हुआ बहुत जल्दी ही वह जीवित इन्सान से किसी तरह की भी समानता खो बैठेगा।

नया वज़ीर शाही पाशा मदफ़न के दिन ही ड्योढ़ी में पहुँच गया। उस समय जलालिया का अमला सज़ा के डर से जल्दी से जल्दी कहीं छिप जाने की चिंता में तेज़ी से इधर-उधर बिखरा जा रहा था।

अपनी वसीयत में जलालिया ने फ़ीला उसी काले महावत को दे दिया था जो इतने दिनों से उसकी देख-भाल करता आ रहा था—उसी फ़ील-फ़ील को, जिससे चार्शिया फ़ीले से भी ज़्यादा घृणा करता था। वज़ीर ने यही लिखा था कि फ़ीले को ले कर फ़ील-फ़ील इस्तांबूल वापस चला जाये और इस सफ़र के लिए ज़रूरी रक़म भी उसके नाम छोड़ गया था। लेकिन इस आदेश का पालन फ़ील-फ़ील के लिए आसान नहीं था क्यों कि उसे अपनी ही जान के लाले पड़े हुए थे। ऐसे अवसरों पर बोस्निया से एक सुई भी छिपा कर निकाल ले जाना संभव नहीं था, हाथी की बात तो दूर; और फिर ऐसे हाथी की जो अब वज़ीर का नहीं था। इसलिए सबकी घृणा का पात्र फ़ील-फ़ील तो मालिक की मृत्यु के

बाद की रात में ही त्राव्निक से निकल भागा। और उसी रात चार्शिया के लोगों ने ड्योढ़ी में घुस कर फ़ीले को सेबों में छिपाये गये पिसे काँच और संखिया से कहीं अधिक मात्रा में एक दूसरा और कहीं अधिक तेज़ ज़हर दे दिया।

जलालिया के मदफ़न के चार दिन बाद फ़ीला भी मर गया। उसने फाटक के पास की अपनी पुआल बिछी जगह छोड़ दी थी और तबेले के सबसे अँधेरे कोने में जा छिपा था। यहीं अगले दिन सवेरे वह लिपट कर पड़ा मरा हुआ पाया गया। उसे फ़ौरन दफ़ना दिया गया, लेकिन यह किसी ने नहीं पूछा कि कैसे और कहाँ। चार्शिया का नियम था कि कोई बला टल जाये तो कुछ समय तक वे उसका नाम भी नहीं लेते थे। बहुत दिन बाद ही, जब घटना कहानी बन चुकी होती थी, तब वे उसकी बात करना शुरू करते थे और तब इस ढंग से मानो वह इतनी दूर की घटना हो कि उसे हँसी-मज़ाक़ के साथ और नयी मुसीबतों के बीच कुछ मुसर्रत पाने के लिए सुनाया जा सकता हो।

यों फ़ीला भी वज़ीर के साथ दफ़ना दिया गया। इस धरती के नीचे हर एक के लिए जगह है।

फिर वसन्त आया; जलालिया के बिना पहला वसन्त। डर अपने चेहरे बदल लेता है, चिंता अपने नाम। एक वज़ीर के बदले दूसरा वज़ीर आता है; जीवन चलता जाता है। सल्तनत विनाश की ओर बढ़ रही थी। त्राव्निक उजड़ रहा था, लेकिन चार्शिया आँधी से गिरे हुए फल के भीतर के कीड़े की तरह जिये जा रहा था। ख़बर आयी कि अर्नूसबेगज़ादा शरीफ़ सीरी सलीमपाशा बोस्निया का नया वज़ीर नियुक्त हुआ है। जो पहली अफ़वाहें पहुँचीं उनके अनुसार नया वज़ीर अच्छा और पढ़ा-लिखा आदमी था और जन्म से बोस्निया का ही था। लेकिन चार्शिया के बुज़ुर्गों ने सिर हिलाते हुए चिंता भरे स्वर में पूछा, "अगर अच्छा आदमी है तो नाम इतना लंबा क्यों है?"

"अरे भाई, कौन जाने उसके मन में क्या होगा और वह अपने साथ क्या लायेगा?"

इस प्रकार फिर चार्शिया नयी ख़बर और विश्वस्त सूचना की प्रतीक्षा में दिन काटने लगा। तकलीफ़ें भुगतते हुए लोग कानाफूसी करते, अपने बचाव के रास्ते सोचते और जब कोई रास्ता न दीखता तो एक-दूसरे को क़िस्से सुनाते जिनमें उनकी इच्छा की [illegible] लेकिन कभी पूरी न होने वाली माँग,

एक नये जीवन और अच्छे ज़माने की उनकी आकांक्षा, प्रकट होती रहती। कारीगर जलालुद्दीन की क़ब्र पर मक़बरा खड़ा कर रहे थे। संगतराश चिकने पत्थर पर शिलालेख खोदने में जुटे हुए थे—पहली पंक्ति उकेरी भी जा चुकी थी। और आल्यो की और वज़ीर के फ़ीले की कहानी बोस्निया भर में फैल रही थी और फैलते-फैलते लंबी होती जा रही थी।

ज़ेको

'ज़ेको' नामक उपन्यास का अनुवाद

अनुवादक

रघुवीर सहाय

पहले महायुद्ध के कुछ वर्ष बाद सारायेव्स्का और क्नेजा मिवोशा राज-मार्ग को मिलाने वाली अनेक ढालू गलियों में से एक में एक नयी सुन्दर पँच-मंज़िली इमारत खड़ी की गयी। अपनी तिरछी छत के कारण ईर्ष्याभरे पड़ौसियों को वह छः मंज़िली दीखती थी। उसका साज़-सामान ऐसा तो नहीं था कि पूरी तरह माडर्न नाम की पात्रता पा सके, लेकिन इमारत अच्छी-खासी बनायी गयी थी और साफ़-सुथरी रक्खी जाती थी। नींव से लेकर छत तक उसकी धुली-पुती सफ़ाई देखकर अधिक बच्चों वाले या मामूली आमदनी वाले किरायेदार उधर आने का हौसला नहीं करते थे।

घर का मालिक···लेकिन इस बात को छोड़ें, क्योंकि यह बताना बहुत मुश्किल होगा कि घर का असल मालिक कौन था। एक तो यह सवाल यों ही बहुत पेचीदा था, दूसरे बहुत-से और सवालों ने उसे और पेचीदा बना दिया था, जैसे आचार, विवाह, जवानी के सपने, और युद्ध से पहले के बेलग्राद नगर के जीवन के बारे में विलम्बित पश्चात्ताप। मिल्कियत का सवाल तो यहाँ हल नहीं किया जा सकता; लेकिन इमारत का शासन असंदिग्ध रूप से मदाम मार्गरीटा कटानिच के हाथ में था—वह सारी इमारत में 'काला साँप' के नाम से प्रसिद्ध थीं। वही फ़्लैट किराये पर उठाती थीं, किराया वसूल करती थीं; किरायेदारों से लड़ती, झगड़ती और सुलहनामे करती थीं, टैक्स चुकातीं और सरकारी अधिकारियों के सवालों का जवाब देती थीं। और व्यावहारिक रूप से वही इमारत की मैनेजर-निरीक्षक भी थीं, क्योंकि निचली मंज़िल में जो

वश्का से आया हुआ निमुच्छा 'मैनेजर' रहता था और जिसकी शक्ल ठीक ऐसी थी मानो एक मुर्ग़ी का चूज़ा गरदन काटी जाने से बचकर भाग आया हो, वह केवल मदाम मार्गरीटा का वेतनभोगी कारिन्दा था। सच बात यह है कि हर मामले की बागडोर उन्हीं समर्थ हाथों में थी।

मदाम मार्गरीटा अपने पति और बेटे के साथ इमारत की दूसरी मंज़िल में छः कमरों के एक बड़े फ़्लैट में रहती थीं। लेकिन पति और लड़के की कुछ और बात करने से पहले मदाम मार्गरीटा के बारे में कम से कम कुछ और बता देना ज़रूरी है। उनकी उम्र पचास के पास पहुँच रही थी, वज़न एक सौ अट्ठानवे पाउंड था, क़द नाटा, बाल बिल्कुल भूरे और बादशाही ज़माने के ढंग से ऊँचे काढ़े हुए होने के बावजूद हमेशा—यहाँ तक कि क्रिसमस के दिन भी—बेतरतीब दीखने वाले। एक अजीब और आक्रामक उत्साह से भरे रहने के कारण उनका सारा शरीर मानो फड़कता और झटके खाता रहता था। यह उत्साह उनके स्वभाव का असल निचोड़ था। यह तो था कि हथिनी जैसी मोटी टाँगों की जोड़ी के कारण उन्हें चलने-फिरने में कठिनाई होती थी, लेकिन टाँगों से ऊपर का उनका शरीर बड़ा जीवन्त और उद्यमी था। और इस जीवन्तता की एक चरम अभिव्यक्ति उनके मुटाये हुए पीले चेहरे में दीखती थी, जिस पर एक असम गहरी रेखा-सा उनका बड़ा मुँह चिपका हुआ था जिसके भीतर से बत्तीस नक़ली दाँत एक मिनट में एक सौ बीस शब्द दागते रहते थे। दो बड़ी-बड़ी गोल आँखें, जिनकी काली पुतलियाँ थोड़ी-सी पपोटे में फैल गई थीं, अपनी अविश्वासी-लालची-भयानक-तीखी चितवन में इस भारी-भरकम शरीर की रक्षा और आघात के लिए हर वक़्त तैयार सारी शक्ति और एकोन्मुखता प्रतिबिंबित करती रहती थीं।

भारी शरीर और आधी दर्जन यथार्थ और कल्पित बीमारियों के बावजूद मदाम मार्गरीटा हर वक़्त हर जगह मौजूद रहती थीं। अपने ही बड़े फ़्लैट में एक गोलाई में बने हुए कमरों में वह एक महाकाय मकड़ी की तरह घूमती रहती थी, कभी गली की, कभी बग़ीचे की और कभी इमारत के मुख्य गलियारे की ओर झाँकती हुई। किस तरह वह सब कुछ देख लेती थी, हर किसी से जवाब-तलब कर लेती थी और हर किसी पर हकूमत कर लेती थी! लेकिन इतना भी काफ़ी नहीं था। हकूमत करने, प्रतिबन्ध लगाने, लोगों को वश

करने और कुचलने की आकांक्षा उनमें इतनी अदम्य थी कि उनकी शक्ति के सामने एक पूरा फ़ौजी रेजीमेण्ट भी नगण्य हो जाता। और जब भाग्य ने उनके अपनी इस शक्ति के उपयोग का घेरा इतना छोटा कर दिया था तब जो भी इस घेरे के अन्दर आता था—पति, लड़का, किरायेदार—सबको उनकी इस शासन की अदम्य इच्छा का पूरा दबाव सहना पड़ता था।

और इस स्त्री को जीवन ने एक पति दिया था जो उससे हर बात में भिन्न था—एक शांत, छोटा-दुबला आदमी जिसका सब कुछ पालतू और मँजा हुआ जान पड़ता था—उसका चेहरा, उसकी चाल, उसकी पोशाक, उसकी बात-चीत। असल में यह पति उसे उसके मिल-मालिक पिता की एक सहेली ने दिलाया था जो मिल-मालिक के घर महायुद्ध से पहले के तीन साल रही थी : उसकी पीढ़ी की भाषा में महायुद्ध से पहले का मतलब था १९१४ से पहले। अपनी उलझी हुई वसीयत में मिल-मालिक ने और अनेक चीजों के साथ यह शानदार इमारत भी—लड़की के नाम 'ऐश-आराम के लिए' वसीयत कर दी थी। और इस जवान मार्गरीटा के समर्थ, इस्पात जैसे कड़े शरीर की और कभी न हँसती आँखों वाले अजीब चेहरे की ओर यह छोटा-सा पालतू आदमी आकृष्ट हुआ था जो अनन्तर उसका पति बना।

उसका जन्म पांचेवो में हुआ था लेकिन वास्तव में जन्मभूमि बेलगराद ही थी। वह दो बरस का था जब उसका बाप, जो एक मामूली संगीत-शिक्षक था, परिवार को लेकर बलगराद आ गया और स्थायी रूप से वहाँ बस गया। उसकी माँ उसके बचपन में ही मर गयी और उसका पालन, पोषण और शिक्षा पिता के द्वारा ही हुई जो कि इतना गम्भीर और चुप्पा था कि कोई उसे गूंगा भी समझ ले सकता था।

पेशे से मार्गरीटा का पति कातिब थ। और शाही फ़रमानों के दफ़्तर में काम करता था। इसके अलावा कई दूसरी और निजी संस्थाओं के लिए भी दस्ता-वेज़ों की किताबत करता था क्यों कि ऐसा हुनर और ऐसे सुन्दर अक्षर सारे बेलगराद में दुर्लभ थे। यों तो उसका अच्छा-खासा मर्दाना नाम था—इसीडोर लेकिन पत्नी ने उसे ज़ेको (खरगोश) नाम दे रखा था, और परिवार में तथा दोस्तों में वह इसी नाम से पुकारा जाता था। यहाँ तक कि उसका लड़का भी उसे 'पापा' न कह[illegible]ानी जब से उसने

बोलना सीखा था तब से यही पुकारता आया था और हर जगह हर कोई हमेशा उसे ऐसे ही नामों से पुकारता था—ज़ेको, ज़ेकानि, ज़ेचको ।

गम्भीर, प्रतिदिन ताज़ा हजामत बनाने वाला और बड़ी नफ़ासत से कपड़े पहनने वाला, यह भला और दयावान व्यक्ति पिछले लगभग बीस बरस से पत्नी रूपी अजगर को खींचता चला आ रहा था। (एक बोस्नियायी किरायेदार का तो कहना था कि वह समुद्री नाव को किनारे की सूखी रेती पर खींचता चल रहा है।) अपनी जवानी की इस दुर्दम लेकिन आश्वस्त वासना का—मिल-मालिक की सौतेली लड़की के कोरे पहलवानी शरीर पर अधिकार करने की कामना का मूल्य वह इस गुलामी में चुका रहा था जिसका अब उसे कोई अंत नहीं दीखता था ।

इस जोड़े की केवल एक संतान हुई, एक लड़का जिसका जन्म उन्नीस सौ पन्द्रह में उनके विवाह के आरम्भिक महीने में और महायुद्ध की विकट परिस्थितियों में हुआ। यह लड़का अब बीस बरस का लम्बा-तगड़ा जवान था, गोरे, घुँघराले बाल, शहर का जाना-माना खिलाड़ी और टेनिस का चैम्पियन, अनेक व्यायाम समितियों और खेल-कूद परिषदों का सदस्य, बिगड़े दिमाग़ का और आवारा, जिसमें माँ के दर्प के साथ सब कुछ के प्रति एक अजीब जानवर-सी उदासीनता मिली हुई थी। उसका सुन्दर रूप उसे किससे मिला था यह कोई नहीं जानता था। उसका नाम था मिहाइलो। माँ उसे मिशेल पुकारती थी, दोस्तों ने उसे टिगार (बाघ) नाम दे रखा था और बेलगराद के समाज में या खेल-कूद प्रेमी जनता में वह इसी नाम से प्रसिद्ध था। और उसकी आँखों की पुतलियों में एक पीली चमक इस नाम को सार्थकता भी देती थी। कुछ-कुछ अपनी माँ की तरह, जो इतनी मोटी हो जाने से पहले अपनी आँखों और अपनी अप्रत्याशित तेज़ हरकतों के कारण गर्म प्रदेशों के किसी बड़े गेहुँअन साँप की याद दिलाती थीं।

यह सुन्दर और अत्यन्त आत्म-केन्द्रित युवक, जिसका न कोई खास पेशा था न समाज में कोई विशेष स्थान, जिसमें न कोई नैतिक भावना थी और न रत्ती भर वह चीज़ जिसे उसका पिता 'मानवीय संवेदना' कहता, एक मात्र जीवित व्यक्ति था जो मदाम मार्गरीटा की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ जा सकता था, यहाँ तक कि मदाम मार्गरीटा का बचाया हुआ अंतिम पैसा तक उससे ले सकता था।

उसकी फ़िज़ूलख़र्ची और आवारगी पर उसकी माँ बिगड़ती थीं, उसे फटकारती थीं और कभी उस पर बुरी तरह बरस पड़ती थीं, लेकिन फिर भी किसी बात के लिए न नहीं कर सकती थीं। और अंत में उसकी हर हरकत क्षमा भी कर देती थीं।

जो हो, उस घर में जो कुछ होता था वह माँ-बेटे के बीच ही होता था। दोनों मिल कर पिता की तो हर मामले में संपूर्ण उपेक्षा ही कर देते थे। जेको कभी कुछ कहता-कहता भी रुक जाता था क्योंकि उसे ख़ुद अपने विचार बेकार, अर्थहीन और बेवक़ूफ़ी भरे लगने लगते थे। यों उसका वेतन, जो वह लाकर समूची गृहस्थी के लिए दे देता था, नगण्य नहीं था, लेकिन इससे भी घर में उसकी इज़्ज़त बढ़ती नहीं थी। कभी बहुत ज़रूरत होने पर उसे लाचार मार्गरीटा से अपना ही पैसा माँगते हुए भी बड़ी झिझक होती थी इस डर से कि कहीं वह साफ़ जवाब न दे दे।

तो खरगोश इसीडोर, काला साँप मार्गरीटा और बाघ मिहाइलो का परिवार उस छः मंज़िली इमारत के किरायेदारों को इसी रूप में दीखता था। कुनबे को सब किरायेदार 'चिड़ियाघर' कहते थे, और हर नया किरायेदार फ़्लैट की चाबियों और मार्गरीटा की अनगिनती निर्मम शर्तों के साथ ही यह नाम भी स्वीकार कर लेता था। लेकिन सच्चाई यह है कि किसी भी परिवार का असली जीवन न तो उतना जटिल होता है न उतना सरल जितना वह पड़ोसियों को दीखता है या जैसा उसे पड़ोसी बखानते हैं। थोड़ी-सी भी बदली हुई परिस्थिति में परिवार के लोग भी और उनके आपसी सम्बन्ध भी एक बिल्कुल दूसरी रोशनी में दीखने लगते हैं, और यह रोशनी उन्हें पड़ोसियों के परिचित रूप से बिल्कुल भिन्न रूप में दिखाने लगती है।

सड़क पर हमारे पास से गुज़र जाने वाले और बहुत-से लोगों की तरह इसीडोर कटानिच भी जितना वह दीखता था उससे कहीं अधिक भला भी और दुःखी भी था। हाँ, शक्ल-सूरत से दुःखी दीखने पर भी वह उससे कहीं अधिक दुःखी था। वास्तव में वह उन लोगों में से था जिनका जीवन जितनी ही तेज़ी से वह अंत की ओर बढ़ता जाता है उतना ही अपने आरम्भ से बेमेल दीखने लगता है।

बचपन में वह बड़ा प्रतिभाशाली बालक समझा जाता था : तेज़ आँखें,

भरे सुन्दर ओठ, अच्छी स्मरणशक्ति और एक अत्यंत सुरीला गला जिसे उसका संगीत-शिक्षक 'देवता का-सा' कहा करता था। हाई स्कूल में भी वह उन गिने-चुने लड़कों में से था जो अपने अध्यापकों का भी और अपने सहपाठियों का भी प्यारा था। स्कूल की साहित्य-सभा में वह अपनी कविता और गद्य दोनों सुनाता था और दोनों में एक गम्भीर उदीयमान प्रतिभा दीखती थी। प्यानो बजाने में भी वह कुशल था और चित्रकला में और भी कुशल। वास्तव में उसकी विशेष प्रतिभा चित्रकला में ही थी लेकिन सन् उन्नीस सौ आठ में जब आस्ट्रिया के बोस्निया और हर्जेगोविना पर कब्ज़ा करने के बाद से संकटों का आरम्भ हुआ और बेलग्राद के जीवन में उथल-पुथल मच गयी, तब विद्यार्थियों का जीवन भी अव्यवस्थित हो गया। इस प्रतिभाशाली लड़के के जीवन पर इस उथल-पुथल की चोट ठीक उस समय हुई जब उसके ये सारे गुरुमंत्र समन्वित हो सकते थे। उसके साथी जैसे कर्म और अध्ययन से गप्पबाज़ी और आवारागर्दी को अधिक पसंद करते थे, और अपने को ठीक-ठीक अभिव्यक्त करने का कोई तरीका न जानते थे, न खोजते थे, उन्हीं का अनुकरण वह भी करने लगा। मैट्रिक तो उसने जैसे-तैसे कर लिया लेकिन उसके बाद से ही उसे वह भीतरी शून्य सताने लगा जिसमें और आसपास की चहल-पहल और तेज़ ज़िन्दगी में एक अजीब और बड़ा दुःखद विरोध उसे दीखता था। उसे ऐसा जान पड़ने लगा कि चित्रकला, कविता और संगीत की सब प्रतिभाएँ उसके भीतर कहीं उलझ गयी हैं जैसे धरती के नीचे मीठे पानी के सोते कहीं मिलें और किसी अदृश्य टूटन में डूब कर सूख जायें। उसके पेंसिल और क़लम के रेखाचित्र न केवल उसके स्कूल के साथियों में प्रसिद्ध थे जिन्होंने अपनी पत्रिका में 'युवा कलाकार के हल्के स्पर्श और सुघड़ रेखा' की प्रशंसा की थी, बल्कि पेशेवर चित्रकारों में भी प्रसिद्ध थे। लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, यह 'सुघड़ रेखा' स्वयं उसी के लिए कम स्पष्ट और अर्थवान् होती गयी और उसकी धारणा पक्की होती गयी कि उसके रेखाचित्रों की सारी प्रशंसा ग़लत थी, ठीक वैसे ही जैसे एक ज़माने की उसके संगीत-शिक्षक द्वारा उसकी संगीत-प्रतिभा की प्रशंसा ग़लत थी। अंततः जब आगे पढ़ने का सवाल उठा तब उसके पिता को, जो पहले ही कला सम्बन्धी हर बात को संदेह की दृष्टि से देखता था, उसे क़ानून पढ़ने के लिए मजबूर कर देने में विशेष कठिनाई नहीं हुई। जवान

इसीडोर सब कुछ एक स्वप्न-से में करता गया मानो इन सब बातों का अब उसके जीवन और उसके भाग्य से कोई सम्बन्ध ही न रहा हो। एक ओर अपने में विश्वास खोकर और दूसरी ओर अपने आसपास के जीवन को समझना असंभव पाकर वह क़ानून विद्यालय में उसी ग़ैर ज़िम्मेदारी भाव से जा भर्ती हुआ जैसे कोई एक दिन एकाएक उठकर विदेशी सेना में भर्ती होने चला जाय।

उसने अपनी नई पढ़ाई शुरू ही की थी कि १९१२ के शरत् में पहला बालकन युद्ध शुरू हो गया। इसीडोर कटानिच का भीतरी सूनापन एकाएक समाप्त हो गया : वह भर्ती हो गया और फिर एक व्यापक उत्साह की प्रेरणा पाकर इस विश्वास में डूब गया कि युद्ध में उनका पक्ष न्याय और सत्य का पक्ष है। लेकिन जवानी और उत्साह युद्ध की बर्बरता को नहीं छिपा सकते और वह सोचने और सवाल पूछने को फिर बाध्य होता रहा। युद्ध में क्रियात्मक भाग लेने का अवसर उसे थोड़ा ही मिला क्योंकि उसे बार-बार टाइफ़स ज्वर का शिकार होना पड़ा। बेलगराद लौटने तक वह बहुत दुबला और गंजा हो गया था। थोड़े दिन घर रहने पर धीरे-धीरे उसके बाल फिर उग आये, नवजात शिशु की तरह बारीक और नरम। सुधरते स्वास्थ्य के साथ जीवन का एक आनन्द भी उसमें फिर से जागने लगा, जो कुछ उसके सामने था उस सबके लिए एक हल्की-सी कृतज्ञता की भावना, यहाँ तक कि छोटी से छोटी चीज़ भी उसके इस कृतज्ञ भाव को जगा देती थी।

उसकी यह मनस्थिति बहुत दिन रही और इसके कारण युद्ध और हार-जीत की बातों का गम्भीरतर चिंतन टलता रहा। मार्गरीटा से उसका परिचय हुआ तो वह इसी मनःस्थिति में था और तब से हर काम और हर विचार मार्गरीटा से ही जुड़ गया। प्रेम के आवेग ने उसे एक रोग की तरह जकड़ लिया और जो दबे हुए राग कविता, संगीत और चित्रकारी में अभिव्यक्ति नहीं पा सके थे सब इसके साथ जुड़ गये।

उन्नीस सौ तेरह के शरत्काल में उसने शाही फ़रमानों के दफ़्तर में इस आशा के साथ नौकरी कर ली थी कि अगले बरस विश्वविद्यालय में अपनी आख़िरी क़ानूनी परीक्षा दे सकेगा। लेकिन यहाँ उसे काम मिला किताबत का ही : तमगों के साथ की जाने वाली प्रशस्तियों में नाम आदि लिखने का काम। उसके हाथ के [illegible] थे और आद्याक्षरों का रंजन

ग्रौर ग्रलंकरण भी वह बड़े सुन्दर ढंग से कर सकता था, जिससे कि दफ़्तर के उच्च ग्रधिकारी, कर्नल, दरबार के सहायक सभी प्रसन्न थे।

उसके कमरे से ग्रपनी सैनिक वर्दियों में ग्रकड़ से गुज़रते हुए सैनिक ग्रधिकारी हाथ में चाबुक लिये ग्रौर सीने पर तमगे सजाये हुए, युद्ध से नये-नये लौटे होने के कारण सधे पैरों से चलते ग्रौर ग्रपने कोटों के लाल गुलूबन्द के ऊपर से मुस्कुराते हुए ग्रक्सर कहा करते : यह छोटा-सा ग्रादमी मानो दीखता ही नहीं, लेकिन वह है, ग्रौर है खूब···

ग्रौर ज़ेको एक के बाद एक फ़रमान ग्रौर विज्ञप्ति पर ग्रलंकृत सुलिपि में ग्रक्षर लिखता हुग्रा मानो एक सपने में ग्रपनी क़लम की बारीक रेखाग्रों का ग्रनुसरण करता हुग्रा चला जा रहा था। उसे यह कभी ध्यान भी नहीं होता था कि यही किसी ग्रादमी का एक मात्र पेशा या कि ग्रच्छी ग्रामदनी का साधन भी हो सकता है। लेकिन उसके मामले में ठीक ऐसा ही होता जा रहा था।

ग्रप्रैल में बहुत दिनों के ग्रनिश्चय के बाद मार्गरीटा ने ग्रंत में उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बूढ़े मिल-मालिक ने ग्रच्छा-ख़ासा दहेज दिया ग्रौर पितावत् ग्राशीर्वाद भी, लेकिन इसीडोर कटानिच को दोनों में से किसी चीज़ का खास मोह नहीं था। उसने मिल-मालिक का हाथ चूमा, लेकिन उन दिनों तो वह सारी दुनिया का हाथ उसी तरह चूम ले सकता था।

फिर उसके बाद से वह स्थिति ग्रा गयी जिसकी चर्चा लोग बहुत कम करते हैं लेकिन जिससे कष्ट वे सबसे ग्रधिक पाते हैं। शुरू से ही शादी का सच्चा रूप उनके सामने ग्रा गया : एक तरफ़ से बड़ा भारी भ्रम ग्रौर दूसरी तरफ़ से बड़ा भारी धोखा।

लेकिन तभी एक ग्रौर भी घटना घटी जिसकी बात ज़ेको ने कभी नहीं सोची थी। सन् १६१४ का महायुद्ध।

ग्रपनी पीढ़ी के लोगों के साथ ही उसे भी सेना में भर्ती होना पड़ा।

निर्वासन के तीन वर्षों में ज़ेको तारान्तो, कार्फ़ू ग्रौर तूलौन में रहा—एक तूफ़ानी ग्रौर डरावने युग में एक उपेक्षित छोटी-सी इकाई। उसने बेलगराद में ग्रपनी पत्नी से सम्पर्क करने की बहुत कोशिशें कीं किन्तु सब व्यर्थ हुईं। बाप की सिर्फ़ एक चिट्ठी उसे मिली लेकिन इसमें न तो ज़ेको की स्त्री का कोई उल्लेख था न उनकी संतान का। जब उसने दुबारा इनके बारे में पूछा तो उसे

कोई जवाब नहीं मिला; इसके बदले पिता के पड़ोसियों से, जिनसे उसके परिवार का परिचय भी बहुत नहीं था, एक चिट्ठी यह सूचना लायी कि बूढ़े कटानिच की मृत्यु उसी तरह चुपचाप अकेले में हो गयी जिस तरह उसका सारा जीवन बीता था। १९१८ की गर्मियों में जाकर ही ज़ेको को पत्नी की एक चिट्ठी मिली जिसके अनेक आँसू भरे और पढ़े न जा सकने वाले शब्दों में से किसी तरह वह इतना अर्थ पा सका कि 'बेटा मिहाइलो पिता को बहुत-सा प्यार भेजता है।'

जनवरी १९१९ में बेलगराद लौटने पर ज़ेको ने पुरानी मार्गरीटा का खंडहर ही पाया, और उसके साथ एक हृष्ट-पुष्ट पिंगल केशी चार बरस का लड़का भी। ऐसे समय में भी, जब इतनी बहुत असाधारण अचरज भरी अविश्वसनीय घटनाएँ हो रही थीं, ज़ेको को यह परिवर्तित स्थिति स्वीकार करने में बड़ा कष्ट हुआ। बात सिर्फ़ बढ़ती हुई उम्र या शारीरिक परिवर्त्तन की ही नहीं थी; मार्गरीटा ढीली हुई और बिखरी हुई जान पड़ती थी और उसकी हरकतों में एक अजीब तेज़ी और तीखापन आ गया था और एक ख़तरनाक बड़बोलापन भी उसमें आ गया था।

जो लड़की मार्गरीटा वह छोड़ कर गया था उसके बदले यह औरत मार्गरीटा उसे मिली, और उसके साथ मिली मार्गरीटा की कहानी जिसमें दुश्मन के अधिकार के समय की दूसरी कहानियों की तरह दुःखद सच्चाइयों और घटिया झूठों की ऐसी खिचड़ी थी जिसके दाने अलग नहीं किये जा सकते थे। पतिविहीन होकर मार्गरीटा को बड़ा कष्ट भोगना पड़ा और फिर यह जान कर कि वह गर्भवती है उसका कष्ट और भी बढ़ गया। बूढ़े मिल-मालिक को आस्ट्रियनों ने उन दिनों नज़रबन्द कर रखा था। सूने बेलगराद में अपने को अकेला पाकर वह सावा नदी के पार ज़ेमून में अपने एक रिश्ते के भाई के पास रहने चली गयी। वहीं लड़के का जन्म हुआ। वह तो यही समझ रही थी कि बेटा अनाथ है, क्योंकि पति का कोई पत्र उसे बहुत दिनों से नहीं मिला था। संयोग से कुछ समय बाद ही मिल-मालिक को नज़रबंदी से छोड़ दिया गया और उसी की कृपा से बच्चे को साथ लिये वह जीवित रह सकी। इसके कोई सालभर बाद वह बेलगराद लौटी और उसके बाद कहीं जाकर उसे पति का कुछ समाचार मिला।

यह सारी कथा मार्गरीटा ने सुनाई जिसके साथ बहुत-सी उपकथायें भी

जुड़ी हुई थीं। उसी ने अब युद्ध की समाप्ति के बाद ज़िन्दगी बिताने की कई योजनाएँ भी पति के सामने रखीं।

सच बात यह थी कि ज़ेको को मार्गरीटा के युद्धकालीन जीवन के और भी कई समाचार मिलते रहे थे। पांचेवो से उसकी दो बूढ़ी चचेरी बहिनों ने मार्गरीटा के युद्धकालीन जीवन का कुछ दूसरा ही चित्र प्रस्तुत किया था। उनका कहना था कि आस्ट्रियाई अधिकार के दौरान मार्गरीटा का आचरण 'ऐसा नहीं था कि उससे हमारे खानदान की प्रतिष्ठा बढ़े।' उन्होंने ज़ेमून स्थित एक सैनिक पूर्त्ति अधिकारी का उल्लेख करते हुए इस पर भी संदेह प्रकट किया था कि बच्चे का वास्तविक पिता कौन है, क्योंकि उसका बपतिस्मा तो १६१५ के जून महीने में ही हुआ था और जन्मों के खाते में उसका जन्म इसके बाद ही १६१५ की जनवरी के नीचे दर्ज कराया गया था। बूढ़ा कटानिच जीवित होता तो शायद कुछ और विश्वसनीय समाचार दे सकता लेकिन वह तो यों भी बहुत कम बोलता था।

पांचेवो वाली कथा पर मार्गरीटा की बड़ी ज़बरदस्त प्रतिक्रिया हुई, लेकिन उसमें कोई संकोच नहीं था मानो इस संघर्ष में उसे मज़ा आ रहा हो। उसका दावा था कि वो सचमुच एक उत्पीड़िता है, कि बच्चे का जन्म सचमुच १६१५ की जनवरी में हुआ था जिसका लिखित प्रमाण मौजूद है, कि जन्म के बाद महीनों तक वह खुद जीवन और मरण के बीच मँडराती रही और यों भी उस काल में किसी को होश नहीं था कि कब क्या करना चाहिए, कि बपतिस्मा इसीलिए जून में कराया गया। लेकिन अक्सर तो अपनी सफ़ाई में वह ऐसे ही या इससे भी कहीं भयानक आरोप पंचेवो वाली अपनी अविवाहित प्रौढ़ा ननदों पर लगा दिया करती थी।

दोनों ओर से आकर उस पर टूटती हुई इन भयानक लहरों के बीच खड़ा ज़ेको न साँस ले पाता था न कुछ साफ़ देख पाता था। और इसके अलावा और भी कई दिशाओं से और किनारों से कई लहरें आकर उस पर टूट रही थीं। उसके आसपास सब कुछ बदल गया था, टूट गया था और उथल-पुथल में था; पहले ही बहुत बड़ी दुनिया से घबराकर लौटे हुए आदमियों के लिए यह सब और भी घबरा देने वाला था। शरणार्थी जीवन ने उसके सामने का क्षितिज तंग और धुँधला कर दिया था और उसकी विवेक-शक्ति नष्ट कर दी थी। ज़ेको में अभि-

मान या संकल्पशक्ति और अधिक होती तो वह पांचेवो वाली बहनों के आरोप की सच्चाई की पुष्टि दूसरी जगह से भी कर सकता था। लेकिन यह ज़माना थकान का और अर्धसत्यों के स्वीकार का ही था; ऐसा ज़माना जिसमें सत्य का आग्रह, जो कि मनुष्य की जीवनी शक्ति की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है और आत्म-सम्मान का एक विशेष रूप है, ज़ेको जैसे आदमियों में अक्सर शिथिल हो जाता है।

शुरू में तो उसे यह अकल्पनीय लगा कि यह स्त्री उसकी पत्नी और यह स्थान उसका घर हो सकता है, कि वह अब से यहीं बसेगा, यहीं खाये-पीयेगा, और अपनी बाक़ी ज़िन्दगी यहीं गुज़ारेगा। लेकिन हुआ ठीक यही।

बूढ़े मिल-मालिक ने भी कुछ सहायता की। वह मानो युद्ध से बिल्कुल नहीं बदला था, वैसा ही शांत और अविचल दीखता था मानो अपने कारोबार और सम्पर्क की ऊँचाई से सब पर करुणापूर्वक मुस्कुरा रहा हो।

लेकिन मार्गरीटा की बहन मारिया से और भी आत्मीयता पाई। युद्ध से पहले मारिया एक शर्मीली बल्कि डरपोक छोटी लड़की थी, अब वह बहुत विकसित हो गयी थी—केवल शरीर से उतना नहीं जितना अपने बर्ताव और ढंग में। घने और नमी के कारण हमेशा चमकते रहने वाले काले बालों से घिरे हुए पीले चेहरे में जड़ी हुई गहरी पर चमकीली आँखों वाली यह युवती सदा प्रसन्न रहती थी। उसकी शांत मुस्कुराहट और सद्भावना भरा युवा उत्साह उसके स्वभाव को उसकी बहन से बिल्कुल अलग कर देता था। युद्ध के बाद के पहले वर्ष में जो सबसे अधिक संकट और यंत्रणा का वर्ष था मारिया उन्हीं के साथ रही। मारिया की दोस्ती से ज़ेको को अपने पारिवारिक जीवन में ऐसा कुछ मिला जिसे सुख कहा जा सके।

लौटने के कुछ दिन बाद ही ज़ेको ने शाही फ़रमानों वाले दफ़्तर में अपना पुराना वाला काम फिर शुरू कर दिया। सब कुछ अब पहले से कहीं बड़ा हो गया था—काम, पद, वेतन, सब। जैसे बेलगराद नगर बढ़ और फैल रहा था, वैसे ही सब कुछ बढ़ और फैल रहा था—बड़ी तेज़ी से और बिना किसी प्रकार की व्यवस्था के।

दो वर्ष बाद बुड्ढा कारखानेदार चल बसा और मार्गरीटा के लिए और चीज़ों के साथ रहने को वह पँचमंज़िला मकान भी छोड़ गया जिस पर उस वक्त

काम जारी था, काम पर लगे इंजीनियरों में से एक को मारिया भा गयी और उसने तुरन्त उससे विवाह का प्रस्ताव कर दिया।

वह वश्का का रहनेवाला सीधा-सादा भलामानस था, सीधा इतना कि बुद्धू कहा जाए, लहीम-शहीम इतना कि जैसे दैत्य हो। लम्बाई में वह दो मीटर से सिर्फ़ दो सेंटीमीटर कम था मगर यह कसर उसके चौड़े विशाल कंधों, फुर्तीले डगों और चौड़े मेहनती हाथों से पूरी हो जाती थी। वह कोई असाधारण शिल्पी न था, संसार उसका सीमित था। नाम था युवान डोरोश्की और डोरोश-डोरोश कह कर पुकारा जाता था।

मारिया जब अपने पति के साथ शबात्स जाने लगी तो ज़ेको सचमुच दुःखी हुआ किन्तु वह प्रसन्न भी था।

अब वह मार्गरीटा और उस अपने लड़के के मध्य अकेला रह गया जिसकी वल्दियत अब भी उसे स्पष्ट नहीं थी।

युद्धोत्तर दारिद्र्य से उबर कर, अच्छी आय देने वाले विशाल भवन की मालकिन बन कर और कतर-ब्योंत और दुआ-सलाम के सहारे अपनी पूँजी बढ़ाकर मार्गरीटा ख़ुद भी पसरने और गरुआने लगी। वह दबंग और रोबीली होती गयी और अंततः उस रूप को प्राप्त हो गयी जो इमारत भर में और पड़ोस में काला साँप के नाम से विख्यात था।

उसके अलँग उसका लड़का भी बड़ा हो रहा था और माँ-बाप, संगी-साथी और पढ़ाई-लिखाई सहित सारी दुनिया की तरफ़ से अजब तरह की लापरवाही दिखा रहा था। पहले तो वह फ़ुटबाल का खिलाड़ी बना, फिर टेनिस का चैंपियन हो गया और आख़िरकार एक पक्का आधुनिक बेलगरादि छैला बनकर ही माना।

इस बीस बरस में बेलगराद बढ़कर एक विशाल असाधारण नगर हो गया और ज़ेको का घर एक 'चिड़ियाघर' बन गया। उधर ख़ुद उसने अपना मन घर और समाज के प्रति ऐसा विचित्र कर लिया जैसा हम पहले बता चुके हैं।

उन दिनों के जीवन पर कुछ कहना आसान काम नहीं है, विशेष रूप से ज़ेको की तरह के व्यक्ति के विषय में, जिसने ज़िंदगी को दिया भी बहुत कम और उससे पाया भी बहुत कम हो। उन दिनों बेलगराद में—सम्मान और संस्कार से हीन जीवन की व्यर्थता को न पहचानते हुए उसके जैसे बहुत-से लोग रहते थे।

इनमें से बहुतेरे कभी संकट में नहीं पड़े; लेकिन इसीडोर कटानिच पड़ा।

स्वभाव का दब्बू, ज़ेको जाने कब तक इन्हीं परिस्थितियों में पड़ा रहता लेकिन समय बीतने के साथ मार्गरीटा अपने पर और अपने लड़के के उद्वेगों पर नियंत्रण में काफ़ी असमर्थ हो गयी। ज़ेको के मन में अनेक उपाय आये। उसने तरह-तरह के अकरणीय हल और असम्भव रास्ते सोचे। उसने सोचा, सब कुछ छोड़ चलूँ और शहर के छोर पर कहीं अकेला रहने लगूँ; भाग कर इतनी बड़ी दुनिया में खो जाऊँ; कोई हंगामा खड़ा करके विवाह-विच्छेद कर दूँ। हर उपाय उसने तोला फिर परे सरका दिया और उसके लिए यह गुत्थी बनी ही रही कि ऐसा परिवार कैसे हो सकता है जिसमें न माँ में कोई सभ्य मानवीय लक्षण हो न बेटे में—कम से कम उस पहलू में तो नहीं ही जो वे ज़ेको को दिखाते थे।

दफ़्तर में भी उसकी दशा कुछ बेहतर न थी। ज़ेको उस प्रकार का व्यक्ति था जिसका घर में जैसी जगह होती है वैसा ही बाहर बन जाती है। दफ़्तरवाले उसके शिल्प-कौशल का उपयोग करते पर मनुष्य के रूप में उसकी अनदेखी कर जाते। शाही फ़रमान विभाग का बुड्ढा चपरासी कुछ आश्चर्य, कुछ दया से कहता, "इन ज़ेको महाशय को कोई कुछ नहीं समझता—कोई भी नहीं," और जब इस शहर में कहा जाता है कि कोई कुछ नहीं समझा जाता तो बहुधा उसका अर्थ होता है कि वह हर किसी के पाँवों से रौंदा जाता है।

दफ़्तर के बाहर भी यही हालत थी। अपने घर में अकेला और अपमानित वह कोई वस्तु, कोई व्यक्ति, कुछ भी ढूंढ़ रहा था जिससे अपना नाता जोड़ सके। वह क़हवाघर जाने लगा जहाँ उसके सहकर्मी प्रतिदिन विशिष्ट मेज़ों पर इकट्ठे हुआ करते थे, परन्तु उसने पाया कि वह वहाँ का भी नहीं है। यह अनुभव उसे सालने लगा कि वे कभी उससे बोलते नहीं—मज़ाक़ तक नहीं करते, यह भी कि उसे स्वयं कुछ नहीं कहना था और अगर उसने कभी कुछ कहा भी तो किसी ने सुना नहीं : अकेलेपन के क्षणों में उसने याद किया कि किसी समय वह चित्र आँका करता था : अपनी कविताएँ तक उसे याद आयीं और भी सब याद आया—उसका वह दिव्य स्वर भी। मगर कला का यह संसार उसके लिए मुद्दत हुई बंद हो चुका था; और जगहों की तरह यहाँ से भी वह निकाल फेंका गया था।

उसकी युवावस्था की एक ही चीज़ उसके पास बच रही थी—पढ़ने की लत। किंतु उसका पढ़ना भी बहुत समय से अस्थिर और आकस्मिक रूप में ही हो रहा था। बहुत-से लोग शांति और एकांत की खोज में ही पढ़ते हैं उन्हीं की भांति वह भी ख़ास-ख़ास किताबें ही पढ़ना चाहता और बड़ी मुश्किल से उसे ऐसा साहित्य मिल पाता जो उसके अपने वास्तविक जीवन से उसे दूर ले जा सके।

इस प्रकार यह अंतिम द्वार भी मानो अपने सामने उसे बंद होता दिखायी देने लगा।

२

१६३० के आसपास एक वक्त आया कि ज़ेको की दशा हीन से हीनतर हो गयी। मार्गरीटा की शक्ति का उस समय चरमोत्कर्ष था। उसका पुत्र लूमड़, तगड़ा टिगार वक्त से पहले जवान होने के लक्षण दिखाने लगा था और उसकी बढ़ती हुई उद्दण्डता से जीवन का दुःख और भी दुःसह हो चला था। उस समय ज़ेको का वज़न सिर्फ़ एक सौ दस पौंड रह गया था। बात करता तो आँखें पनीली हो जातीं, हाथ काँपने लगते। उसकी बदहवासी उसकी किताबत में भी झलकने लगी। वह समाज से भागने और काम से डरने लगा। मार्गरीटा और टिगार उसे जीवन से काँछ कर फेंक देना चाहते हैं। ज़ेको के मन में आत्महत्या का विचार जागा।

यह कलुषित विचार जो तीसरे दशाब्द के समृद्ध बेलगराद को विषाक्त कर रहा था, ज़ेको का सतत सहचर और एकमात्र संतोष बन गया। उसमें स्वास्थ्य और विवेक का जो भी अंश था वह आत्महत्या का विरोध और इस विचार की निश्चित रूप से भर्त्सना करता। परन्तु उसकी दुर्बलता और निराशा गुरुतर थी और वह उसे आत्महत्या की ओर खींचे ही लिए जाती। इस आदमी में स्वाभिमान और संतुलन की जो अक्षय भावना थी वह उसे संसार से पलायन

की कोई शालीन युक्ति खोजने को विवश कर रही थी—ऐसी युक्ति हो जिससे न फ़ज़ीहत हो न तमाशा बने, वह अपने पागलपन में अपने आप से कहता।

यह जीवन समाप्त कर देने की धुन में डूबा हुआ मृत्यु के सबसे सुगम और निराडम्बर उपाय की खोज में वह सावा नदी के तट पर रेल पटरी के किनारे-किनारे घूमने लगा। उसे मृत्यु नहीं मिली, नदी मिली और मिली नदी की अद्‌भुत जीवन-लीला।

मई के एक दिन उस ऊबड़-खाबड़ नदी तट पर जहाँ आड़े-तिरछे घरों और झोपड़ों, बेड़ों और बजरों की बेतरतीब क़तार लगी हुई थी घनी निराशा के क्षणों में घूमते-घूमते उसे एक पुराना परिचित एक जर्जर उलटी डोंगी पर बैठा हुआ दिखायी दिया। उसका नाम था माइका जार्जेविच,—सेना-कप्तान—प्रथम श्रेणी—अवकाश प्राप्त। ज़ेको ने उसे १९१२ के युद्ध में युवा सेकण्ड लेफ़्टिनेंट देखा था और फिर एक बार १९१५ में तूलौन में उससे भेंट हुई थी। युद्धान्त के बाद भी एक-दो बार ज़ेको ने उसे देखा था पर इतना ही जान पाया था कि वह न जाने क्यों सेना छोड़ गया है। अब देखा कि वह धूप में तपी नंगी पीठ लिए सावा में मछली मार रहा है। ज़ेको उसकी बग़ल में बैठ गया और दोनों में बातें होने लगीं।

कप्तान माइका ठिगना हृष्ट-पुष्ट आदमी था, उसकी गोल खोपड़ी हमेशा घुटी रहती थी और उसकी काली आँखों में एक अजब तरह की चमक पायी जाती थी। सेना में लड़ाकू प्रथम श्रेणी का कप्तान रह कर और साठ प्रतिशत अपाहिज होकर वह युद्ध के बाद तुरंत अवकाश प्राप्त सूची में रख दिया गया था। अब वह सेन्याक में किसी जगह एक कोठरी में रहा करता था।

"सच पूछो तो यार, मैं सावा के बूते जीता हूँ—इसी पानी और इन्हीं लोगों के साथ।"

ज़ेको ने, जो अब तक अपने ही ख़्यालों में डूबा हुआ था और कुछ और देख नहीं पाया था, चारों तरफ़ आँखें खोलकर निहारा। वाक़ई नदी-तट पर स्नान करनेवालों, मज़दूरों, मछुओं, आवारों, और न जाने कहाँ से आये और न जाने क्या करनेवालों की चहल-पहल थी।

ज़ेको दूसरे दिन फिर आया और कप्तान माइका वैसी ही दरियादिली के

ग्रालम में उसी जगह बैठा हुग्रा था जैसे कोई बुत कहीं बिठा दिया जाये।

"भइया, मैं बादशाह की तरह रहता हूँ।" कप्तान माइका उससे कहने लगा; 'बादशाह' पर उसने मसखरेपन के साथ ज़ोर दिया ग्रौर हाथों से बादशाहत का ख़ाका खींचा। "कोई मुझे नहीं छेड़ता। कैसा भी मौसम हो मैं यहीं सावा पर, मछली फँसाता मिलूंगा। इससे न तो मछलियों का कुछ बिगड़ता है न मेरा ही कुछ भला होता है ग्रौर यों यह कारोबार जारी रहता है। लेकिन इन लोगों से, नटी तट के इन लोगों से मेल-जोल हो जाता है। इस तट पर मैं एक-एक बजरा, एक-एक घाट, एक-एक बेड़ा, एक एक झोंपड़ी ग्रौर एक-एक ढाबा पहचानता हूँ। यहाँ खाना खाया, वहाँ ताश की बाज़ी खेली ग्रौर एक ग्रौर जगह झपकी ले ली। शाम को खाने को मछली रहती है ग्रौर उसके साथ थोड़ी-सी दाल। इसमें कोई फ़र्क नहीं ग्राने दे सकता। हर साल सात-ग्राठ महीने यों ही गुज़ारता हूँ। पतझड़ ग्राता है तो कुछ दिन के लिए गाँव हो ग्राता हूँ। वहाँ भी ऐश है। वसंत में बेल्गराद लौट ग्राये ग्रौर इसी सावा के हो लिये। बस फिर पतझड़ तक की फ़ुरसत।"

यों कप्तान माइका बोलता रहा, कभी कभी ज़ोर-ज़ोर से तमाम ब्योरा बताकर ग्रपने निठल्लेपन ग्रौर बेफ़िक्री का गुन गाता रहा मगर ज़ेको का ध्यान इसपर नहीं गया लेकिन एक पुराने साथी पाने पर उसे ख़ुशी थी जो उससे हँसने-बोलने को तैयार था ग्रौर जो जीवन का ज़िक्र उमंग के साथ करता था। वह न तो ठीक-ठीक जानता था कि यह जीवन किस प्रकार का है न वह समझ पाया था कि सावा में ऐसा क्या जादू है। वह इतना ही जान रहा था कि वह एक स्वस्थ ग्रौर संतुष्ट दीखनेवाले व्यक्ति के ग्रामने-सामने है। उसे एकाएक ग्रपनी ज़िदगी की ग्रौर जो चीज़ उसे यहाँ खींच लायी थी उसकी याद ग्रायी ग्रौर कप्तान माइका ने मानो उसे ताड़ लिया; उसने उसके कंधे पकड़कर उसे झकझोर दिया।

"ग्रौर तुम तो भाई, बहुत ही घट गये। मोटे तो ख़ैर कभी नहीं थे लेकिन ग्रब तो ग्रधिया गये हो" कप्तान माइका ऊँचे स्वर में बोला (शायद ज़ोर से बोले बग़ैर वह कुछ कह ही नहीं सकता था।)

ज़ेको का गला रुँध गया, ग्राँखें छलछला ग्रायीं ग्रौर पहली बार उसका जी हुग्रा कि ग्रपने जीवन के बारे में खुल कर बोले मगर उसके ग्रंदर का संकोच इस इच्छा से ज़्यादा बड़ा साबित हुग्रा ग्रौर वह भुनभुना कर रह गया:

"तुम तो ख़ुद ही समझते हो···मेहनत, परेशानियाँ···हर एक की यही···"

"बस रहने भी दो यार, यह हर एक की न कहो, गोया कि तुम हर एक में हो। जाने दो उनको जहाँ जाते हों और तुम एक डगैन ले आओ, साथ में कई काँटे लाना। और यह कलफ़दार कालर और चारजामा उतार फेंको और यहाँ मेरे पास बैठ जाओ—बल्कि पास नहीं कुछ खिसक के बैठो नहीं तो इन गधों की तरह तुम भी मेरी मछलियाँ हँका दोगे। बैठो तो यहाँ और मैं कहता हूँ कि हफ़्ते भर में देखना यह धूप और यह पानी तुम्हें क्या से क्या बना देगा—आदमी· बन जाओगे आदमी, समझे। अक़्लमंद जो हैं वे सावा पर ही रहते हैं; मेरा कहा मानो! और वह वहाँ···" यह कहकर उसने एक पर एक गँजे हुए अजब से ख़ाकी रंग के मकानों के ढेर की तरफ़ ऊँगली उठायी, जो बेलग-राद का केंद्र था, पर वह बोला कुछ नहीं, उसने सिर्फ़ नदी में थूक दिया।

ज़ेको लौटकर फिर नदी पर आया, इसलिए नहीं कि कप्तान माइका ने कहा था—वह तो ज़ेको को हमेशा अजब-सा लगता था—बल्कि इसलिए कि उसके भीतर जो भी था नदी की तरफ़ उसे खींचे ला रहा था। तभी जब वह उस दिन बेड़े पर माइका के पास बैठा था तो वह अपने को इस सावा नामक पागलपन से अलग नहीं कर पा रहा था।

कहने की ज़रूरत नहीं कि मार्गरीटा ने उसका विरोध किया।

"तुम्हें हो क्या गया है! बुढ़ापे में मछुओं की संगत करोगे? सठिया गये हो।" फुंकारती हुई मार्गरीटा बोली जो किसी की ख़ुशी नहीं देख सकती थी। "जुआरियों और लफंगों के बीच किसी शरीफ़ आदमी को सावा पर जाते देखा है तुमने?"

यह औरत हर चीज़ में किस तरह खुरपेंच करती है और कैसे ज़बान चलाती है? जाने कहाँ से इसमें यह मर्ज़ आया? ज़ेको सोचने लगा। लेकिन यही तो वह बरसों से सोच रहा था और किसी नतीजे पर पहुँच नहीं पा रहा था। फिर उन दोनों में डगैन ख़रीदने और नदी तट के लायक़ कपड़े बनवाने पर 'तू-तू' 'मैं-मैं' हुई। उसके दिल में शक था कि ज़ेको ने अपने लिए कोई शग़ल ढूँढ़ लिया है जिसे मैं रद नहीं कर सकती और वह मेरे हाथ से निकला जा रहा है। यह सोचकर वह आग-बबूला हो गयी। फिर उसने बरसना शुरू किया तो कमर

पर हाथ रखकर वाही-तबाही वकती गई मगर आश्चर्य कि ज़ेको टस से मस न हुआ । बड़े धीरज से वह अपने अभीष्ट से चिपका रहा मानो कोई अपने जीवन के एकमात्र संकल्प के लिए अनंत यातना भोगने को तैयार हो जाये ।

इतने पर भी हो सकता था कि अंततः ज़ेको हार मान लेता किंतु मार्गरीटा स्वयं न जाने क्यों अचानक ढीली पड़ गयी । ज़ेको और सावा दोनों के लिए गालियाँ उसकी ज़बान पर अब भी आ रही थीं लेकिन अब उसका विरोध उतना अविकल न था । स्पष्ट था कि ज़ेको के जाने में उसे कोई फ़ायदा दीख गया था । किसी को नहीं मालूम हो सका कि क्या फ़ायदा था । वस्तुतः मार्गरीटा उन औरतों में से थी जो अपनी इच्छा और अपने हित के प्रतिकूल कुछ भी होने पर तो आसमान सिर पर उठा लेती हैं लेकिन कहीं अपना फ़ायदा दीख जाये तो ऐसे बन जाती है जैसे इनको कोई ख़ुशी नहीं है ।

सबसे बड़ी बात तो यह थी कि ज़ेको अब सावा का आदमी हो गया था, उसने मछली पकड़ने का 'क ख ग' कप्तान माइका से सीखा । यह शिक्षा बहुत संक्षिप्त थी । सनकी कप्तान ने अपने छात्र को जिस भाषण से विषय-प्रवेश कराया उसमें और सबका उल्लेख था केवल विषय का नहीं था ।

"मैं कोई उपदेशक तो हूँ नहीं और तुम मछली मारना क्या सीखोगे । मछली मारने में रखा ही क्या है । यहाँ बैठो, पानी को निहारो और अपने विचारों को सोचो । (यह वाक्य उसने रूसी में कहा क्योंकि वह सैनिक अकादेमी में कुछ समय पहले सीखी रूसी के अपभ्रंश अवशेष दोहराना पसंद करता था) और जब जी भर जाये तो पानी में कूद पड़ो, तरो-ताज़ा होकर फिर सोचना शुरू कर दो ।"

असमंजस में पड़कर ज़ेको ने स्वीकार किया कि वह तैरना नहीं जानता । "वाह" कप्तान माइका ने डगैन पर से नज़र उठाये बिना मुलायमियत से कहा, "तुम भी अच्छे आदमी हो । स्कूल पास कर लिया, इधर-उधर की विद्या सीख ली, लेकिन तैरना नहीं जानते । वाह री विद्या की पढ़ाई । असल बातें तो तुमने सीखी ही नहीं । कोई तुम्हें पानी में उठाकर फेंक दे तो सिल की तरह अपनी विद्या और बुद्धि लिये-दिये डूब जाओगे ।"

ख़ैर, इससे कुछ बिगड़ा नहीं । ज़ेको सावा पर जाकर जम गया —धूप में

तपता हुआ और पहले से अधिक आश्वस्त और उस भयंकर कल्पना से मुक्त जो उसे कुछ समय पहले ढकेल कर नदी-तट पर लायी थी।

माना कि घर पर हालत इतनी ख़राब थी लेकिन उसका बोझ अब उतना दुस्सह न था क्योंकि अप्रैल और नवंबर के मध्य ज़ेको के पास सावा का संसार उपस्थित हो गया था।

सावा पर पहली गर्मियों के दौरान ज़ेको ने बहुत-से दोस्त बनाये। लेकिन इस विशिष्ट और विचित्र संसार के मर्म तक घुस पाने में उसे काफ़ी समय लगा। आरंभ में वह जहाँ जाता कप्तान माइका के साथ जाता।

तटवासी कहने लगे, "कप्तान माइका को एक डिप्टी मिल गया है।"

बेलगराद के बहुत-से रहने वालों को इस तटवासी समाज का, जो कि रेलवे पुल से लेकर चुकारित्सा तक फैला हुआ था, शायद पता ही न था। इस खड़े दलदली और बंजर पुश्ते पर, जो कहीं उजाड़ तो कहीं हरियाला था, एक पूरा राष्ट्र नदी के आसरे जन्म लेता, जीता और मृत्यु को प्राप्त होता है।

सावा तट पर का यह जल-संकुल, जो छह-सात महीने के मेले के लिए जमा होता है, दो वर्गों में विभाजित है। बड़े वर्ग में बेलगराद के नागरिक हैं—नहाने, मछली पकड़ने, नाव खेने की इच्छा से वे यहाँ मनोरंजन के लिए, औरत के लिए, व्यायाम के लिए या महज़ कपड़े उतार देने के लिए और कपड़ों के साथ नागर जीवन का सबसे भारी बोझ उतार देने के लिए आते हैं! दूसरे वर्ग में सावा के स्थायी या मौसमी निवासी हैं: मछुए, मल्लाह, और कारीगर—अधिकतर लोहार, बढ़ई, गाड़ीवान, बेड़ों और ग़ुसलख़ानों के ठेकेदार और छोटे-छोटे चायघरों के मैनेजर, जो कि एक जगह गड्डमड्ड थे और आपस में जुड़े और चिपके जैसे एक तरफ़ को झुके हुए दीखते थे। इन सबके अतिरिक्त यहाँ क़िस्म-क़िस्म के धंधे करने वाले आवारा और कोई धंधा न करने वाले आलसी भी पाये जाते हैं।

विचित्र संकलन है इन सब लोगों का। इनमें मज़दूर भी थे और गृहस्थ भी और चुप्पे और शर्मीले बिन ब्याहे भी, और थे पेशेवर तस्कर, जुआरी, गवैये, छैले और ठग और वे भी थे जिन्होंने कभी पी ही नहीं और वे भी जो कभी नशे से बाहर निकले ही नहीं; हुल्लड़बाज़ और दंगाई भी थे और भेड़ की तरह मधुर स्वभाव वाले भी। किंतु इन सबमें एक समान वृत्ति थी: शहर ने

इन सबको चुपचाप न जाने कैसे चुन-चुन कर निष्कासित कर दिया था और वे सावा के तट पर आ गये थे। हर एक का जीवन के साथ कुछ हिसाब चुकता होना बाक़ी रह गया था। कुल मिलाकर ये सब लोग बेलगराद में एक दूसरे छोर पर रहने वाले इन जैसे लोगों के मुक़ाबले अधिक जीवंत, अधिक रोचक और संभवत: अधिक अच्छे और अधिक निर्दोष लोग थे। शायद इसलिए कि ये पानी के प्रवाह के किनारे रहते थे जो कि सब कुछ धोकर बहा ले जाता है और इसलिए कि ये लोग सूर्य के शुद्ध आलोक में रहते थे जैसे उष्ण प्रदेशों में रहते हैं। इस समाज में केवल सीज़न के दौरान जान पड़ती थी। जाड़ों में शहर का यह हिस्सा राजधानी के नक़्शे पर से ग़ायब हो जाता था और इसके अधिकांश निवासी अपने छोटे-छोटे घरों में दुबक रहते थे या इधर-उधर चले जाते थे।

सावा तट पर कर्म का प्रभाव, स्वभाव और समय भी कुछ अलग ही था; और कुकर्म का भी। क्योंकि यहाँ सीज़न की धूप में बहते पानी की तरल तरंगित सतह पर, सरकती बालू पर और नदी-द्वीपों के हरे-भरे सरों के झुरमुटों में सब कुछ होता था; सब कुछ खुले में होता था।

जब ज़ेको ने सावा-जनों की तुलना मार्गरीटा और अपने साथियों से की तो हमेशा नदी का पलड़ा भारी रहा। उसकी पत्नी अक्सर पियक्कड़ों और घुमक्कड़ों से उसके मिलने-जुलने पर फटकार भेजती लेकिन ज़ेको कोई जवाब न देता। वह अपने परिचितों की याद करने लगता जो कि भले ही पानी में खखारते, एक-दूसरे पर हँसते, क़र्ज़ चुकाना भूलते और अक्सर और लंबी-चौड़ी गालियाँ ज़ुबान पर लाते थे लेकिन जो मार्गरीटा की तरह भयंकर नहीं थे, न उतने पतित और क्षुद्र थे। यह सच है कि ज़िंदगी ने उनको भी कभी-कभी कमीनपन और दुष्टता दिखाने पर मजबूर किया था, लेकिन यह भी सच है कि उनमें नि:स्वार्थ, निष्प्रयोजन करुणा और उदारता जब-तब जाग्रत् हुआ करती थी।

ज़ेको हर साल सावा जाने लगा; पहले वह कप्तान माइका के साथ जाता था फिर अकेले जाने लगा और उसने इन लोगों को और उनके जीवन को अच्छी तरह पहचान लिया। यह कोई अविकल आविष्ट समाज न था बल्कि नदी की तरह चंचल और प्रवहमान था। हर साल इसमें नये लोग आते। हर साल कुछ वहाँ चले जाते जहाँ लोग चले जाया करते हैं—दुनिया में काम की

तलाश में, क़ब्रिस्तान में या जेलखाने में। बिछुड़े साथियों का नाम इज़्ज़त से लिया जाता और आगंतुकों को कम से कम पहले सीज़न भर अविश्वास की नज़र से देखा जाता।

गर्मियों में जहाँ हज़ारों की भीड़ लगती थी उस तोपोला के अनेक आधुनिक तट-विहारों के अलावा नदी तट का एक प्रिय स्थान एक स्नानघर था। इसका कोई नाम न था। हरे रंग के तख़्तों से यह बना था; इसी के पास नदी में पैठा हुआ एक नीचा, तनिक तिरछा छोटा चायघर था जिसके ऊपर आइवी बेतहासा उगी हुई थी और ऊपर से एक विराट बबूल जातीय वृक्ष छाया किये हुए था। यह कप्तान माइका का प्रधान कार्यालय और ज़ेको के तट-विचरण का आरंभ-स्थल था।

इसका मैनेजर था स्टाँको मेशिच। यह एक भारी-भरकम, लंबा-तड़ंगा, पतली टाँगों और विशाल उदर वाला आदमी था जिसका रोएँदार सीना था और बाँहें तगड़ी थीं। उसका ठस सिर, दाढ़ी बढ़ा चेहरा और हँसती हुई दुष्ट आँखें थीं। हर कोई उसे मास्टर स्टाँको कहता था, न मालूम क्यों। उसकी पत्नी और लड़की बारी-बारी से ग़ल्ले के पास बैठतीं, नौकर स्नान-कोठरियों की देख-भाल करता और वह ख़ुद तट पर यह कहकर सैर किया करता कि वह काम कर रहा है। सीज़न भर मास्टर स्टाँको एक ही क़िस्म के कपड़े चढ़ाये रहता। उसकी पोशाक थी चौड़ी मोहरी का नीचा, काला जाँघिया जो बिल्कुल सुथन्ना मालूम होता और एक बूचा टोप जो कि तुर्की टोपी जैसा दीखता। मुँह में सिगरेट स्थायी रहती, बस यही उसका साज़ था। इसी धज से वह बेड़ों, घरों, चायघरों और दूसरे स्नानघरों के चक्कर काटा करता। नहाकर पेड़ के नीचे नाश्ता करने वालों से गप लड़ाता और नावों में उधर से गुज़रने वाले मछुओं से मोल-तोल और झिक-झिक करता रहता।

वह नदी तट की इस छोटी-सी नगरपालिका का अनिर्वाचित, अघोषित परन्तु सर्वसम्मत प्रधान था; अतः वही विवादों का विचारक और जन-साधारण का दिग्दर्शक था।

स्टाँको का धंधा था नावें, मोटर, रेफ्रीज़रेटर, स्टोव, अलमारियाँ और तरह-तरह का लोहा-लक्कड़ और काठ-कबाड़ ख़रीदना और मरम्मत कर के

बेचना। उसका बही-खाता उसकी खोपड़ी के भीतर था। उसका गणित अचूक

था। उसने कभी किसी काम में कोई ग़लती नहीं की; फिर भी उसके पास कभी पैसा नहीं रहा। अगर उसकी भली बीवी लड़-झगड़ कर, कतर-ब्योंत कर कुछ रुपये अलग दबा कर न रख देती तो उन लोगों के पास सावा के किनारे का वह छोटा-सा कठघर भी न होता। कभी-कभी मौज में आकर स्टाँको अपने हाल का वर्णन यों करता :

"उस लखपती पीरो स्टेबविच को जानते हो न? हम दोनों हाई स्कूल के पहले दर्जे से साथ-साथ लताड़े रहते और हम दोनों ने साथ ही साथ काम शुरू किया था। आज वह बेलगराद का बहुत बड़ा ठेकेदार है। उसके तीन मकान हैं। एक तो ग्राबलजाँस्का मार्ग पर है। छह मंज़िला है। लोग पूछते हैं, कैसे बनाया। मुझसे पूछो। पहली बात तो यह है कि वह लंबा हाथ मारता है और मैं छोटी-मोटी हेरा-फेरी करता हूँ। दूसरे—तुमसे क्या छिपाना—मुझे पीने का शौक़ है और मैं मज़ा लेता हूँ। तो वह एक ईंट उठाता है और मैं बियर का गिलास; वह ईंट और मैं बियर; मुझे दारू और सब कुछ भी पसंद है। बस इसी तरह एक-एक करके दिन गुज़रते जाते हैं। यह है असल बात। ईश्वर तो हम दोनों के साथ है। मेरे साथ खर्च में, उसके साथ बचत में। और फिर भी मुझे लोग कहते हैं मालिक और उसे कहते हैं, माफ़ कीजियेगा, दोग़ला कंजूस। यही है दुनिया का हाल।"

स्टाँको को दार्शनिकता का रोग नहीं था लेकिन उसने अपना एक दर्शन बना रखा था। उसके स्नानघर की दीवार पर दरवाज़े के पास एक तख़्ती लटकी रहती थी :

'यह भी न रहेगा।'

पहले तो मामूली दफ़्ती पर ये शब्द लिखकर टाँगे गये थे लेकिन नहानेवालों और हवा और धूप ने मिल कर दफ़्ती को सड़ा-गला डाला। फिर स्टाँको ने एक नयी तख़्ती बनवा कर सफ़ेद रोग़न की जमीन पर काले से लिखवाया। नये गाहक अक्सर उससे पूछते कि इस वाक्य का मतलब क्या है। आम तौर से स्टाँको कोई जवाब ही न देता, खाली पूछने वाले को अपनी भूरी आँखों से घूर लेता जो कि हँसने पर शैतानी के मारे अधमुँदी हो जातीं लेकिन अचरज या ग़ुस्से से फैलकर गोल हो जाया करती थीं। जवाब न देना तो ग़नीमत थी; जब वह जवाब देता तो और भी [illegible] से देता। एक दिन एक दुबले-पतले

ललमुँहे आदमी ने लगातार चेक लहजे में यह पूछ कर उसे तंग कर दिया कि इस विचित्र वाक्य का मतलब क्या है और इससे फ़ायदा क्या है।

आजिज़ आकर मास्टर स्टाँको ने कहा कि यह लोगों को चेताने के लिए है कि सभी पदार्थ क्षणभंगुर हैं।

"हर समझदार आदमी जानता है।"

"हर समझदार आदमी जानता तो है लेकिन यह लिखा उन मूर्खों के लिए गया है जिन्हें पूछे बिना कल नहीं पड़ती।"

स्टाँको का पड़ोसी था नऊम चायवाला। वह मेसीडोनिया का रहनेवाला, दोहरे बदन का काम-काजी आदमी था। ज़्यादा बातचीत उसे पसंद न थी। उस-का कठघर रंग-बिरंगे पत्तों से बना था। दरवाज़े पर मखमली फूल और आइवी की बहार थी। सामने की तरफ़ कोई दस-बारह मेज़ें हर एतवार को बुर्राक सफ़ेद मेज़पोशों से ढकी-बिछी रहतीं। नऊम सीज़न भर यहाँ रहता और अच्छी-खासी कमाई करता। उसकी बीवी-बच्चे जिन्हें वह 'यहाँ सानना नहीं चाहता' शहर में रहते थे। यों तो वह मितभाषी था लेकिन ज़िक्र आने पर वह यह ज़रूर बताता कि उसका एक लड़का वकील है और एक लड़की हाई स्कूल में पढ़ती है।

स्टाँको का एक और पड़ोसी और नदी तट का स्थायी निवासी था मिलान स्ट्रैगराट्स। यह लंबा, खिचड़ी बालों वाला, लंबी मूँछों और तीखे नाक-नक़्श वाला आदमी था। यह भी बोलता कम था और चलता भी दिक़्क़त से था क्योंकि बहुत दिन बीते (मालूम नहीं कब और कैसे) उसका दाहिना पैर कट गया था और अब एक नक़ली टाँग लगी हुई थी। वह अपनी लंबी, लाल बालों वाली पत्नी को लेकर एक अधगिरे घर में रहता था। वह नदी परिवहन विभाग का कर्मचारी, मछुआ, मल्लाह और हरफ़न मौला रह चुका था। अब वह जाल सीने, औज़ार सुधारने का काम अपने घर के ठीक सामने घर से कहीं बड़े एक अखरोट वृक्ष के नीचे किया करता था। लोग कहते थे, मगर कोई प्रमाण न था, कि मिलान पुलिस का मुखबिर रह चुका है, बल्कि शायद इसी चक्कर में अपनी टाँग भी गँवा चुका है। अब उसे मुआवज़े के तौर पर कुछ पेंशन मिल रही है। यह बात खुल्लम-खुल्ला न कही जाती, हाँ, किसी भिश्ती या मछुए के साथ कई राकिया पीने के बाद आपको बताया जाता :

"मिलान का क़िस्सा किसको नहीं मालूम है···"

अगर आप पूछते कि क़िस्सा क्या है तो जवाब आता :

"कौन-सा क़िस्सा ? मैं क्या जानूँ।"

और फिर कहने वाला हाथ की भंगिमा से कहीं दूर किसी स्थान की ओर इशारा करता जहाँ न तो अच्छा है न सुंदर है और जहाँ के बारे में बोलना भी उचित नहीं है।

मिलान चिड़चिड़ा, घुन्नहा आदमी था जो बोलता था तो गुर्राता जान पड़ता था हालाँ कि वह लँगड़ा कर चलता था और चुप ही रहता था फिर भी हर कोई उससे डरता था और चाहता था कि चाहे चार पैसे गँवाने पड़ें लेकिन उससे टकराना न पड़े; हर कोई उसे ख़ुश रखना चाहता था, स्टाँको भी, जो कि दूसरों के मुक़ाबले उससे अधिक मुलायमियत से बात करता था। यह ठीक-ठीक बताना बहुत मुश्किल है कि यह धाकड़ आदमी अपनी सत्ता का प्रयोग कैसे करता था किंतु यह कहा जा सकता है कि वह इतने इत्मीनान से दूसरों पर रोआब जमाता था कि हर एक ने उसके उद्दंड व्यवहार को अनिवार्य मान कर स्वीकार कर लिया था। उसके ग़ुस्से से बचने के लिए लोग छोटी-मोटी तकलीफ़ गवारा कर लेते लेकिन उसे नाराज़ न करते हालाँ कि इससे न तो वह उनका कृतज्ञ होता न उसके अंतर की अटल और अपार घृणा कम होती।

हमारे मध्य में ऐसे लोग होते ही हैं। पुलिस प्रधान कार्यालय में ही नहीं क़स्बे के दुकानदारों, सरकारी मंत्रियों और समाचारपत्र के संपादकीय विभागों और स्कूलों में ऐसे लोग मिल जायेंगे। अपने देश में ऐसे हेकड़ीबाज़ों और परोपजीवियों को कौन नहीं जानता जिनके शानियल, ग़ुस्सैल मुखड़ों के पीछे केवल खोखला शून्य है और कौन है जिसका आत्म-गौरव और आत्म-हित ऐसे लोगों के हाथों नष्ट न हुआ हो। कौन है जिसके हृदय में ऐसे लोगों के स्वैराचार का डंक न गड़ा हो। ये लोग कभी पूरे प्रदेश में व्याप्त हो जाते हैं, कभी एक पलटन या एक कक्षा में सीमित रहते हैं। कभी-कभी एक व्यक्ति को ही शिकार बना पाते हैं और कभी मिलान की तरह नदी तट के सौ वर्गगज़ निर्धन मोहल्ले पर छा जाते हैं।

मिलान से ही ज़ेको को एक दिन कप्तान माइका के बारे में कुछ नयी बातें मालूम हुईं।

ऊमस भरे दिन के बाद शाम हो चली थी। मिलान रोज़ की तरह अख़रोट के नीचे घास पर बैठा था और सावा के कुछ लोग उसके चारों ओर घेरा बनाये खड़े थे। वे सब वालयेवो की राकिया (कच्ची शराब) पी रहे थे जो कोई चखने के लिए ले आया था। ज़ेको चुपचाप घेरे के बाहर खड़ा हो गया।

मिलान ने गिलास ख़ाली करके ओठ चाबे जिससे कि उसकी सफ़ेद मूंछ बाहर को उभर आयी और किसी पिछले तर्क का विस्तार करते हुए उसने बिना किसी की ओर देखे सख़्ती से कहा—

"क्या, कौन, माइका को कह रहे हो ? वह एक विदूषक है जो सारी ज़िंदगी अपने को बुद्धू साबित करता घूमा है। वह कम्युनिस्ट है और नहीं तो उनका आदमी तो जरूर है। वह १९२१ में सेना से खारिज किया गया था। उसके पास दफ़्तर की मशीन पर टाइप की हुई कम्युनिस्ट पर्चियाँ मिली थीं। बात बिल्कुल साफ़ है। उसे तो जेल जाना था। लेकिन बस कुछ ऐसे ही हो गया···फिर उसे पेंशन मिलने लगी। अब वह दब कर रहता है और ऐसे बनता है जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो लेकिन मैं उसका एतबार नहीं करता।"

कहकर मिलान स्ट्रैंगराट्स ने एक ओर थूक दिया।

बिना किसी को जताये ज़ेको भीड़ से निकल आया।

उसके ऊपर एक डर हावी हो गया था। वह डर जो शहर के रहनेवालों के मन में हमेशा मँडराया करता है, निरे शब्दों का डर, अपने भीतर छिपे अचरजों का डर, वह डर जो हर विचार के पहले आकर खड़ा हो जाता है और शब्द के यथार्थ और सत्य की जाँच नहीं होने देता।

उस दिन से वह कप्तान माइका को बड़े ग़ौर से ताकने लगा। उसकी दृष्टि में कौतूहल, स्नेह, आदर और भय मिल-जुल कर एक हो गये थे। इस व्यक्ति के हँसोड़पने का मतलब क्या है। इस सबका मतलब क्या है ? क्या यह सिर्फ़ दिखावे का मुखौटा है ? यदि हाँ, तो मुख कहाँ है और कैसा है ?

एक मर्तबा उसने एक दर्दभरा सपना देखा। कप्तान माइका और मिलान स्ट्रैंगराट्स उसके सामने खड़े उसकी वफ़ादारी का सबूत माँग रहे हैं। स्ट्रैंगराट्स उदास है, उसकी खिचड़ी दाढ़ी ख़सखसी है, उसकी मुस्कुराहट अगम्य है जैसे विदेशी भाषा होती है। और माइका बैठा, पाँव हिलाता मुस्कुरा रहा है। और उसी दिन की तरह बोल रहा है जब वह पहले मिला था।

'समझदार आदमी सावा के किनारे रहते हैं...'

उसने सीधे-सादे ढंग से हँस कर यह कहा था लेकिन मानो ज़ेको के पीछे दूर कहीं किसी को ताड़कर वह अजब तरह से आँख मार देता था। इस हरकत से ज़ेको चक्कर में पड़ जाता; वह अशोभन थी और कुछ अपमानजनक भी। तो भी उसे माइका अच्छा लगता था और वह उससे जैसे भी हो कुछ कहना और सुनना चाहता था, लेकिन स्ट्रैंगराट्स के रहते यह हो नहीं सकता था।

ज़ेको किसी चीज़ से उलझ रहा था। वह उसे पलटता और मोड़ता लेकिन वह उसे सुलझा न पाया यहाँ तक कि आखिर में सब कुछ कष्टकर और अद्भुत हो गया और जब वह जगा तो उसे बड़ी राहत मिली।

कप्तान माइका की जो कहानी मिलान ने सुनाई थी वह कुछ दिनों तक उसको बार-बार याद आती रही। फिर वह सब कुछ भूल गया। कहानी भी और कहानी से उपजा भय भी। लेकिन अक्सर जब वह माइका के साथ नऊम के चायघर के दरवाज़े बैठा धूप सेंकता होता तो उसकी नज़र माइका के गोल घुटी खोपड़ी पर जा टिकती और तब उसे मालूम होता कि वह न जाने क्यों माइका को बहुत अधिक चाहता है और इसमें कोई जोखम हो तो उठायेगा। और हो भी तो कितना बड़ा जोखम होगा। असल में स्ट्रैंगराट्स जैसे आदमी हमारे जीवन में एक बड़ी विडंबना हैं और उसके बारे में सोचने से ही परेशानी होने लगती है।

स्टाँको का एक और पड़ोसी था आइवान इस्त्रानिन। यह पेशे से बढ़ई था। नाव बनाने में सिद्धहस्त था और अपनी पत्नी मारियेटा को लेकर वहीं रहता था।

यह स्टाँको की भाषा में पेचीदा मामला था। दोनों इस्त्रिया से आये शरणार्थी थे। मारियेटा आइवान से उम्र में बड़ी, अधिक अनुभवी और निरंकुश स्त्री थी। आइवान भूरे बालों और आसमानी आँखों वाला छरहरा व्यक्ति था। उसे देखकर लगता था कि कोई कमज़ोर दिमाग़ लड़का शरीर से बड़ा हो गया है। वह कस कर मेहनत करता। रविवार की शाम को नशा करने का शौक़ीन था लेकिन सवेरे वह बराबर कुंस्का मार्ग के कैथोलिक गिर्जाघर में जाया करता था।

× × ×

गर्मियों भर आइवान नावें और डोंगियाँ मरम्मत करता और नये बजरे बनाता रहा। चौड़ी मोहरी का सूती पतलून और फटही कमीज़ पहने, नंगे पाँव, बालों में बुरादा भरे वह अपने दो शिष्यों के साथ दिन भर जुटा रहता मगर काम पूरा होने को ही न आता। मारियेटा की अपनी अलग ज़िन्दगी थी : वह आँख मूँद कर पैसा बरबाद करती, हर मौसम में नया प्रेमी करती और हर प्रेमी के बदलने के साथ अपने को कुछ और गिरा लेती। तट पर इस दम्पती का जीवन गपशप का ख़ास मसाला और तिरस्कार का प्रमुख विषय था। आइवान पत्नी से कुछ कह न पाता। बस सब कुछ अपनी आँखों से देखता और सहता रहता। अच्छा होता कि वह शांति से सहता, मगर नहीं वह कभी हर एक से, ख़ास करके ज़ेको और चाय वाले नऊम से अपना रोना रोता और कभी उँगली उठाने वाले पड़ोसियों से अपनी पत्नी का पक्ष ले कर तर्क करता। इस तरह इस युगल ने सावा किनारे की शांति हर ली थी मगर उसकी रोज़-रोज़ की 'तू-तू', 'मैं-मैं' झाँय-झाँय, रोवा-रोहट, गाली-गुफ़्ता, ले-दे और अंत में निर्लज्ज सुलह देखकर लोगों का दिल बहलता रहता था।

एक बार की गर्मियों में, जो सावा किनारे ज़ेको की चौथी थी, ऐसा कुछ हुआ जिससे आइवान के दोस्त भौंचक रह गये। रविवार को सवेरे-सवेरे जब ढावे में कोई न था आइवान वहाँ आया, दो-चार गिलास राकिया चढ़ाये और वेदना से त्रस्त व्यक्ति जैसा विकृत मुँह बनाकर नऊम से अपने मन की कथा कहने लगा।

"ईश्वर जाने क्या होने वाला है, कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। मेरी औरत ने अब पैसे चुराना शुरू कर दिया है। मुझे लगता है, भगवान क़सम, नऊम, कुछ बहुत बुरा हो कर रहेगा।"

"जाने भी दो," नऊम बोला। उसका यह तटस्थ और संयत 'जाने भी दो' इस लहज़े में कहा गया था कि कहना कठिन था कि वह मारियेटा की निन्दा कर रहा है या आइवान पर तरस खा रहा है या दोनों की निंदा कर रहा है और दोनों के साथ इस सारे संसार की भी, जो "बुरा है, बहुत बुरा है।"

उसी दिन बड़ी देर ताक में बैठे रहकर शाम होते-होते आइवान ने मारियेटा को उसका बक्स खोलते पकड़ लिया। इसमें वह पैसा रखती थी और मारियेटा

ने इसकी दूसरी चाबी बनवा ली थी। जब वह पकड़ी गयी तो उसके हाथ में सौ दीनार का नोट था। आइवान ने एक अधबनी नाव के पास पड़ा एक भारी बसूला उठा लिया और फुर्ती से सधे बढ़ई की तरह उस औरत को हनने लगा; यहाँ तक कि उसके लम्बे-चौड़े कारखाने के उस अँधेरे कोने में वह ख़ून से लथपथ ढेर हो गयी।

तब वह रुका, स्ट्रैगराट्स के घर की ओर चला जहाँ अखरोट के तले दर्ज़न भर आदमी, कुछ रविवारीय सज-धज में, कुछ तैरने के जाँघिये पहने जमा थे। ख़ून से सने हाथ ऊपर उठा कर आइवान रोते-रोते चीख़ा :

"पुलिस को बुलाओ, पुलिस को बुलाओ !"

हाथ में गिलास थामे अवाक् भौंचक आदमी उसे देखते रह गये।

यों तो नदी किनारे कोई बात बड़ी बात नहीं मानी जाती पर इस घटना को असाधारण माना ही गया। पड़ोसियों को मुंसिफ़ के सामने गवाही के लिए बुलवाया गया और अधिकांश सावा-बिरादरी मुक़दमा देखने गयी। लोग घर लौट कर बेचारे आइवान पर तरस खाते, "वह मर्द बच्चा नहीं," लेकिन बयान सबने उसके पक्ष में दर्ज किये। ऊपर से उसके स्लोवेनी वकील की होशियारी काम आयी और वह सिर्फ़ दो साल की क़ैद पाकर रह गया।

अन्यथा सावा-बिरादरी को ऐसी दुर्घटनाओं का अनुभव न था। स्त्रियाँ बच्चों को लेकर लड़तीं और पुरुष धन्धे की छोटी-मोटी बातों को। वे काम करते-करते लड़ पड़ते और फिर राकिया पीते-पीते सुलह हो जाती। या फिर राकिया पीते-पीते लड़ पड़ते और काम के वक्त सुलह हो जाती।

अभागे आइवान इस्त्रानिन के मकान से कुछ क़दम पर सड़क के किनारे जोका लोहार की छोटी-सी दूकान थी : यह लकड़ी की बनी थी; तंग, अँधेरी, धुआँभरी। इस दूकान में चिनगारियों की चमक और बुझाये हुए फ़ौलाद की सिसियाइंध भरी रहती।

रोज़ इधर से गुज़रते हुए ज़ेको ठहर कर देखता, उसका दोस्त जोका लाल लोहे को हथौड़ा लेकर इस तरह कूट रहा है जैसे किसी दुश्मन पर पिल पड़ा हो। काम करते वक्त वह और कुछ नहीं देख पाता था—साथ जुटे सहायक को भी नहीं। कुछ काम बताता तो दाँत भींचे-भींचे ही बोलता था। पर जब धीरे-धीरे ठंडा होकर काला पड़ता हुआ इस्पात हथौड़े के तले मनचाहा रूप ग्रहण

करने लगता तो लोहार की समाधि टूटती और उसे आसपास खड़े लोग दिखने लगते, उनकी बात सुनायी पड़ने लगती और उनको अपने सवाल का जवाब भी मिलने लगता।

लोहारी से कुछ दूर घर था, लोहारी से न बड़ा न बहुत बेहतर, बच्चों से खचा जो तर-ऊपर के थे और एक दूसरे की कान-खिचाई किया करते थे। उसकी लम्बी सुथरी पत्नी मिलेना घर और बच्चे सहेज कर रखती थी।

और जब दिन ढलने पर नऊम के ढाबे के दरवाज़े बैठे चार आदमी लोहार की लगन और संतान-संख्या के बहाने से उसे छेड़ते तो वह खिसियाने लगता :

"ठीक है, ठीक है, बच्चे तो जितने हों थोड़े हैं।"

लोहारी से कुछ उतर कर मिस्त्री कार्लो ज़ेमुनाट्स की, जिसे सब ड्रागी, ड्रागी कहते थे, दूकान थी। यह भी पटरों की बनी थी और जोका की दूकान से कुछ बहुत बड़ी न थी अलबत्ता इसके भीतर रोशनी और सुघराई कहीं अधिक थी। फ़र्श यहाँ भी कच्चा, सीला, ऊँचा-नीचा था। दीवारें रंदा किये पटरों की बनी और मशीनी तेल और धूल के मैले पलस्तर से भूरी हो रही थीं। एक दीवार पर ज़ेको की नज़र हमेशा दो चीज़ों पर जा टिकती। एक तो फ़ोटो थी जिसमें गोद में बच्चा लिये एक औरत बैठी थी और दूसरी थी तस्वीर के नीचे खुँसा काग़ज़ का सस्ता नक़ली लाल गुलाब।

कार्लो का परिवार ज़ेमुन रहता था। वह बेहद चुप्पा आदमी था। बोलता तो सिर्फ़ माइका से और वह भी अकेले में।

इन दोनों संसारों का अंतर ज़ेको के मन में निरंतर हलचल पैदा किया करता। वह कुछ कहना चाहता तो कप्तान माइका से ही कह सकता था। खुद माइका की बातों में लच्छेदार कहावतों और ऊटपटांग मुहावरों के सिवाय कुछ न होता लेकिन ज़ेको को वह बोलने का मौक़ा देता था और ध्यान से सुनता भी था।

ज़ेको तटवासियों को ही नहीं, उनमें से भी बहुतों को पहचानने लगा था जो बेड़े पर या झाड़ियों में बैठे मछली मारते थे। इनमें लगन के पक्के शिकारी थे, दिल के भले थे और टिर्रहे थे और फिर निरे झक्की थे जो घंटों पानी में बंसी डाले बैठे रहते। [illegible] करते [illegible]लों के मजमे देखा

करता जिनमें कुछ सचमुच खिलाड़ी थे, कुछ महज़ वक्त काटने वाले थे और ये सब सावा की सतह पर तैरते-तैरते आराम-आमोद या नये-नये शग़ल की खोज में या फिर सिर्फ़ फ़ैशन के मारे तितर-बितर हो जाते। उसने बहुत-से दिन और बहुत-सी गर्मियाँ यों ही दृश्य देखते-देखते गुज़ार दीं।

बहुधा वह तट पर कुछ आगे जा कर एक छोटे-से बेड़े तक जा पहुँचता जो बेलगराद की किसी परिवहन कंपनी का था और जब लदान न हो रहा हो तो सूना पड़ा रहता था।

ज़ेको बेड़े पर जा बैठता। वह धातु के छोटे-छोटे पीपों पर टिका हुआ निरन्तर आगे-पीछे डोलता रहता और उसके नीचे पानी की लगातार कलकल सुनायी दिया करती। कभी-कभी ज़ेको को लगता कि सब कुछ तैर रहा है, सामने नदी, नीचे बेड़ा, दूर पर द्वीप जो विराट हरी नौका जैसा दिखता है और ऊँचे पर शहर जो विचित्र जलयान-सा खड़ा है और काले मेगडान का क़िला उसकी चोंच है। वह बैठा पानी का प्रवाह निहारा करता। वह तेज़ धूप में सुरमई और सिलवटदार होकर ऐसे चमकता जैसे इस्पात का बना हो लेकिन था वह इतना रेशमी कि मछुआ नावें, किश्तियाँ और डोंगियाँ उस पर से निःशब्द फिसलती चली जाती थीं। आँख आधी मूँदकर देखो तो लगता कि सब चीजें एक दूसरे से बराबर टकराती जा रही हैं मगर टूटतीं-फूटतीं नहीं।

इतने में काना मछुआ स्वेटा एक बेढंगी कोलतार पुती नाव में आता दिखाई दिया। था तो वह उस पार का मगर शायद ही कोई दिन जाता हो जब वह इस पार न आये। वह पुट्ठे पर बैठा एक ही पतवार से खेया करता। उसके पाँव के पास नाव में लगाने वाला एक मोटरइंजिन पड़ा था — ज़ंग खाया हुआ उसका बायलर ऊपर को खड़ा था। यह यंत्र स्वेटा को किसी के झोंपड़े में या सरकारी गोदाम में कहीं मिल गया होगा और अब वह उसे चुकारित्सा के किसी लोहार के पास ले जा रहा था जो उसे कौड़ियों के मोल ख़रीदकर साफ़ कर जलक्रीड़ा के असंख्य शौक़ीनों में से किसी के हाथ बेच दे। स्वेटा सैकड़ों अधनंगे नहाने वालों के बीच अकेला आदमी था जो पूरा लिबास पहने था।

सर पर काली टोपी थी : कोट के नीचे गले तक बटनबंद वास्कट, टाँगों में सूती पतलून और पाँवों में बिना मोज़े के सलीपर थे। यही कपड़े वह क्रिसमस पर भी पहनता और हमेशा वह कालिख पोते रहता। जब उससे कोई कहता कि क्या

धुँआरे से गिर पड़े थे तो वह अपनी अकेली आँख झपकाकर अपने काले चिमड़े हाथ से ठुड्डी खुजलाने लगता; ध्यान उसका अपने धंधे पर ही रहता जिसमें चोरी-चमारी ही अधिक कर के शामिल थी। स्टाँको, जिसे सावा पर चलने, तैरने या तिरने वाली हर वस्तु की अचूक पहचान थी, कहता था कि इस संसार की जो चीज़ ईश्वर के खूँटे में बँधी हो वही स्वेटा के हाथ से बच सकती है। कभी किसी ने स्वेटा को दूर तक दौड़ाया था तभी उसकी दायीं आँख गयी थी।

यह तो सब जानते थे। स्टाँको का नौकर शाम के वक्त स्वेटा को कोठरियों के चक्कर काटते देखता तो फ़ब्ती कसता, "ज़रा सँभल के रहना, बताये देता हूँ, अबकी गयी तो फिर न मिलेगी।" मनहूस और उदास स्वेटा अपने शिकार के पीछे पनिया कीड़े की तरह रेंगा करता। बेचारा! उसकी क़िस्मत में लिखा था कि चाहे भले इरादे से ही आये, उसकी सूरत देखकर लोग चौकन्ने हो जायेंगे।

स्वेटा की नाव सफ़ेद धुएँ की लकीर पीछे छोड़ती जा रही थी: यह स्वेटा के मुँह से बुझे-अनबुझे हरदम लगे रहने वाले छोटे काले पाइप से निकल रहा था। स्टाँको का कहना था अगर स्वेटा यह पाइप दाँत से न चावे रहे तो सावा में गिर ही पड़े।

अब ज़ेको की अधमुँदी आँखों के झरोखे से एक रंग-बिरंगी नाव दिखायी दी। एक पुरुष खे रहा था: वह कपड़े का टोप लगाये था, उसकी बाँहें और कंधे धूप में तपते-तपते तँबिया गये थे। एक सुन्दर स्त्री नीला स्नानखण्ड पहने छाता खोले नाव के सिरे पर बैठी थी; वह अवश्य रूसी प्रवासिनी रही होगी।

ज़ेको ने सोचा, इस अधेड़ नाविक का सम्पूर्ण शक्ति लगा कर अपना यह बोझ खेना कितना करुण है किन्तु यह विचार पल भर में निरोहित हो गया। स्वेटा के पीछे छूटते धुंए की लकीर-सा।

अब ज़ेको का दृष्टिपथ एक छोटे काले जहाज 'क्राइना' ने अवरुद्ध कर लिया था जिसके धुँआरे-से उगला हुआ गाढ़ा काला धुआँ बादल जैसा बन गया था और पानी की चमकीली सतह पर अपनी परछाईं डाल रहा था। यह छोटा मगर ताक़तवर जहाज़ दो बड़े लदे-लदाये बजरे खींचता जा रहा था। दूसरे बजरे की छत पर सफ़ेद रंग का एक कठघर बना था जिसकी खिड़की में फूलदान रखा दीखता था। कठघर के पीछे से निकलकर एक जवान औरत नंगे पैर हाथ में

एक बड़ा-सा बरतन लिये हुए आयी और बरतन का पानी सावा में फेंककर चली गयी : उसके पीछे-पीछे एक छोटा-सा सफ़ेद कुत्ता आकर उछलने-कूदने लगा ।

फिर कुछ क्षरण के लिए नदी सूनी हो गयी । केवल पानी की वह उथल-पुथल, जो बजरों के गुज़रने से हुई थी, आलोक-धारा को विशृंखल करके दृष्टि आकृष्ट करती रही ।

किंतु पानी स्थिर न हो पाया था कि एक गोल डोंगी, सुन्दर जापानी काठ की बनी, आठ आदमियों को लिये दृष्टिगत हुई : यह छिछली थी और कुल-चिह्न से अंकित सफ़ेद बनयाइन पहने खेवनहारों के बोझ से पानी में दबकर प्राय: अदृश्य हो गयी थी । डोंगी तालबद्ध लय से पतवारें बाहर निकालती और समेटती और खनखजूरों की तरह सरकती चली जाती थी । शिक्षक सुकान पर बैठा दिशायंत्र दोनों हाथों से साधे था, उसके गले में लटके भोंपू से उसकी भोंडी आवाज़ 'एक-दो, एक-दो···' आदेश देती गूँज रही थी (ज़ेको को एकाएक टिगार, अपने घर और मार्गरीटा की दु:खद स्मृति हो आयी)। ज़ेको को खेलने-कूदने वाले नापसंद थे और नापसंद इसलिए थे कि वह उन्हें जानता नहीं था बल्कि जानता था तो केवल अपने लड़के और उसके दोस्तों के माध्यम से ।

खेलकूद आदमी का दिल मज़बूत और दिमाग़ कमज़ोर कर देता है, ज़ेको ने सोचा, और पौरुष और साहस की जगह वह उजड्डपन और आक्रामकता सिखाता है, तिकड़म और जुआ तो सिखाता ही है । इन चीजों से हमें वास्ता ही क्यों हो ?आक्रामकता तो यों ही बहुत काफ़ी है । और लालच भी ।

बिजली की तेज़ी से एक शिकारा गुज़र गया और वह इतना लम्बा और छिछला था कि खेने वाला पानी पर बैठा मालूम होता था । दो लम्बी पतवारें उठीं और डैनों की तरह फड़फड़ायीं । आदमी की आँखों पर धूप का चश्मा था । उसकी भूरी चमड़ी पर तेल की मालिश हुई थी जिससे उसके पुट्ठे धूप में ऐसे चमकते थे जैसे भीगा काँसा हो । शायद यह कोई स्लोवेनी है, व्यापारी होगा, ज़ेको ने सोचा ।

तब एक मामूली सफ़ेद नाव रेंगती हुई निकली, जिसमें दो जोड़ पतवार लगे थे और एक पूरा परिवार सवार था । पति-पत्नी खे रहे थे । दो औरतें सिरे पर बैठी थीं और दो लड़के एक तरफ़ झुककर कभी पानी अपने ऊपर

छिड़क रहे थे, कभी उसमें अपना मुँह देख रहे थे। एक भारी-भरकम झबिया खाने के सामान से भरी रखी थी जिसमें से एक बड़ा-सा तरबूज़ झाँक रहा था; क़रीब ही एक बेंत की टोकनी में शराब की बोतल थी। यह है नये ज़माने की तसवीर: पति नौजवान और नौबढ़ है, पत्नी घमंडिन और फ़ैशनपरस्त; लड़के दोनों स्कूल में हैं, सास है, जिससे बुढ़ापे में धूप बर्दाश्त नहीं होती और साली है जिसके लिए नदी पर वर की खोज हो रही है क्योंकि थल पर खोज कर हार चुके हैं। ये लोग द्वीप के परले सिरे पर कहीं ठहर कर सरों की छाँह में भोजन करेंगे, फिर मच्छर मारते-मारते सो जायेंगे।

इस तरह ज़ेको की आँखों के सामने से बेलगराद के जीवन की प्रत्येक संभव झाँकी गुज़रती रही। यह कभी विचित्र, कभी अद्भुत और अक्सर ऊटपटांग दिखायी देती मगर होती हमेशा जानदार थी। सावा जीवनमयी है, ज़ेको ने सोचा, और जीवन संगठित होना चाहिए, आकस्मिक, अतार्किक, अव्यवस्थित नहीं। खुद तो वह नहीं जानता था कि कैसे हो लेकिन उसने एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना की, जिससे जीनेवाले हर एक को अपनी सही जगह मिली हुई हो।

और ज़ेको सोचने लगा: कौन-सी जगह स्टाँको को दी जाये जो कि इसी वक्त मेरे पास से गुज़र रहा है, उसकी छाया अभी क्षण भर को मेरे ऊपर पड़ी थी। विशालकाय, जीवन्त, होशियार स्टाँको को ऐसे तो नहीं रहना चाहिए। उसे धूप में छाया खोजते हुए घूमते नहीं रहना चाहिए और न जब-तब छिटपुट काम करना चाहिए, जैसे वह करता है। बड़ी मुश्किल से घर भर के खाने को और गाहे-बगाहे एक गिलास दाल या तम्बाकू खरीदने को वह पैसा जुटा पाता है। बहुत-सी बातें हैं जो नहीं होनी चाहिए।

ज़ेको को खुद यहाँ तेज धूप में बेड़े पर पड़े-पड़े ऊँघते और जागते फ़ैसला नहीं करना चाहिए कि जीवन में क्या हो और क्यों हो।

तो भी वह एक व्यवस्था की परिकल्पना करता रहा—उस अनुशासन की नहीं जिसकी हमारे यहाँ लोग बहुत बात करते हैं बल्कि एक समुचित रचनात्मक व्यवस्था की जिसमें प्रत्येक को अपना अभीष्ट प्रायः प्राप्त हो जाये। और तब उसने सावा किनारे की वह शक्ल अपने मन में देखी जो सचमुच होनी चाहिए थी। सब लोग अधिक अच्छा काम कर रहे हैं और अधिक आराम से रह रहे हैं, स्टाँको और [illegible] और उसकी अभागी मारियेटा और

स्वेटा और मिलान स्ट्रागराट्स भी—सब नये आदमी बन गये हैं और संसार में उनके लिए निश्चित स्थान है, सब···

सहसा बेड़ा हिला, ज़ेको की विचारधारा टूटी, उसका स्वप्नलोक विशृंखल हो गया। धातु के पीपे विशाल घंटों की तरह बज उठे और पानी उछल कर पटरों पर आ रहा : एक तेज़ मोटरबोट गरजती हुई चली आ रही थी। चौंक कर ज़ेको ने इस वेगवती तन्वंगी नौका पर दृष्टि स्थिर कर दी। वह इस नौका, आरिज़ोना, को पहचानता था और इसके मालिक को भी। वह एक बेल्ज़ ठेकेदार और दलाल था। इस गठीले युवा की बग़ल में दो लड़कियाँ दोनों प्रोफ़ेसर क्राल्येविच की पुत्रियाँ थीं। वे उसी समूह की थीं जिसका ज़ेको का पुत्र टिगार था। ये सुन्दर, स्वस्थ स्त्रियाँ, जिनके गले में सुर और शरीर में प्रसन्नता और स्फूर्ति थी बेलगराद का स्वच्छन्द स्वर्णिम तरुण जीवन बितातीं, बनकर सर्बियाई शब्दों को खींच कर बोलतीं कि 'र' कुछ मन्द और कोमल हो जाये : न तो उनकी पढ़ाई ख़त्म होने को आती और न उनका विवाह होता और एक महीने में वह उतना फूँक डालतीं जितना उनके बाप दो में कमायें।

सशक्त सुन्दर नाव पानी को बड़े मज़े में काट रही थी और जब वह ज़ेको के सामने से सनसनाती गुज़री तो उसने देखा : एक जवान लड़की की सुडौल बादामी बाँह फैली हुई है और उसके सिरे पर मानो वही खिले फूल की तरह एक शोख़, रंगबिरंगा पेरिसी रूमाल फड़फड़ा रहा है।

३

सावा का परिचय पाये ज़ेको को सात वर्ष हो चुके थे और आठवाँ सीज़न चालू था कि एक और परिवर्तन घटा; और उसका व्याकुल जीवन कुछ और सह्य हो गया।

उसकी साली का परिवार डोरोश्की-परिवार शबात्स से बेलगराद आकर रहने लगा।

प्रथम महायुद्ध के शेष होने पर जब इंजीनियर डोरोश्की और मारिया शबात्स चले गये थे तो कुछ दिन तक ज़ेको के पास चिट्ठी-पत्री आती-जाती रही। पर यह सिलसिला अधिक दिन नहीं चला। जब इंजीनियर काम से बेलगराद आता तो मार्गरीटा और ज़ेको क यहाँ मिलने आता और अपनी संक्षिप्त भाषा में शबात्स का हालचाल बता जाता। उनके पास चार बच्चे थे। आमदनी भरपूर थी। कारख़ाने के पास ही एक मकान में, जिसमें बाग़ भी था, वे रहते, अच्छा खाते और अच्छा पहनते। बाग़ की सेवा डोरोश्की अपने हाथों करता।

शबात्स के सत्रह साल के प्रवास में मारिया को ज़ेको ने सिर्फ़ एक बार देखा। एक साल सर्दियों में डोरोश्क कम्पनी की गाड़ी में बेलगराद आया था और लौटते हुए ज़ेको को अपने साथ लिवा ले गया था। जब उनका सबसे बड़ा लड़का फ़िलिप हाई स्कूल कर चुका तो उन्होंने बेलगराद आकर रहना तय किया। यह १९३८ के शरद की बात है।

उन्होंने टापचाइडर पहाड़ी पर मकान ढूँढ निकाला : यह उन अनाम खड़ी गलियों में से एक पर था जो टालसटाय मार्ग को जगह-जगह से काटती हैं। पुराने ढर्रे का छोटा-सा मकान था; उस पर अटारी बनी थी और बाग़ भी था जिसे सँवारने में इंजीनियर छछूंदर की तरह जुटा रहता। दोनों पार्श्व में शानदार अट्टालिकाएँ थीं जिन्हें प्रसिद्ध वास्तुकारों ने बनाया था और इनके चारों ओर प्रशस्त उपवन थे जिनमें ख़ूबसूरती के साथ क्यारियाँ काढ़ी गयी थीं—सिल्वर फ़र, मैगनोलिया और न जाने कौन-कौन-सी जापानी झाड़ियाँ लगी हुई थीं।

मारिया बहुत नहीं बदली थी, सिर्फ़ ज़रा दुबली हो गयी लगती थी मगर दुबली भी वह अनुपात से हुई थी। उसका चेहरा झुर्रियों से भर गया था। जब वह हँसती या बोलती तो ये कभी मिट जातीं, कभी झलकने लगतीं। दोनों कनपटियों पर सफ़ेदी आ चली थी मगर माथे पर का गुच्छा अब भी काला और चमकदार था जैसे नम हो। वह वैसी ही प्रफुल्ल और जीवंत थी जैसे पहले थी। बच्चों को वह समर्पित थी किंतु उसकी ममता में उस दिखावट-बनावट की झलक भी न थी जो बहुधा बाहर की दबी-ढँकी भली स्त्रियों में पायी जाती है, जैसे कि उनकी दबी हुई शोखी इस रूप से फूट निकली हो।

डोरोश में भी कोई परिवर्तन नहीं दिखा सिवाय इसके कि उसकी शरीरिक और मानसिक विशेषताएँ कुछ और उजागर हो गयी थीं—वह और भी अधिक चुप्पा हो गया था और उसकी कमर कुछ और झुक गयी थी।

ज़ेको को सबसे ज़्यादा ख़ुशी बच्चों को देखकर हुई। कई साल बीते जब वह शबात्स गया था तो वे सब ढेर भर नन्हे-मुन्ने थे और उसके लाये उपहारों के लिए आपस में झगड़ रहे थे। खैंची भर अरतन-बरतन की तरह वह कमरे में भरे हुए थे। हर एक बढ़ रहा था और बाढ़ के एक दौर में था—जैसे नयी दूब के अँखुए फूट रहे हों और उन्होंने धरती को अपनी हरियाली से ढँक लिया हो। उनके भीतर-बाहर कहीं कुछ ऐसा नहीं था जो स्थिर हो।

अब सब बच्चे स्कूल जाने वाले हो गये थे। सबसे बड़ा फ़िलिप अपने पिता की तरह लम्बा, झुका और शान्त था पर उसके चेहरे पर अक़लमंदी की झलक थी जो डोरोश के नहीं थी। उसके बाद थी लड़की येलित्सा, फ़िलिप से दो बरस छोटी। भूरे बाल, भूरी आँखों वाली यह छरहरी तगड़ी लड़की अपनी कक्षा में लैटिन में सबसे तेज़ और मारिया के शब्दों में 'मेरे बच्चों में सबसे अधिक रोचक' थी। छुटपन से ही इस लड़की में ईश्वरदत्त प्रतिभा थी। येलित्सा से छोटी थी दानित्सा; गुड़िया जैसी गोलमटोल और पढ़ने से ज़्यादा खेलने की शौक़ीन। सबसे छोटा था ड्रागान जो अभी प्राथमिक स्कूल से निकला था। मारिया इस 'चौक़ड़ी' की सेवा में अथक भाव से रात-दिन उनकी इच्छाएँ पूरी करती रहती।

डोरोश-परिवार बेलग्राद क्या आया कि ज़ेको को एक और घनी छाँह मिल गयी, जहाँ वह सर्दियों में सावा के 'बाजार बंद' होने पर जा सकता था।

उनके घर में निश्चितता और शांति रहती सिवाय तब-जब बच्चे बीमार पड़े हों या नम्बर कम आने से उदास हो रहे हों या फिर डोरोश के वेतन के भीतर कोई अप्रत्याशित खर्च निकालना कठिन हो रहा हो। यह उन घरों में से था जहाँ चिंताएँ-बाधाएँ क्षण भर में परे कर दी जाती हैं और हँसते-खेलते वक्त काटना जहाँ का नियम होता है।

कैसा ही मौसम हो, ज़ेको इनके यहाँ सप्ताह में कम से कम एक फेरा ज़रूर लगाता, आम तौर से शाम को जब डोरोश काम से वापस आ गया हो। उसकी

यात्रा का सब कुछ सुखद होता : उनके घर तक पैदल जाना, मिलना और लौटना भी ।

चेसनट के वृक्षों तले ज्वेज़्दा जाने वाली खड़ी चढ़ाई चढ़ते हुए वह देखता, सावा अपने द्वीपों सहित फैली हुई है। दूसरी तरफ़ दीखता ज़ेमून नगर, स्त्रेम का मैदान, डेन्यूब का चौड़ा पंजा और उसका ऊँचा आलोकित उत्तरी तट उसे अपार विश्व के खुले कपाट-सा लगता । चारों ओर निहार कर उसे कैसी तृप्ति मिलती : यथार्थ से पलायन की वह संतुष्टि, क्षण भर की वह आत्म-विस्मृति, ज़ेको जैसी प्रकृति और परिस्थिति के मनुष्य के लिए कितनी प्राणप्रद थी। और जब टालसटाय मार्ग से चलता हुआ वह अन्ततः उस पतली नामहीन गली में पहुँचता जहाँ डोरोश रहता था तो यह तृप्ति उल्लास बन जाती ।

सर्दियों में रसोई घर में और गर्मी में दहलीज़ में वह मारिया और डोरोश के साथ चाय पीने बैठता । इस मकान में उसके अपने घर से कहीं कम सामान था और यहाँ न जाने क्यों हर चीज़ सहज और सुगम जान पड़ती। चाय ज़्यादा स्वादिष्ट थी, केक ज़्यादा मज़ेदार, बातें ज़्यादा खुशमजाक़ और बातों और ख्यालों के बीच होते थे क़हक़हे जो मार्गरीटा के घर में कोई जानता न था। बच्चे घर आते तो स्कूल की समस्याएँ बताने लगते। नन्ही-सी चौकन्नी मारिया अपने लहीम-शहीम पति के पास बैठती और अपने छोटे मेहनती हाथ मेज़ पर रख लेती ।

सब बच्चों में येलित्सा ज़ेको को बहुत अच्छी लगती थी : मारिया को भी हालाँ कि वह कभी कहती न थी। लेकिन येलित्सा में बेलगराद आने के एक वर्ष के भीतर परिवर्तन दिखायी देने लगा। हाई स्कूल का छठा दर्जा पास करके गर्मियों की छुट्टी में वह अपनी कक्षा के साथ समुद्र तट की सैर को गयी। वहाँ से लौटी तो उसका रंग धूप में तप गया था और वह कुछ बड़ी-बड़ी लगने लगी थी; चेहरे पर एक स्थिर तीखापन आ गया था और आँखों का दुर्लभ भूरापन, जो पहले हर समय विविध प्रकार की छटा बिखेरता रहता था, अब स्फटिक के समान कठोर हो गया था। उसके भरे-भरे ओठ पतले और गुलाबी हो गये थे। डोरोश जैसी उसकी चौड़ी मुसकान, जिसमें उसके मजबूत सुन्दर दाँत चमक उठते, अब नहीं थी; उसका बालसुलभ चापल्य और सहज विश्वास लोप हो गया था; केवल कभी-कभी, छुट्टियों की तरह, प्रकट होता था। अब वह हरेक से

आँखें मिला कर बात करती थी। ओठ कसे बंद रहते और चेहरा सधा रहता। जब-तब जो कुछ अब नहीं था उसके अंतिम अवशेष जैसी हँसुली के ऊपर कण्ठ के मर्मस्थल में कोई चीज़ मानो एकाएक उभर आया करती।

ये सब परिवर्तन निश्चय ही अकस्मात् नहीं हो गये थे, एक-एक करके उन दिनों हुए थे जब वह पाँचवीं कक्षा में पढ़ रही थी। ज़ेको ने इन्हें लक्ष्य भी नहीं किया, मारिया ने उसे दिखाया। उस बच्ची ने, जिसे वह अपना जैसा मानता था, बड़े होकर अपने आपको उसी से नहीं, अपने घर भर से एकदम अलग कर लिया था और वह हर चीज़ निर्मम-तटस्थ दृष्टि से देखने-परखने लगी थी। सिर्फ़ बड़े भाई से उसका कुछ अपनापा बचा था किंतु उससे भी वह दो-टूक, खरा व्यवहार करती। इस तरुण प्राणी का मानस-केंद्र किसी अन्य अव्यक्त अज्ञात स्थल पर पहुँच गया था। सहसा यह स्पष्ट हो गया कि ऐसा कुछ हो चुका था जो ज़ेको की आँखें देख ही न पायी थीं—जैसे कि बंद रही हों।

वह क्रिसमस में उसके लिए एक विख्यात समकालीन कवि का चमड़े की जिल्द बँधा संकलन ले आया। पुस्तक उसे लौटाते हुए येलित्सा ने रूखे स्वर में कहा :

"आपको धन्यवाद, ज़ेको काका। देखिये बुरा न मानियेगा लेकिन बात यह है कि मैं न तो क्रिसमस का उपहार लेती हूँ न इस तरह की किताब पढ़ना चाहती हूँ।"

अपना अचरज और असमंजस छिपाने की कोशिश में ज़ेको ने बात हँसी में उड़ा देनी चाही लेकिन नहीं उड़ा सका।

"अच्छा, तो क्या हुआ···किताब तो रख लो···"

"'रख लो' क्या माने? मैंने आपसे कहा नहीं कि मैं नहीं रख सकती।"

और उसने किताब मेज़ पर इस तरह रख दी जैसे कि सड़क पर पड़ी मिली कोई अनजान चीज़ हो।

ऐसी घटनाएँ और बातचीत डोरोश्की के यहाँ आये दिन होने लगीं। जब माता-पिता बात करते तो येलित्सा पहले चुप रहती फिर उनका एक वाक्य चुनकर उसके दो खण्ड करके दो परस्पर विरोधी बातें तर-ऊपर रख देती, उनसे निष्कर्ष निकालती और तब उन्हें इतमीनान से ख़ारिज कर देती जैसे वे टूटे काँच के टुकड़े हों।

× × ×

हमारे घरों में ज़्यादातर लोग इस तरह बोलते रहते हैं जैसे कि सोच रहे हों। यह वार्तालाप विक्षुब्ध जल की भाँति बहता जाता है और बोलने वालों के जीवन में जो कुछ भी अस्पष्ट, असुरक्षित और अनगढ़ होता है उसे साथ बहाये लिये जाता है; यही सब निथर कर और छन कर वार्तालाप में बच रहता है। बहुत करके इससे कभी कोई हल नहीं निकलता। यह जारी रहता है और साथ ही समय, परिस्थिति और संयोग जिसे कहते हैं, उसकी प्रक्रिया जारी रहती है; हल अपने आप निकल आता है।

मेज़ पर येलित्सा निर्मम और निराकार भाव से इस पारिवारिक वार्तालाप की धज्जियाँ उड़ा देती। भाई से ज़ोर-ज़ोर से बहसें होतीं और छोटी बहन दानित्सा को तो वह रुला कर ही छोड़ती।

"चलूँ अपनी सफ़ेद कमीज़ धो डालूँ," दानित्सा जमुहाई लेकर कहती।

"जाओ, धोओ जा कर," येलित्सा का जवाब आता।

"लेकिन मेरा उठने को जी नहीं चाहता, कल मुझे कक्षा के साथ संगीत-सभा में जाना होगा और मेरा मन नहीं हो रहा।"

"मन नहीं हो रहा है तो न जाओ।"

"लेकिन जाना होगा; प्रधाना जी, मेरे मित्र…"

"संगीत-सभा में होगा क्या ?"

दानित्सा घबरा कर रह जाती।

"मुझे क्या मालूम क्या होगा।"

"यह बिल्कुल ग़लत तरीक़ा है। प्रधाना जी और मित्रों से तुम्हें क्या मतलब ? मतलब तो यह है कि तुम्हें संगीत-सभा में जाना है या नहीं। इसको अपने मन में तय कर लेना चाहिए कि संगीत-सभा तुम्हें पसंद है या नहीं और तब जाने या न जाने का फ़ैसला हो जायेगा।"

"अच्छा, बस अब आप रहने दीजिये…"

दानित्सा घबरा कर, लाल हो कर मुँह दूसरी तरफ़ घुमा लेती और तमतमायी हुई मेज़ छोड़कर चली जाती।

पिता येलित्सा को बरजती हुई दृष्टि से देखते।

"इस बच्ची को उपदेश सुनाकर सताने की तुम्हें क्या ज़रूरत थी ?"

"ये उपदेश नहीं हैं। उपदेश ये ठीक बातें हैं।"

एक क्षण के लिए अप्रीतिकर शांति छा जाती है, एक-एक करके वे लोग मेज़ छोड़कर उठ जाते।

यह दृश्य कभी इससे भी तीखा और कभी इससे कुछ नम्र होकर डोरोश-परिवार की दिनचर्या में नियम से घटित होता रहता। घर में माँ ही एक व्यक्ति थी जिसके प्रति येलित्सा ने तनिक भी अधैर्य कभी नहीं दिखाया यद्यपि उससे भी एक वह प्रकार से उदासीन और विमुख ही रहती। मारिया चुप रहती। बस सिर्फ़ परिवार के तर्क-वितर्क सुनती रहती।

येलित्सा के स्वभाव में परिवर्तन के ये बाहरी लक्षण थे। उसके भीतर क्या हो चुका था, यह न तो स्पष्ट था और न बताया जा सकता था।

किंतु वर्ष शेष होते-होते रहस्य खुल गया। इसका आविष्कार करने वाली थी मार्गरीटा।

"बहन के यहाँ जाने का मेरा जी नहीं करता।" वह एक दोपहर को खाने पर बोली। "मारिया ख़ब्ती है, एकदम ख़ब्ती है; और डोरोश दब्बू है। वह हमेशा दबा रहा है; और बच्चे, उन्हें साम्यवाद का रोग लग गया है। डोरोश का भतीजा सिकुट्टी सिनीशा यह रोग लगाने वाला है। और वह दुष्ट कुतिया येलित्सा, उसने भाई और माँ दोनों का दिमाग़ खराब कर दिया है। लोग अँगुली उठाते हैं कि सारा घर कम्युनिस्ट हो गया।" निवाला ज़ेको के गले में अटक गया और वह एकाएक मारिया और उसके घर को ख़ास तौर से बच्चों को एक अनजान खतरे से बचाने के लिये, उनका साथ देने के लिए, उन के साथ एक होने के लिए छटपटाने लगा हालाँ कि वह बिल्कुल नहीं जानता था कि मामला क्या है।

तमतमाया हुआ, हकलाता हुआ उसने मार्गरीटा के आक्षेपों का विरोध किया। और दावा किया कि मारिया एक समझदार औरत और धनी माँ है और येलित्सा एक बहुत ही होनहार संतान है जो लड़कपन की उस दशा से गुज़र रही है जिसमें किशोर मन उद्विग्न रहता है।

"और फिर यह बताओ कि लड़के अगर अपने वक़्त के हिसाब से न चलें तो क्या करें?"

"अच्छा, तुम भी कम्युनिस्ट हो गये हो क्या? मालूम होता है कम्युनिस्टों के पीछे-पीछे चलने वाले बेवकूफ़ों में तुम्हारा भी नाम लिख लिया गया है।"

"मैं नहीं हूँ मगर···"

"अगर-मगर कुछ नहीं···तुम ज़रा वहाँ आना-जाना कम करो, उस घर पर शक किया जाता है। उस दिन पार्टी में महापौर की पत्नी ने साफ़-साफ़ कहा।"

"बस करो मार्गरीटा, ईश्वर के वास्ते बस करो।"

"ईश्वर की दुहाई मेरे सामने न दो। क्या नाम है कि 'अड्डे' पकड़े गये हैं और 'कम्युनिस्ट कोष' का भेद मिला है और मिला कहाँ, रुमस्काँ मार्ग के बड़े-बड़े घरों में। अमीरों के बच्चों को खाने की कमी नहीं और काम ऐसे हैं जैसे भिखमंगों के होते हैं। और उनके माँ-बाप की आँखों को दीखता नहीं। मेरी बेवकूफ़ बहन की तरह।"

टिगार ने जमुहाई ली और लम्बी अँगड़ाई लेकर कलाई की घड़ी पर नज़र डाली। ज़ेको को लगा कि उसने जो कुछ खाया है गले में लौटा आ रहा है और उसका दिल किसी प्रबल अशुभ उद्वेग से धड़क रहा है जिसमें आक्रोश भी है, भय भी और सबसे अधिक यह इच्छा है कि वह जहाँ है, वहाँ से चला जाये।

४

जो अंतर्राष्ट्रीय युद्ध अगस्त १९३९ में पोलैंड पर जर्मन आक्रमण से आरम्भ हुआ वह ज़ेको के घर के लिए किसी महत्त्व का न था। बहुत-से और घरों की तरह वहाँ भी अखबार कभी-कभार सरसरी नज़र से देखे जाते। ज़ेको शीर्षकों पर दृष्टि डालता, टिगार खेल-कूद का पृष्ठ खोल कर बैठा रहता और मार्गरीटा विज्ञापनों और विवाह और अंत्येष्टि की सूचना पढ़ लिया करती। 'राजनीति से लगाव' किसी को न था। जो हो, उस शरद में मार्गरीटा ने आटा, शक्कर और 'रहनेवाली' तमाम जिन्स खरीद डाली और ज़ेको रेडियो पर विदेशी स्टेशन सुनने लगा जो पहले कभी सुनता न था। नतीज़ा यह हुआ कि वह बिना यह चिंता किये कि कब और कैसे यह सब आरम्भ हुआ, पोलैंड के भविष्य के प्रति अत्यंत

सतर्क हो गया।

यहाँ भी मार्गरीटा उसके आड़े आयी। झल्लाकर वह रेडियो बंद कर देती, ज़ेको को घूरती और फ़रमाती :

"तुम फ़िज़ूल बिजली खर्च कर रहे हो। पोलों के लिए बड़ा दर्द है तो वहीं जाओ और उनके साथ बैठकर रोओ। मैं तो खुश हूँ कि हिटलर ने उनको दुरुस्त कर दिया।"

इतना कहकर वह कुहनी तक उघरी बाँह झटक कर बताती कि लोग और राष्ट्र किस तरह 'दुरुस्त' किये जाते हैं।

और ज़ेको अपने सामने उसकी वह थुलथुल सलोतर बाँह देखता रह जाता। वे मार्गरीटा की नृशंस पीली बाँहे हैं—मगर वे भारी और तगड़ी भी हैं—बाँहें जो शासन करती हैं, लेती, लूटती हैं पर श्रम कभी नहीं करतीं और देतीं शायद ही कभी हैं, उनकी आकृति में मानुषिक प्रायः कुछ नहीं है। कोहनियों पर घिसे पैबंदों जैसे तेलौस, मैले काले दाग़ हैं जिन्हें देखकर ऊँट या बंदर की खाल की याद आती है।

अन्ततः ज़ेको उस बाँह पर से दृष्टि हटा लेता, उठ पड़ता और बिना बोले कमरे से बाहर हो जाता।

फिर कई दिन तक पोलैंड, जर्मनी या युद्ध का कोई उल्लेख न होता। युद्ध का असर हुआ था तो यही कि मार्गरीटा दिन-रात पेंचीदा मंसूबे बाँधा करती और ज़ेको के मन में गोपन विचार आया करते जिनका अर्थ उसे स्वयं स्पष्ट नहीं था। लेकिन सावा का हाल और था। सितम्बर की कड़ी धूप में, सीज़न के आख़िरी सैलानी खुले आम पोलैंड के दुर्भाग्य पर दुःख प्रकट कर रहे थे। सावा-वासी यह बातचीत कान लगाकर सुनते हालाँ कि ख़ुद वह इतने होशियार थे कि अपने मुँह से कुछ कहना उन्हें कठिन जान पड़ता।

जब जर्मनों की विजय का प्रसंग होता तो स्टाँको दारू के घूँट ज़रा जल्दी-जल्दी लेता और मूँछें पोंछकर कहता, "ठीक है, भाई ठीक है···"

यह 'ठीक है' वह इस तरह खींचकर एक विशेष अर्थ के साथ कहता जो शायद स्वयं उसे स्पष्ट न था किंतु इतना निस्संदेह प्रकट करता था कि वह वर्तमान स्थिति से प्रसन्न नहीं है और कोई बेहतर हल चाहता है।

स्टाँको का नौकर इससे कहीं अधिक मुखर था और जिन अलंकारों से अपनी

बात कहता था उन्हें दोहराना आसान नहीं है; उसके वक्तव्य से गालियाँ निकाल दें तो राजनीतिकों और राष्ट्रों के नाम के अतिरिक्त कुछ न बचेगा।

जो लोग नऊम के ढाबे के सामने या अखरोट वृक्ष के नीचे एकत्र होते, उनका अभिमत निर्विवाद होता; हाँ, उसे अभिव्यक्त वे विविध प्रकार से करते।

कप्तान माइका बाक़ी सबसे अधिक मौन और शांत रहता और हर समय गहरे विचार में मग्न लगता : बार-बार वह भाँति-भाँति के स्वर में एक ही बात कहता, "देख लेंगे,...सब देख लेंगे।"

चिढ़कर मिलान स्ट्रैगराट्स ने पूछा, "क्या देख लेंगे ?"

"देख लेंगे...गाना नहीं सुना...

बेटे का होगा बपतिस्मा
तो बाप को पता चल जायेगा"

"हूँ" गुर्राकर स्ट्रैगराट्स ने कहा। सबके सब ठठाकर हँस पड़े।

टापचाइडर पहाड़ी पर मारिया के घर में भी युद्ध पर बहस हो रही थी। फ़िलिप और येलित्सा संसार के घटनाचक्र में गहरी दिलचस्पी दिखा रहे थे मगर वे अपने मन की या तो मन ही में रखते या अपने स्कूल के साथियों से कहते; बड़े उनका भेद न पाकर आशंकित हुआ करते। मारिया चिंतित थी, यह उसकी सायास मुस्कान से जाना जाता था। किंतु, वह कहती कुछ न थी।

घर लौटकर ज़ेको को मार्गरीटा से मालूम हुआ कि 'युद्ध-भंडार' की अभिवृद्धि में उसने कौन-सा नया तीर मारा है।

"अब मेरे पास अट्ठाईस पौंड धोबिया साबुन हो गया। कितना उम्दा साबुन है। बिल्कुल मलाई, बाजार भर में इससे बढ़िया न मिलेगा। चले लड़ाई, चाहे तीन साल चले, हमको कमी नहीं होने की।"

यह बखान वह अपने लड़के से कर रही थी मगर वह दो क्या एक कान से भी नहीं सुन रहा था।

और ज़ेको सोच रहा था, जाने कितने लोग हैं जो मार्गरीटा की तरह ऐसे रहते हैं। जैसे कुछ लोगों का काम है कि जिंदगी भर युद्ध करते रहे और हमारा काम यह है कि हम इतनी रसद जमा कर लें कि जब तक दूसरे लड़ते रहें और युद्ध के पहले वाले दिन न लौट आयें तब तक चलती रहे।

अतएव युद्ध का पहला वर्ष और बहुत-से घरों की तरह इस घर में भी 'युद्ध' की नहीं 'भंडार' की चिंता में गुज़र गया।

इस तैयारी की दशा में बेलगराद रविवार ६ अप्रैल, १६४१ को दूर से आती साइरन-ध्वनि के शोर से जग पड़ा : तुरंत बाद बम के धमाके सुनायी पड़े जो जर्मन वायुसेना, युद्ध की घोषणा के बिना बेलगराद के अरक्षित नगर पर गिरा रही थी।

और उस दिन अपने ही घर में पहली बार ज़ेको ने गृहस्वामी और कर्त्ता की सम्मान्य भूमिका ग्रहण की। उसके निर्देश सुने ही नहीं माने भी गये।

साइरन तड़के ही बजने लगा था पर ज़ेको की आँख उससे नहीं मार्गरीटा की चीख़-पुकार और कोठे पर के घर में भगदड़ के शोर से खुली थी। आँख खोलते ही उसने एक अद्‌भुत दृश्य देखा। उसका लड़का रात का पाजामा और ऊपर से गरम कोट पहने न जाने कहाँ से आया सैनिक टोप सर पर रखे खड़ा था। टिगार की आस्तीन पकड़ कर मार्गरीटा फ़र्श पर घुटने टेके बैठी विलाप कर रही थी। वह भी रात का अंगरखा पहने थी, कंधे पर दुशाला पड़ा था मगर पाँव खाली थे। घिघियाते हुए वह अपने लड़के से गैस मास्क खोज लाने को कह रही थी और लड़का ग़ुस्से से जवाब दे रहा था।

"क्या मास्क-मास्क लगा रखी है ! कपड़े पहनो और नीचे जाओ।"

नवयुवक ने अपने को माँ से छुड़ा लिया और रफ़ूचक्कर हो गया। मार्ग-रीटा रेंगकर ज़ेको के पलंग के नज़दीक आयी। उसके पाँव उसके लम्बे अंगरखे में अरझ रहे थे और वह बेहाल थी।

"यह रहे···ज़ेको, दैया रे, कहाँ गये मास्क ?"

ज़ेको उठ पड़ा। झटपट उसने कपड़े पहने और मार्गरीटा को भी पहनवाये। तेज़ बुखार की तरह थरथर काँपते हुए मार्गरीटा अपना सारा वज़न लिये-दिये उस पर टिक गयी और बार-बार कहने लगी :

"ज़ेको, जल्दी करो, जल्दी करो !"

फिर वह एकाएक चीख़ पड़ी :

"बटुआ, ज़ेको, मेरा बटुआ !"

ज़ेको ने खोज कर उसका भारी चमड़े का बटुआ दिया और अपनी पत्नी को फिर से संभालकर तहख़ाने की ओर ले चला।

"डरो मत; देखो, अब शांति हो गयी, समझीं। घबराओ मत, घबराओ मत।"

इस प्रकार उस बदहवास औरत को सँभाले हुए उसे ले जाना पड़ा। यह मोटा अपरिचित शरीर कितना निष्प्राण, कितना लिद्दड़ है, उसने सोचा।

तहख़ाने में हाय-तोबा मची हुई थी। औरत-मर्द आपस में बमचख कर रहे थे और बच्चे वक्त से पहले जग जाने से रोये चले जा रहे थे।

मार्गरीटा ने जैसे ही अपने लड़के के सर पर टोप देखा उसने ज़ेको की बाँह छोड़ दी और फिर चीख़ने लगी।

"माइकेल, माइकेल," वह चिल्लायी मगर टिगार ने बिना उसकी ओर मुँह किये टका-सा जवाब दिया

"बैठ जाओ और मुँह बंद रखो।"

ठीक उसी समय पहला बम फटा; पीछे ताबड़-तोड़ कई धमाके सुनायी पड़े, इतने कि एक से दूसरे में फ़र्क करना मुश्किल था। लगता था कि धरती उबलते ज्वालामुखी की भाँति उफना रही है और कुल इमारत भहरा कर ढेर हुई जा रही है।

एक धमाका बहुत निकट था और उसने मकान को मानो हुमासकर झक-झोर डाला। उसने दिल दहला दिया। भय के मारे लोगों के दाँत बजने लगे।

'मार दिया स्टेशन को' मकान के चौकीदार ने अविकल, लगभग हास्या-स्पद स्वर में कहा।

दारोग़ा वहाँ मार खाये आदमी की तरह खड़ा आँसू पोंछ रहा था और बन-बनकर उसाँस ले रहा था। ज़ेको ने ज़रा ध्यान से देखा तो समझ में आया कि वह नशे में धुत है। उसने उसे अपने औज़ार लाकर अपने साथ छत पर चलने को कहा।

आगे-आगे ज़ेको कंधे पर बेलचा रखे चला। काँपते और लड़खड़ाते क़दमों से दारोग़ा पीछे हो लिया।

जब वे बरसाती पर पहुँचे तो दारोग़ा ठहर गया; हकलाकर बोला:

"कहीं···कहीं वे फिर न आ जायें?"

ज़ेको ने उस पर ज़ीने के ऊपर से निगाह फेंकी और अकेला ही ऊपर चढ़ गया।

बरसाती का दरवाज़ा खोलते ही उसे सूखी ठंडी हवा में धूल का अनु-

भव हुआ। छत पर निकल कर उसने शहर पर नज़र दौड़ायी तो मालूम हुआ कि किसी अजनबी देश में है। जानी-पहचानी छतों की जगह उसके सामने पीली गर्द की पारदर्शी धुंध फैली हुई थी; ऊँचे पर गहरा नीला आकाश तो दीखता था पर नीचे धरती कहीं नज़र न आती थी। आँख को कुछ सूझता न था और कानों में विचित्र ध्वनियाँ, छोटे-मोटे धड़ाके और दबे-दबे धमाके गूँज रहे थे मानो दैत्याकार मनुष्य भीमाकार औज़ारों से चारों ओर के धुंधभरे शून्य में कोई चीज़ ठोंक-पीट रहे हों।

ज़ेको ने अटारी का मुआयना किया; विस्फोट से उड़कर वहाँ चिन्गारियाँ और गुम्मे आ गिरे थे पर किसी अनफूटे बम का या किसी खतरनाक चीज़ का कोई चिह्न नहीं था। ज़ीने से उतरते हुए ज़ेको को दारोग़ा सीढ़ियों पर ठीक वहीं खड़ा मिला जहाँ वह उसे सुबकते हुए छोड़ गया था; जैसे रोते बच्चे पर ध्यान नहीं दिया जाता ऐसे ही वह उसकी अनदेखी करके आगे बढ़ा और तहख़ाने में उतर गया।

प्रकाश की धारा ने उसको घेर लिया। सबकी नज़रें उस पर आ टिकीं और चारों तरफ़ से सवाल पर सवाल पूछे जाने लगे। उसी क्षण प्रसिद्ध हो गया कि ज़ेको वह आदमी है जो डरना नहीं जानता।

प्रारम्भिक आक्रमणों में किसी समय संक्षिप्त विराम आने पर ज़ेको अपने सैनिक कमान में हाज़िरी देने तमाम रास्ता पैदल चलकर ज्वेज़्दा पहुँचा। मगर वहाँ कोई न था। स्पष्ट ही कमान पलायन कर गयी थी।

और भी आक्रमण होते रहे तथा बदहवास लोग तहख़ाने की ओर भागते रहे और घर में चिल्ल-पों मचती रही, किन्तु स्वयं ज़ेको फिर कभी तहख़ाने में नहीं छिपा। वह अपने निर्जन घर में, भूख-प्यास भूलकर अपने मन के नये विचारों में अकेले डूबा बैठा रहता। वह इतना अभिभूत था कि उन क्षणों में जिनमें शायद भय उसे आप्लावित कर तहख़ाने को खदेड़ ले जाता, चिन्तन का आवेग ही उसे रोक कर रखे रहा।

इस प्रकार जले-झुलसे-उजड़े बेलग्राद में जर्मन आधिपत्य के अंतर्गत जीवन का एक नया चरण आरम्भ हुआ।

मार्गरीटा को अपने भय और उन अनेक रोगों से पार पाते बहुत समय लगा

जो उसके कथनानुसार तहख़ाने में बीते कुछ दिनों के मध्य उसको लग गये थे। और टिगार भी अब निरीह और निष्क्रिय हो गया था। परन्तु एक दिन मार्ग-रीटा का चचेरा भाई ज़ेमून से आ टपका और बड़े जोश के साथ जर्मनों के गुणों का और क्रोशिया के तथाकथित स्वतंत्र राज्य के सुखों का जिसमें ज़ेमून स्थित था, बखान करने लगा। कालान्तर में, मार्गरीटा और टिगार का बेलगराद के बाहर आना-जाना शुरू हो गया और तरह-तरह का सामान, विशेष कर के खाद्य ख़रीदने अक़्सर ज़ेमून की यात्रा होने लगी।

वर्दीधारी लोगों ने उनके घर आना शुरू कर दिया (ऐसे अवसरों पर ज़ेको अपने कमरे का द्वार अंदर से बंद कर लेता)। टिगार नगरपालिका में व्यस्त हो गया। वह दायीं बाँह पर सम्मानसूचक हरा पट्टा बाँधे रहता। मार्गरीटा अपने दीनारों से, जिनका मूल्य गिरता जा रहा था पिंड छुड़ाने के लिए क़िस्म-क़िस्म की चीज़ें ख़रीद रही थी जो निश्चित रूप से संदिग्ध थीं।

एक दिन ज़ेको सावा किनारे भी गया, पर जिस जीवन का रस उसने कभी वहाँ लिया था उसका अब कहीं लेशमात्र न था। सब न जाने कहाँ लोप हो गये थे; केवल मिलान स्ट्रैंगराट्स उसी तरह हर चीज़ पर वही दर्पपूर्ण दृष्टि डालता उसी अख़रोट तले बैठा था। कप्तान माइका का नाम पहले उसी ने लिया और बताया कि संकट के दिनों में शायद वह कहीं बिला गया था। उसकी तिरस्कार भरी हँसी जनहीन तट पर गूँज गयी। सब कुछ अजनबी और अनजाना लग रहा था जैसे मकान सचमुच उठा कर कहीं से कहीं रख दिये गये हों। अगले ग्रीष्म में तट पर जीवन फिर जागा पर इस बार कारख़ानों में काम करने वाले कारीगर और मज़दूर नये ही लोग थे और बालू पर और बेड़ों पर धूप सेंकने वाले जर्मन थे।

घर से जितना हो सके मुक्त रहने के लिए ज़ेको टाल्सटाय मार्ग के फेरे अक्सर लगाने लगा। किन्तु वहाँ भी विभ्रम और मौन से ही उसका साक्षात हुआ। येलित्सा और फ़िलिप या तो घर से नदारद मिलते या बरसाती में होते और जब उनसे सामना होता भी तो अनमनी रूखी नमस्ते करके वे निकल जाते। उनका बाप, जो बोलने-बतलाने में कभी तेज़ न था, डर के मारे गूँगा ही हो गया था और नहीं समझ पा रहा था कि किधर जाये। मारिया अपने बच्चों के लिए चिंताकुल थी। कहती वह कुछ न थी पर उसकी निष्प्रभ आँखों में उसकी चिंता का प्रतिबिम्ब स्पष्ट था।

किसी से बोलने की इतनी उत्कंठा ज़ेको ने कभी नहीं जानी थी, और लोग थे कि बोलना ही नहीं चाहते थे।

जब उसे कोई पुराना परिचित मिलता उससे यही पूछता :

"वाह रे ईश्वर, कैसा वक्त आया है भइया।"

यही तो बात है, ज़ेको मन में कहता। हम सब एक दूसरे से प्रश्न पूछते रहेंगे। उत्तर देना कोई नहीं चाहेगा, देगा नहीं, देने का साहस नहीं करेगा।

एक रविवार को भोर के समय साराजेव्स्का मार्ग पर उसे एक मित्र जाता मिला तो वह पूछ बैठा, "क्या ख़बर है ?" मित्र ने अचरज से आँखें फाड़ कर कहा, "बहुत बुरा हाल है दोस्त, यही ख़बर है। तेराज़िए चौक जाकर अपनी आँखों से देख लो।" मित्र ने तो अपनी राह ली पर ज़ेको घर का रास्ता छोड़ शहर के बड़े चौक तेराज़िए की ओर मुड़ गया। वह नहीं जानता था कि वहाँ उसे क्या देखने को मिलेगा पर उसका समस्त अंतर उसे ठेल कर लिये वहीं जा रहा था।

बालकांस्का मार्ग पर आकर ज़ेको उस भीड़ में शामिल हो गया जो तेराज़िए जा रही थी। भीड़ में उत्तेजना थी पर प्रदर्शन नहीं था। उनमें बहुलांश पुरुष थे, उनमें से अनेक युवा थे। उस दिन असाधारण गरमी थी इसलिए वे कोट नहीं पहने थे और उनकी उजली कमीज़ों की आस्तीनें कुहनी तक चढ़ी हुई थीं।

जब ज़ेको तेराज़िए पहुँचा तो चौक पर मनुष्यों की नदी उफना रही थी। जलूस देखकर लगता था मानो यह किसी विशाल शवयात्रा का अंश हो। अपने इर्द-गिर्द के लोगों की दृष्टि का अनुसरण करने पर ज़ेको ने देखा : लोहे के लालटेन के खम्भे के सिरे से जहाँ दो शाखाएँ फूटती हैं एक रस्सी टँगी हुई है और उससे एक आदमी लटक रहा है; उसके पीछे दूसरे खम्भे से दूसरी रस्सी और दूसरा आदमी और फिर कुल चौक में इसी तरह एक के बाद एक। उसने आँखें झुका लीं और सोचा कि उलटे पाँव लौट जाये, मगर फिर उसने जाना कि यह सम्भव नहीं है और उसे जलूस के साथ चलते रहना ही होगा, सब कुछ देखना होगा। और वह चलता गया और उसने सब कुछ देखा यद्यपि उन क्षणों में वह नहीं जानता था कि वह कहाँ जा रहा है और क्या देख रहा

है। उसे लग रहा था कि पैरों के नीचे पक्की सड़क उसे हुमास रही है और उसे और इस जनसंकुल भीड़ को बरबस आगे लिये जा रही है। उसकी दृष्टि एक खम्भे से दूसरे पर, एक आदमी से दूसरे पर घूमती चल रही थी : उसने देखा, उनके तन पर किसानों का पहिनावा था...तो यह था जो तेराज़िए में हुआ था।

गर्मियों की खुली धूप में ठहरी हवा में टँगे हुए मुर्दे सर से पाँव तक साफ़ दिखायी दे रहे थे। फन्दे के ऊपर उनके रक्तहीन सिर छोटे मालूम होते थे और पाँव ऐसे लटक रहे थे जैसे ज़मीन टोहना चाहते हों। उतना ही स्पष्ट ज़ेको ने देखा कि अंतीना क़हवाघर के सामने मेज़ें बिछी हुई हैं और उन पर बियर और चुंगिए सजे हुए हैं और मेहमान—जर्मन सैनिक और कुछ नागरिक बैठे हुए हैं। खम्भों के नीचे पूरी सैनिक वर्दी पहने दृढ़ जर्मन सैनिक संतरी खड़े थे मानो इस्पात के, पत्थर के या उससे भी कठोर किसी धातु के बने हों। और ज़ेको को लगा कि वह चलता हुआ कालीन जिस पर वह तेराज़िए पहुँचने पर क़दम रख चुका था उसे अनायास उन विदेशी संतरियों में से एक तक ले जायेगा और वह उससे जाने-अनजाने टकरा जायेगा। यह टकराव तेराज़िए में वाक़ई हंगामा पैदा कर देता। वह संतरी के बिलकुल पास आ गया था, और पास और पास···और फिर उसने उस सशस्त्र व्यक्ति की समस्त कठोरता और अपनी समस्त दुर्बलता एक क्षण के लिए एक साथ अनुभव की और उसने देखा कि भीड़ के साथ वह भी उससे आगे निकल गया है। गुज़रते वक्त उन दोनों के बीच कुछ इंच का ही अंतर था पर वह गुज़र तो गया ही था।

वही भीड़ जो धकेल कर उसे संतरी के भयंकर निकट ले गयी थी अब उसे दूर लिये चली जा रही थी। अब जाकर उसे मालूम हुआ कि उसने दाँत भींच रखे हैं और मुट्ठियाँ कस ली हैं। वह तेज़ चलना चाहता था पर जलूस से अपने को अलग करना मुश्किल था क्योंकि लोग सामने से भी चले आ रहे थे; एक दुःखद कर्तव्य जैसे किसी दुर्निवार आग्रह ने उसे विवश किया कि वह फाँसी पर झूलती लाशों पर एक नज़र और डाले। चलते-चलते सिर घुमाकर उसने देखा—दो लाशें दिखीं जिनकी पीठ उसकी ओर थी और जो इमारतों के अगवाड़ों और भीड़ भरी सड़कों के चौखटे में जड़ी-सी जान पड़ती थीं।

वह और तेज़ चलने लगा। भीड़ छँटने लगी। बिना चाहे वह टापचाइडर पहाड़ी की ओर चल पड़ा। किसी से बोलने की उत्कण्ठा प्यास की तरह उसको

जला रही थी। और जब उसने सड़क पर से गुज़रते लोगों को देखा तो उसने सोचा, क्यों न ये सब यहीं घास पर बैठ जायें और जो देखकर आये हैं उसकी बात करें।

उसने मारिया को रसोईघर में खाना पकाते और दो किसान औरतों से, जो रविवार की छुट्टी मना रही थीं, गप लड़ाते पाया। बच्चे घर पर नहीं थे और डोरोश अपने हरे-भरे बैंगनों की सेवा में पसीने से लथपथ चुपचाप इस तरह जुटा हुआ था जैसे अपने डीलडौल को लिये-दिये उन्हीं में खो जाना चाहता हो।

जैसा बहुधा रविवार को होता था, मार्गरीटा दिन भर के वास्ते लड़के के साथ ज़ेमून चली गयी थी और खाना रख गयी थी कि ज़ेको गरम करके खा लेगा। आज के दिन अकेले खाने से बचने के लिए ज़ेको सब कुछ करने को तैयार था मगर आज ही मारिया ने उससे खाने को न पूछा और स्वयं कहने की ज़ेको को हिम्मत न पड़ी। उसने विदा ली और पहाड़ी से उतर चला।

प्रत्यक्ष था कि कोई बातचीत करना नहीं चाहता। सहानुभूति के अस्फुट शब्द और निराशा की छटपटाहट—बस।

और ज़ेको ने मन में कहा, जब किसी समाज पर घोर विपत्ति आ पड़ती है, जब वह सबसे अधिक व्याकुल होता है और जब परस्पर आश्रय और सम-वेदना सबसे अधिक आवश्यक होती है तभी उसी व्याकुलता के वश लोग एक दूसरे को सहारा देने और धीरज बँधाने में सबसे अधिक असमर्थ हो जाते हैं।

ज़ेको के खाली घर में अजब तरह का सन्नाटा छाया था। उसकी दीवारों के भीतर आकर उसे पूरी तरह समझ में आया कि उसने आज सवेरे तेराज़िए पर सपने जैसा क्या देखा था। वह दृश्य फिर साकार हो उठा और वह व्यथा फिर जाग उठी जो उसने पहले अनुभव की थी।

मार्गरीटा जो खाना रख गयी थी उसमें से उसने केवल कुछ पनीर, फल और रोटी ले ली। उसका उद्वेग बढ़ता गया। गर्मियों के तीसरे पहर का एकांत उस शीतल निर्जन घर में अनन्त असह्य हो उठा। कलाइयों में, गरदन में वह रक्त का स्पंदन अनुभव कर रहा था; मानो समस्त देह को, बाह्य जगत् को यह आंदोलन मथे डाल रहा था। श्लथ होकर वह लेट रहा। पीठ के बल पड़े-पड़े वह आँखें

फाड़कर सफ़ेद छत की ओर ताकता रहा; उसे लगा कि वह भी निरंतर कँप रही है—वहुत धीरे-धीरे मगर स्पष्ट रूप से; उसके नीचे सोफ़ा भी उसी लय से डोल रहा है।

ज़ेको कूद कर उठ खड़ा हुआ और कमरों में घूमने लगा। उसके चारों ओर का सभी कुछ अस्थिर हो उठा था और एक ही उद्वेग से स्पंदित हो रहा था।

वह रसोईघर में गया जहाँ खिड़की से वह पहाड़ी दीखती थी जिस पर पड़ोस का मकान खड़ा था। पहाड़ी की सीधी उजाड़ ढलान पर उसने नज़रें गड़ा दीं, वहाँ भी वही स्पंदन था।

ज़ेको ने सोचा, तेराज़िए लौट जाऊँ; जैसे कि वहीं जहाँ से यह संताप मिला है जा कर वह हिसाब चुकता कर सकता है। परंतु यह विचार उसकी उत्तेजना से उपजा था, व्यावहारिक उपाय न था। वह वहाँ जाता भी तो अकेले, इस क्षोभ को लेकर जो उसे यहाँ से वहाँ भटका रहा है, कैसे जाता।

नहीं; कोई उपाय नहीं है, कोई राह नहीं है। वे हत्या कर रहे हैं। आदमियों की जान ली जा रही है और कुछ लोग चायघरों में बैठे हैं। ठीक फाँसी के नीचे खा-पी रहे हैं और कुछ लोग घर में घुसकर बैठ रहे हैं कि देखना, सुनना, जानना न पड़े। उसने भी वही किया था पर अब वह अपने को उससे छुड़ा नहीं पा रहा था जो उसने देखा था। वह सब उसके अंतर में पैठ चुका था। उपाय की खोज में डूबा हुआ वह रसोईघर की खिड़की से नीचे बहती नाली को और सामने खड़ी सीधी पहाड़ी को देख रहा था जिसने रसोईघर में रोशनी छेंक रखी थी।

उसने देखा कि खिड़की के नीचे उसकी इमारत की दीवाल से एक पतली कगर निकली हुई है। न मालूम क्यों किस कारीगर ने इसे बनाया होगा। इस कगर के बाद थोड़ा अंतर दे कर सामने की पहाड़ी पर एक अधबना चबूतरा निकला हुआ था—बीच में नीचे नाली थी। चबूतरा ज़मीन से कोई पंद्रह फ़ुट ऊँचा था और धूप के अभाव में बौनी झाड़ियों और काई से ढका रहता था।

यह उन अनेक विचित्र वस्तुओं में से थी जो प्रारम्भिक बीसवें दशक के हमारे बेलग्रादी वास्तुकार बना गये हैं: तब हर एक को जल्दी से जल्दी जो भी मिले वह सामान लेकर बिना बहुत सोचे-समझे अपनी निजी इमारत खड़ी कर लेने की जल्दी रहा करती थी। उस समय के निर्माण की प्रवृत्ति उतावली थी, दायित्व

की भावना का समग्र विकास नहीं हुआ था और श्रम और पूंजी का मुक्त अप-व्यय करना साधारण बात थी।

ज़ेको सहसा खिड़की पर चढ़कर बाहर उसका पटरा पकड़ कर लटका और कगर पर उतर आया। उस पर सरकते-सरकते वह बरसाती पानी के पाइप तक जा पहुँचा और उसे एक हाथ से पकड़ कर कगर से पहाड़ी पर एक पाँव रख दिया। 'मुश्किल नहीं है, कुछ भी मुश्किल नहीं है।' मन में यह कहते हुए उसने पूरी ताक़त से छलांग लगायी और वह पहाड़ी के चबूतरे पर था। यहाँ वह चाहे तो बैठ भी सकता था।

उसने चबूतरे पर बरसों की ज़मा बरसाती मिट्टी और बजरी साफ़ की और बैठ गया। उसका दिल धड़क रहा था और आँखों के सामने गरमी और परिश्रम के कारण, जिसकी उसे आदत न थी, अँधेरा छा रहा था। मगर कंकरीट का यह चबतरा जो गोरैया के घोंसले की तरह नाले के ऊपर टँगा हुआ था उसके घर की छतों और दीवालों की तरह थरथरा नहीं रहा था। शायद ज़ेको भी उस स्थिति को पहुँच गया था जहाँ वह स्थिर हो जाना चाहता था।

सशंक भाव से उसने अपनी परिस्थिति का निरीक्षण किया। पड़ोसी का अख़-रोट उसके सर पर छा रहा था और साराजेव्स्का मार्ग के पुराने नीचे-नीचे मकानों की छतों के ऊपर से दूर तक का संकीर्ण दृश्य झलक रहा था—उसे सावा और डेन्यूब का संगम और उसके पीछे काले सेगडन का तीखा उभार दिखायी दिया। यह एक अभिनव दृश्य था। पहले उसने नगर को इस विचित्र कोण से कभी नहीं देखा था। इस घर में रहते उसे कई वर्ष हो गये थे किंतु इस सुन्दर सुरक्षित एकान्त स्थल में पैठ सकने की सम्भावना उसे कभी सूझी ही न थी। और इसे सम्भव करने में उसने और कुछ नहीं अपने को केवल भय से और क्षुद्र संकोच से मुक्त किया था और दोनों कगरों के व्यवधान को फँलागने का साहस किया था। ऐसे संकल्प बहुत बड़े नहीं होते किंतु ठीक समय पर किये जायें तो कभी-कभी आत्मा को बचा लेते हैं।

ज़ेको अपनी नयी परिस्थिति को विचारता वहाँ देर तक बैठा रहा। परन्तु उसके असामान्य अनुभव की ताज़गी भी उसे बहुत देर तक शान्ति नहीं दे सकी। उतनी ही देर तक दे सकी जब तक उसकी असाधारण चेष्टा से उत्पन्न थकान और उत्तेजना बनी रही और फिर सवेरे का दृश्य उसकी स्मृति में हहराता हुआ

लौट आया। उसी के साथ लौटी वह व्याकुलता जिससे वह बच कर भाग आया था और फिर निर्मम आत्म-ग्लानि : कितना बचकाना था यह विचार कि कोई लड़कों की तरह नाला फाँद कर इस पीड़ा मे त्राण पा सकता है !

उसका त्रास उसके पीछे लग गया। हाँ, वह उसके पीछे पड़ गया ! और उसका नाम लेकर पुकारने लगा। दूर से आता एक धीमा स्वर निकटतर और स्पष्टतर हो रहा था : "ज़ेको, ज़ेको···"

तब उसने रसोईघर का द्वार खुलते सुना और साक्षात् मार्गरीटा का सुपरिचित कर्कश स्वर नाले के पार से गूँजता सुनायी दिया :

"ज़ेको !"

तत्क्षण तेराज़िए का दृश्य, अपने एक-एक नृशंस चित्र सहित इस छोटे-से चौतरे पर अवतरित हो गया। ज़ेको सीधा खड़ा हो गया। शरीर काँप रहा था। मार्गरीटा रसोईघर की खिड़की में तीसरे पहर के प्रखर आलोक में प्रकट हुई। उसके सर पर टोप था और मुँह और आँखों के चौगिर्द झुर्रियों से उखड़ कर नाक और कानों के पास एकत्र पाउडर से उसका चेहरा सफ़ेद हो रहा था।

"ज़ेक···"

और वह औरत अटक गयी, अधूरा शब्द उसके मुँह में ही रह गया, आँखें अचरज से निकल पड़ीं, बाँहें उठी रह गयीं। दाहिने हाथ से उसने अपने सीने पर सलीब का चिह्न खींचने का दिखावा किया।

"ईश्वर के नाम पर···ज़ेको !"

वह उग्र रूप देखकर और यह तेज़-तर्रार बोली सुनकर ज़ेको का रहा-सहा धीरज भी जाता रहा और एक बार फिर आवेश ने उसे झकझोर डाला।

उसके सीने में तेराज़िए की प्रतीतियाँ उतर आयीं : ट्रामगाड़ियों की गड़-गड़ाहट, लटकी हुई लाशों के नीचे जमा होती भीड़ की सुगबुगाहट और अंतीना क़हवाघर के सामने की मेज़ों पर सजी रोटियाँ और छुरी-काँटे। और अब बौखलायी हुई मार्गरीटा—सम्पूर्ण दृश्य को रौंदती प्रकट हुई और उसका नाम पुकारने लगी।

रसोईघर की खिड़की पर वह औरत विफर रही थी और बक रही थी :

"धत्तेरे की—तुम वहाँ पहुँच कैसे गये, तुम वहाँ कर क्या रहे हो ?"

सिर से पाँव तक काँपते ज़ेको ने अनुभव किया : वह जवाब देना भी चाहता है और देने में असमर्थ भी है। यह अनुभव कुछ ऐसा था जैसे वह स्वप्न में दुष्ट-अधम लोगों से भीषण तर्क में उलझा अपनी सच्ची आशंका और अवज्ञा को यथाशक्ति ऊँचे स्वर में जी-जान से अभिव्यक्त करना चाह रहा है किंतु उसे न तो चीख़ने के लिए स्वर मिल रहा है न मारने के लिए शक्ति। वह रसोईघर की खिड़की की ओर झुका और ज़ोरों से हाथ हिला कर मार्गरीटा पर दबे-बैठे गले से चीख़ा :

"छोड़ दो मुझे तुम सबके सब ! जाओ, फाँसी को देखो जाकर, छोड़ दो मुझे, मैं कहता हूँ तुम सबके सब !"

उसका स्वर मुश्किल से सुनायी दे रहा था पर उसका चेहरा लाल हो आया था, आँखें जल रही थीं और उसके हाथ ऐसे चल रहे थे जैसे हमला कर बैठेंगे।

मार्गरीटा खिड़की पर से थोड़ा-सा पीछे हट गयी और चबूतरे पर का आदमी एक पाँव पर से दूसरे पर उछलने लगा क्यों कि अपने क्लेशकर उद्वेग की निवृत्ति के लिए जिस चहलक़दमी की उसे ज़रूरत थी उसके लिए वहाँ जगह न थी। कहीं कोई शांति न पा कर उसका स्वर एकदम रुँध गया। उसने अपने शब्दों में शक्ति भरने के लिए आवाज़ कुछ तीखी का, लहजा बदलना चाहा।

"छोड़ दो मुझे, मैंने कह दिया। तुम ज़मीन भर में मक्खन और कोको जमा करती फिरती हो, यहाँ बेलगराद के अन्दर लोग फाँसी चढ़ाये जा रहे हैं। शर्म करो, शर्म ! अगर हम इन्सान होते तो तेराज़िए जाकर चीखते 'फाँसी का सत्यानाश हो, ख़ूनी हिटलर का सत्यानाश हो!'..."

"ज़े...ज़ेको !" मार्गरीटा ने चीत्कार किया और वाद्यवृन्द-निर्देशक जैसे किसी तुरही की बोली धीमी कराने के लिए हवा में हाथ मारे, ऐसे परेशान होने लगी, मगर वह आदमी कातर उद्धत स्वर में चिल्लाता गया :

" 'निकल जाओ, आततायी, हत्यारों का नाश हो'—ये नारे लगाने चाहिए हमें, समझे, ये नहीं कि..."

औरत खिड़की से मुड़कर भागी और रसोईघर का द्वार भड़ाक से बंद होता सुनायी दिया। ज़ेको मौन था क्योंकि उसका गला रुँध गया था। उत्तेजना से

क्लान्त होकर वह बैठ रहा ग्रौर बीमार की तरह पीछे ढलान से टेक लगा ली। ग्राँखें मूँद लीं। उसकी साँस फूल रही थी ग्रौर शरीर थरथरा रहा था।

इस सँकरे स्थल पर, जो चारों ग्रोर से घिरा था, ग्रँधेरा छाने लगा था एक-, दम सन्नाटा था, ग्रीष्म के दिनों में रविवार की सन्ध्या का सन्नाटा।

मार्गरीटा रसोईघर में फिर प्रकट हुई, मगर इस बार झिझकती हुई ग्रायी। उसका मुख भय से विकृत था ग्रौर ग्रोंठ काँप रहे थे।

"ज़ेको, ज़ेको!"

उसने दबे स्वर में पुकारा जैसे दुलार से किसी डरे हुए जानवर को पुचकार रही हो। ज़ेको ने उत्तर नहीं दिया मगर जब वह पुकारना बंद कर चुकी तो वह सहसा उठा, पैर बढ़ाकर नाले के पार रखा ग्रौर एक छलांग में इधर की कगर पर पहुँच कर खिड़की से होता हुग्रा रसोईघर में ग्रा रहा। मार्गरीटा उसे ऐसे देख रही थी जैसे वह कोई राक्षस हो परंतु तत्काल खिड़की बंद करना वह नहीं भूली।

उस रात उनके घर में क्या हुग्रा, यह न तो कोई देख पाया न सुन पाया। वे दिन ही ऐसे थे कि ज़ेको, काला साँप ग्रौर टिगार में कोई भी बहस हो जाती तो यकीन करना पड़ता।

ज़ेको ग्रौर मार्गरीटा के मध्य चबूतरे पर क्या हुग्रा था इसकी शायद ही किसी को ख़बर लगी हो, तो भी मार्गरीटा को इतना ग्रधिक ख़तरा मालूम हुग्रा कि उसने यह सोच कर कि क्या जाने किसी ने देख ही लिया हो सब ग्रावश्यक उपाय कर डाले।

उसने ज़रा भी वक्त नहीं गँवाया। ग्रगले दिन सवेरा होते ही दारोग़ा को ग्रादेश दिया गया कि इमारत के प्रत्येक खंड पर एक-एक किरायेदार को बता दे कि श्री ज़ेको 'सख़्त बीमार' हैं। उससे कहा गया कि कोई पूछे, बीमारी क्या है तो बताये 'दिमाग़ ···'। यह शब्द दारोग़ा ने ऐसे कहा जैसे किसी विदेशी शब्द का उच्चारण कर रहा हो। ग्रौर ग्रच्छी तरह समझाने के लिए वह ग्रपनी ग्रोर से इतना ग्रौर करता कि दाहिने हाथ की तर्जनी से माथे के मध्य में वृत्त खींच कर बताता। तरस खा कर किरायेदार हाथ हिलाते।

ज़ेको को ते[illegible] ग्रौर तीन दिन रहा। मार्गरीटा ने मारे

डर के डाक्टर नहीं बुलाया कि कहीं ज़ेको को फिर क्रोध का दौरा न पड़ जाये और वह प्रलाप करने लगे। बल्कि उसने अपनी बहन मारिया से सलाह माँगी जिससे वह अरसे से नहीं मिली थी। उसने उसे सारा क़िस्सा सुनाया और कहा कि ज़ेको को समझाओ कि फिर ऐसा तमाशा न खड़ा करे क्योंकि आजकल इससे भी छोटी बात पर घर का घर गोली से उड़ा दिया जाता है।

मारिया अत्यन्त चिंतित हो उठी और उसने तुरंत ड़ाक्टर बुलाने की राय दी मगर मार्गरीटा राज़ी न हुई। किंतु जब ज़ेको से बात की तो मारिया इस नतीज़े पर आयी कि अब डाक्टर की कोई ज़रूरत नहीं रही है।

सब कुछ ठीक ही रहा। ज़ेको फिर चलने-फिरने लगा। कभी कोई किराये-दार सामने पड़ जाता तो वह कुछ तरस, कुछ कौतूहल से उसे नमस्कार करता; फिर तो यह भी गयी-गुज़री बात हो गयी।

ज़ेको के असाधारण दौरे और उसके तीव्र ज्वर ने अपना कोई असर कहीं नहीं छोड़ा था और घर का ढर्रा भी कोई विशेष नहीं बदला था। तो भी चबूतरे पर का विचित्र कांड अपने ढंग से मार्गरीटा की स्थिति निर्बल और ज़ेको की सुदृढ़ कर गया। परिणामत: पत्नी और पुत्र दोनों ज़ेको से कुछ और अदब से पेश आने लगे हालाँ कि इसका मतलब यह नहीं कि उनके दिल में उसके लिए कोई प्यार पैदा हो गया था; उनका व्यवहार ऐसा ही था जैसे कहीं बिना फूटा बम पड़ा हो तो उसके पास से गुज़रने वालों का होता है।

ज़ेको अब नौकरी नहीं कर रहा था। मार्गरीटा बार-बार उसे समझाने की कोशिश कर चुकी थी कि उसकी पेंशन से पूरा नहीं पड़ता और उसे अधिकारी सत्ता के यहाँ काम ढूँढ़ लेना चाहिए पर उसने यह सुझाव इतनी दृढ़ता से ठुकरा दिया था कि अब वह फिर इसका ज़िक्र करते डरने लगी थी।

वह परिवार के खाद्य-संग्रह में और भी बझी रहने लगी थी। उसके मन में सम्भव-असम्भव, यथार्थ-काल्पनिक, वास्तविक, अवास्तविक सभी प्रकार की आशं-काएँ बढ़ती जा रही थीं। टिगार, जिसे बदन बनाने और आराम करने के अलावा किसी चीज़ से मतलब न था, और भी निकम्मा और खाऊ साबित होता जा रहा था। ऊपर से वह इतना डरपोक और बेशऊर था कि उसकी माँ को मजबू-रन उसे बच्चे की तरह पालना पड़ता था।

ज़ेको उन दोनों के मध्य था। अब उसे किसी का डर न था। उसकी ज़रूरतें कम थीं; वह इन दोनों को ऐसी नज़र से देखता जैसे ये कच्ची उमर के लड़के हों। वे जो कुछ कहते उस पर वह मुस्कुरा देता। और जब वह ऊबता या घुटता तो रसोईघर की खिड़की से फाँद कर अपने राज्य में पहुँच जाता। यह स्थल ज़ेको का युद्धकालीन आविष्कार था। वहाँ बैठकर वह सोच-सोचकर प्रसन्न होता कि मार्गरीटा की सत्ता कैसे क्षीण हुई और वह कैसे बन्धनमुक्त हुआ। यद्यपि उसके और मार्गरीटा के मध्य केवल गज़-दो गज़ की दूरी रहती थी, वास्तव में दोनों को विभाजित करने वाला इससे बड़ा कुछ और था – ज़ेको का उस अंतर को लाँघने का साहस और कौशल। इस साधारण करतब और उसमें छिपे सूक्ष्म जोखम ने ज़ेको को इतना प्रेरित किया कि वह ख़तरे और साहस के विषय पर विचार करने लगा। ख़तरा खोजो, उसे भेदो और मुक्त हो आओ। इसमें इतना जोखम नहीं जितना दीखता है क्योंकि मानो या न मानो, ख़तरा तो घात में रहता ही है और हमला करता ही है चाहे कोई उससे भागने वाला हो चाहे चिपका रहने वाला हो।

भय पर वश करने की सामर्थ्य अच्छी चीज़ है किन्तु मूलतः वह व्यर्थ का धन्धा है और हारते की लड़ाई है क्योंकि वस्तुतः हमारे अन्तर में भय अधिक होता है, बल उतना नहीं और वह भी अन्ततः शेष हो जाता है—बच रहता है केवल भय। और हम मनुष्यों के भय भी क्या होते हैं—महामारी, रोग, कोई नयी खोज़, पुलिस-क़ानून (वे भी जिन्हें हमसे न मतलब है न हो सकता है), रात के अँधेरे में हमारी अपनी भावनाएँ जिनकी जड़ें किसी यथार्थ में नहीं— हमारे दुर्बल स्नायु में होती हैं।

अतएव ज़ेको ने स्पष्ट जान लिया कि भय का सर्वनाश केवल उसे निर्मूल कर के हो सकता है। मनुष्य में भय की अनुभूति ही नष्ट करनी होगी जैसे विकृत टांसिल ग्रंथियाँ गले से निकाल फेंकी जाती हैं।

ये भावनाएँ इतनी विकीरित और अभिनव थीं कि अपने चबूतरे की बाट पर बैठे ज़ेको को चक्कर-सा आने लगा, उसे एक नया भय हो रहा था—भय न होने का भय—मानो ख़तरे के उन्मूलन का विचार अपने में ही एक ख़तरा हो—कम से कम उसके जैसे छोटे आदमी के लिए तो हो ही। सचमुच यह बोध, उस पर एक ऐसे बोझ की तरह बैठ गया जिसे उसे ढोना ही है और उसके तले उसका कुल

शरीर लड़खड़ा रहा है। समय-समय पर वह भयातुर हो उठता था किन्तु वह रुका नहीं, हारा नहीं। क्यों कि जब कोई संकल्प स्थिर हो जाता है और चरित्र का बल उसे प्राप्त होता है तो वही मनुष्य का स्वरूप निर्धारित करता है। जेको का भय छोटा हो गया और वह स्वयं बड़ा हो गया।

५

चबूतरे से ज़ेको ने ज़ेमून शहर की रोशनियाँ देखीं जो अब उस्ताशी के हाथों में एक 'शत्रु विदेश' का अंग बन गया था। उसने सावा नदी देखी जिसे कप्तान माइका दिव्य कहा करता था और जो अब महाबली फ़ाशी शक्तियों की कृपा पर आश्रित घृणा, अज्ञान और विषाक्त भावनाओं से पोषित 'सर्बियाई' और 'क्रोशियाई' सरकारों के अधीनस्थ दो अभागे राज्यों की परस्पर सीमा बन गयी थी। वह आकाश में उड़ते अनेक विमानों को और सावा में खींचे जाते बजरों को एक-एक करके ताकता रहा जो शत्रु की अधिकार सेना की सेवा में लगे हुए थे।

वह अपने में डूबा खाली-खाली आँखों से चारों ओर हेरता बैठा था कि मार्गरीटा फिर एक बार उसकी विचार-शृंखला तोड़ कर घुस आयी और उसे चौंका कर मजबूर कर दिया कि वह उस पर और उससे सम्बद्ध विषयों पर सोचे।

दासी से झगड़ती हुई उसकी पत्नी का विक्षिप्त स्वर रसोईघर से उसके कानों में आ रहा था। आह, मार्गरीटा और उसकी नौकरानियाँ यही रिश्ता उसके व्यक्तित्व की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति करता था और इसी में निर्बल पर शासन और अत्याचार करने की उसकी अदम्य अपरिमित वर्गगत लालसा तुष्टि पाती थी।

कई वर्ष से वह मार्गरीटा और उसकी नौकरानियों को देख रहा था। कभी-कभार उसने दखल देने की कोशिश भी की थी मगर आख़िरकार उसे हमेशा हटना पड़ा था।

यह सच है कि कुछ छोकरियाँ कामचोर थीं और कुछ चीज़ें उठा ले जाती थीं और पेशगी पैसे दो तो उसे ले कर चम्पत हो जाती थीं। मगर और भी नौकरानियाँ थीं : मेहनती लड़कियाँ, और वे मार्गरीटा के घर कुछ ही दिन काम कर के छोड़ देतीं, उसे धोखा देने की नीयत से नहीं बल्कि इसलिए कि उस घर में जीना और साँस लेना दूभर था; चार पैसों और मार्गरीटा की रोटियों के लिए खटना और बातें सुनना तो दूर की बात है।

और ज़ेको ख़ूब समझता था कि मार्गरीटा के आश्रय में रहना, उसके अधीन काम करना क्या होता है। पूरा काम कर डालने से ही उसे संतुष्ट कर देना सम्भव न था, वह भोर से रात तक फ़िज़ूल बक-बक कर के नौकरानियों की जान खा लेती; गिद्ध की-सी आँखों से वह उनको घूरती जैसे वह जानना चाहती हो कि वे क्या सोच रही हैं, किससे मिलती-जुलती हैं, कौन-कौन रिश्तेदार इनके हैं। वह उनकी चिट्ठियाँ खोल लेती, उनके असबाब खँखोल डालती और बिस्तर-गद्दे झार लेती। अठारह बरस की लड़कियों को तो वह कभी नहीं बख़्श सकती थी क्यों कि वे शाम को अपने युवा मित्रों के साथ टहलती थीं, रात को बासी तरकारी नहीं खाती थीं, क्यों कि वे गाती थीं, हँसती थी या उदास होती थीं, क्यों कि घटिया सलूकों पर वे अपना नाम कढ़वाती थीं, क्यों कि दाँत मढ़वाती थीं, क्यों कि किसी से प्यार करती थीं या सुन्दर लगती थीं और कुल मिला कर अपने काम के घंटों से और मार्गरीटा की आवश्यकताओं से परे एक अपनी ज़िंदगी जीती थीं।

मार्गरीटा घंटों इस विषय पर बोलती रह सकती थी कि नौकर जितने होते हैं सब कितने दुष्ट, अकृतज्ञ और निकृष्ट होते हैं। उसे अपने घर में बीस एक साल में आने और जाने वाली सब नौकरानियों की सूची याद थी। कुछ तो ऐसी थीं जिन्हें वह कभी भूल नहीं सकती थी।

एक मर्तबा उसके यहाँ एक नाटी-दुबली लड़की स्त्रेम से आयी थी जो सिर्फ़ तीन दिन रही। तीसरे दिन वह गलियारा बुहार रही थी तो मार्गरीटा उसके पीछे लग गयी और फ़र्श की एक-एक दरार दिखाकर लगी नुक़्स निकालने और हुक्म जताने। सहसा लड़की ने बुहारी रोक दी, बोली कि मैं ऐसे घर में काम नहीं करती और मेरा हिसाब चुकता कर दिया जाये। मार्गरीटा ने गरम होकर पैसे देने से इनकार किया क्योंकि नौकरानी ने काम छोड़ने की बाक़ायदा

सूचना नहीं दी थी और तमाम बातें सुनाते हुए उसे 'रंडी' बना डाला।

"अच्छी बात, मैं रंडी भली, पर तुम कैसी बीबी हो जो ऐसे बोल बोलती हो। भूखों मर जाऊँगी पर मैं तुम्हारी जैसी नागिन की नौकरी न करूँगी···"

मार्गरीटा ने पुलिस बुलाने की धमकी दी, बकते-झकते गलियारा सर पर उठा लिया। आख़िरकार लड़की ऐसे चीख़ी जैसे दौरा पड़ा हो और जो झाड़ू उठाकर मार्गरीटा पर लपकी तो उससे भाग कर रसोईघर में छिपते ही बना। झाड़ू फेंक कर लड़की बोली :

"झाड़ू से तुम्हारा भला न होगा, तुम तो पिस्तौल से ठीक होगी। देख लेना किसी दिन वह भी होकर रहेगा।"

लड़की चली गयी और मार्गरीटा तत्काल पुलिस में रपट लिखा आयी। दस वर्ष पहले की यह घटना मार्गरीटा जब-तब सुनाया करती थी और जब सुनाती तो ग़ुस्से से काँपने लगती और आँखें तरेर कर उसे कोसती :

"देखो तो चुड़ैल को, मुझे पिस्तौल मारने आयी थी—पिस्तौल मारेगी! ऊपर से जब पुलिस में रपट लिखायी तो वहाँ उनको हँसी आने लगी, देखो तो ज़रा।"

जे़को को एक अन्य घटना स्पष्ट याद आ रही थी। वह लड़की लम्बी और गोरी थी। उदास उसकी आँखें थीं और सुघर चाल थी। जब वह काम करने आयी तो उसके पास एक चौड़ा काला दुपट्टा था। एक दिन तो उसने मार्गरीटा को भुगता और दूसरे दिन काला दुपट्टा छोड़-छाड़ घर को चल दी। फिर उसने उधर झाँका तक नहीं। उस एक दिन में उस पर क्या गुज़री होगी कि वह ऐसे भागी जैसे कोई ताऊन से भागे और पलट कर न देखे। वह अपनी मालकिन को भेंट में एक दिन की अपनी मेहनत ही नहीं एक दुपट्टा भी दे गयी थी।

और मार्गरीटा यह क़िस्सा भी हर एक को सुनाती। वह कभी नहीं समझ पायी कि सुननेवाला नौकरानी को तो जो समझे, उसे क्या समझना होगा।

कई बरस ग़ुज़र चुके थे। कई नौकरानियाँ आ-जा चुकी थीं। यही ढर्रा चला आ रहा था।

आज फिर वह एक लड़की पर बिगड़ रही थी जिसे घर से आये दो-चार दिन ही हुए थे और उस बिचारी को डरा रही थी कि युद्ध के दिनों में लोग सीधे बेगार टोली में भेज दिये जाते हैं क्यों कि लड़ाई चल रही है और जर्मनों

से निपटना कोई हँसी-ठट्ठा नहीं है। यह धमकी नयी थी मगर झगड़ा वही था जैसा बीस साल से चला आ रहा था।

और ज़ेको इसी अपनी औरत के विषय में सोच रहा था जो हर दृष्टि को कुंठित और हर विचार को विश्रृंखल कर रही थी। कर्कशा, ततैया ! उसके हाथ हर वक्त मानो खुजलाया करते, वह कुछ न कुछ सीधा किया करती चाहे अपने तन पर चाहे कहीं और। जितना वह बोलती नहीं उतना हाथ नचाती। उसके चेहरे पर दोनों भाव रहते—हत्या के पात्र के भी और हत्यारे के भी।

यह झुँझलाहट, यह हिंस्र भाव उसके मुख पर सारे दिन रहता; वही सूरत लिये हुए वह सो जाती और चूंकि नींद से न तो वह मृदु होती न बदलती सवेरे उठ कर वह नया दिन फिर उसी बर्बर चेहरे से शुरू करती जिसमें पीड़ा तो थी परंतु शालीनता नहीं थी। उसमें विकृति थी जिसमें सहानुभूति और करुणा की गुंजाइश न थी। किन्तु उसकी मनहूसियत से भी घिनौनी और दुखदायी थी उसकी मुस्कान जो धुंध में बिजली की चमक जैसी आती और चली जाती, सिकुड़े हुए निर्जीव-से ओठ फड़क उठते, झुर्रियाँ—जिन्हें देखकर आदर नहीं उपजता था। बन कर मुस्कुराने की यह विफल कोशिश देख कर ज़ेको को रविवार की दोपहर को मुस्कराती किसान-बालाओं की या सीधे-सादे पुरनिया लोगों की धूप जैसी मुस्कुराहट की या फिर हँसती आँखों के गिर्द सैकड़ों झुर्रियों वाली बुड्ढी की याद आयी।

ज़ेको ने अपनी पत्नी की ओर देखा और उसके उस रूप से तुलना की जब वह एक मज़बूत लड़की थी जिसे ज़ेको चाहता था और जिसे उसने किसी बुरी घड़ी में एक साथ और सदा के लिए प्राप्त कर लिया था।

ज़ेको ने अपने विवाहित मित्रों और उनके घरों की याद की। उसने जाना कि उसका अपना मामला विशेष रूप से कठिन है परन्तु विशिष्ट नहीं है। ऐसे ही चक्र में फँसे परिवारों की संख्या बहुत बड़ी है और मार्गरीटा जैसी चरित्र वाली स्त्रियाँ भी कम नहीं हैं; हाँ, मार्गरीटा की हरकतों का आकार-प्रकार भयंकर हो गया है। यह सब सोचते-सोचते वह अक्सर अपने से पूछता कि अपने को स्त्रियाँ कहने वाले इन जंतुओं की सृष्टि का क्या उद्देश्य है। ज़ेको पूछता, ये औरतें जो अपने को गृहिणी कहती हैं अपना काम हँस कर क्यों नहीं करतीं, चिड़चिड़ाती और कुड़कुड़ाती क्यों हैं। क्या वजह है कि अच्छा पति हो, स्वस्थ

बच्चे हों और खाता-पीता घर हो फिर भी तमाम औरतें घर में फुफकारती फिरती हैं, दासियों को गरियाती हैं, बच्चों को धुनकती हैं, पति को काटने दौड़ती हैं, टेलीफ़ोन पर घुड़कती हैं और बाज़ार में मछेरियों की तरह झिकझिक करती हैं।

और ज़ेको अपने से पूछता : समाज में ऐसा क्या कारण है जिसने इन युवतियों को इतनी जल्दी तिक्त, नीरस घरैतिन बना दिया जिसके दिल में दया और दिमाग़ में अक़्ल नहीं; ज़बान में जहर और नज़रों में अविश्वास है—संक्षेप में वह सब है जो सुशीलता और सुन्दरता का काल है। निश्चय ही वह कारण बीमारी नहीं है, क्योंकि विकृत भले ही हो ये स्त्रियाँ अपने पीड़ितों से कहीं अधिक उम्र पाती और बुढ़ापे का सुख भोगती हैं। ग़रीबी भी कारण नहीं है। केवल एक ही सम्भावना बच रहती है। यह एक सामाजिक अभिशाप है : मनुष्य के सबसे शुद्ध और स्वार्थी तत्त्व को और जीवन के सबसे हीन, तुच्छ और घटिया तत्त्व को मान्यता दी जाती है। वही कारण है। यह अभिशाप इस समाज-व्यवस्था की और स्त्रियों की मिथ्या शिक्षा की स्वाभाविक उपज है।

उफ़, ज़ेको के विचारों का कोई अंत न था। वह अपनी पत्नी को वर्षों से देखता चला आया था और वह हमेशा बाक़ी दुनिया को छा लेती रही थी जैसे कि ठीक इसी समय रसोईघर में उस वाहियात और फ़िज़ूल बहस ने उसके ध्यान का सूत्र तोड़ दिया था जो कि कुछ दिनों से उसके लिए परम आवश्यक हो उठा था। मार्गरीटा के सामने पड़ते ही ज़ेको की चंचल कल्पना—जिससे वह विश्व के राज्यों और युद्धों को, परिवारों और समाजतंत्रों को, अपने ढंग से जोड़ता और तोड़ता था—भीड़ में छोटे-से आदमी की तरह खो जाती।

और अंततः जब उसने मार्गरीटा का स्वर ही नहीं उसका अस्तित्व भी अपने जीवन से निकाल बाहर किया तो उसने अपने से पूछा कि इस समाज में इतने सारे लोग निरुद्देश्य-निसम्मान क्यों जीते हैं। क्यों वे एक दूसरे को जीवन में ठगते और निदराते हैं और युद्ध में नोचते और खाते हैं ?

इन प्रश्नों का उत्तर ज़ेको को नहीं मिला और उसकी समझ में आया कि एक निर्जन चबूतरे पर बैठे आदमी को जवाब मिलना असम्भव है वैसे ही जैसे कि कुछ समय पहले सावा से किनारे अकेले पड़े रहने पर असम्भव सिद्ध हुआ था। किन्तु ज़ेको इन प्रश्नों को टाल भी नहीं पाया। उलझे प्रश्नों और मार्गरीटा की

बोली के बीच वैषम्य दिन-प्रति दिन तीखा होता गया और ज़ेको ने घर छोड़कर टालसटाय मार्ग की शरण लेना शुरू कर दिया।

वास्तव में ज़ेको के उग्र विस्फोट और अनन्तर बीमारी का एक ठोस योग-दान तो यह हुआ कि उससे बहुधा टापचाइडर जाने से मार्गरीटा का विरोध कम हो गया; यही नहीं वह स्वयं ज़ेको को वहाँ भेजती ताकि उसका 'भेजा' शांति और हरियाली में रह कर ठंडा हो जाये। परन्तु वास्तव में वह भेजती उसे इस-लिए थी कि वह फिर कहीं चबूतरे पर दिखायी न दे। यह ख़तरा बराबर उसे बना रहता।

और ज़ेको जाता।

पहली बार जब बीमारी से उठ कर वह टालसटाय मार्ग गया तो येलित्सा उससे कुछ और दिल खोल कर मिली और ऐसे बोली जैसे बहुत समय से नहीं बोली थी। बात करते हुए वह रह-रह कर आँखें झपकाती मानो तेज़ धूप में कहीं दूर की कोई चीज़ वह पहचानने की कोशिश कर रही हो।

ज़ेको विस्मित और प्रसन्न था।

और फ़िलिप ने आकर अल्हड़पन से उससे हाथ मिलाया।

किन्तु दूसरे ही दिन वे संक्षिप्त-सा नमस्कार करके ही रह गये—या शायद ज़ेको को ऐसा लगा ही था। जो हो, ज़ेको को यह स्पष्ट रूप से मालूम हो गया था कि पहाड़ पर खड़े इस छोटे-से घर में उसकी जगह है और यदि कोई हल कहीं है तो वह उसे यहीं ढूँढ निकालेगा। और वह अक्सर टापचाइडर पहाड़ी जाया करता और मारिया और डोरोश और बच्चों से बातें किया करता। वह उन्हें पसंद ही नहीं करता था उन्हें समझने भी लगा था

६

यह दावा सोलह आने सही नहीं है कि १९४१ और १९४४ के मध्य बेलग-राद 'यूरोप का सबसे अभागा नगर' था, परन्तु सच यह है कि उसमें बेमि-

साल पाप और नीचता मिलती थी और साथ ही मिलती थी उतनी ही महानता और उतनी ही सहिष्णुता। ये सब टाल्सटाय मार्ग वाले मकान के हिस्से में भी पड़ी थी।

स्वभाव से सदाशय, इंजीनियर डोरोश अधिकाधिक आत्म-लीन होते गये थे। वह तेज़ी से बूढ़े होते जा रहे थे मानो उनका विशाल शरीर संसार पर घटित अत्याचारों की मार सह रहा हो।

मारिया नहीं बदली थी, हाँ, उसकी दृष्टि शायद अब पहले से अधिक अस्थिर हो गयी थी और उस घनीभूत आकुल आशंका की झलक देती थी जिसका कारण केवल वही अपने मन में जानती थी।

और बच्चे घर की सबसे बड़ी पहेली और सबसे महत्त्वपूर्ण लोग बन गये थे।

फ़िलिप क़ानून के दूसरे वर्ष में पढ़ रहा था; वह पिता की तरह शान्त और माँ की तरह धुनी और उद्यमी था। विश्वविद्यालय में पढ़ाई हो नहीं रही थी इससे वह घर पर रहता और हर समय कुछ ऐसे काम में व्यस्त दीखता जिसका जहाँ तक जेको की अक़्ल काम करती, न तो रूप ही स्पष्ट था न परिणाम ही प्रकट था। येलित्सा बढ़कर भरी-पूरी लड़की बन गयी थी, बहुत लंबी न थी; उसने हाई स्कूल पास कर लिया था और अब उसे 'कोई काम न था' हालाँ कि भाई की तरह वह भी सारे दिन व्यस्त रहा करती थी। तीन वर्ष पूर्व उसके स्वभाव और आचरण में जो परुष और निषेध अकस्मात् प्रकट हुआ था वह मृदु हो आया, फिर लुप्त हो गया। अब वह बात करती तो मुख पर मुस्कान आ जाती, पर यह एक सुरक्षित मन की नयी मुस्कान थी, उसकी आँखों में स्नेह था, उसकी चाल-ढाल कुछ और सहज थी।

दानित्सा भी बड़ी हो गयी थी और अब वह नाज़ुक नखरे वाली बिटिया नहीं रह गयी थी जिसे बेलगराद स्कूल के नाम से बुख़ार आता था। ड्रागान छोटा ही था—साँवला और चंचल और अपनी माँ पर पड़ा था। स्कूल बंद थे इसलिए उसका बचपन कुछ अजब क़िस्म से गुज़र रहा था। जब उसकी माँ और बहनें उसको कह-सुनकर पढ़ने बिठातीं तो वह कुढ़कर अपने से पूछता, यह कैसा ज़माना है कि 'स्कूल नहीं है मगर पढ़ाई स्कूल से भी सख़्त हो रही है।'

घर में आने-जाने वाले बच्चों की संख्या बढ़ गयी। रोज़ाना आने वालों में था क़ानून का विद्यार्थी मिशा नामक एक लड़का। शरीर से दुबला, लम्बा और आँख

से कमज़ोर —इसके लम्बोतरे चेहरे पह हमेशा एक प्रौढ़ दृढ़ भाव रहता। अन्य एक क़ानून का विद्यार्थी जो अक़्सर आता-जाता था चुकारित्सा के एक लोहार का धर्मपुत्र था। उसका नाम था मिलान मगर उसके फ़ुटबाल खेलने की उम्र में कभी उसका नाम 'रिज़र्वा' (फ़ालतू) पड़ चुका था और अब यही नाम उसके गले मढ़ गया था।

और भी नवयुवक आते थे; कुछ विद्यार्थी थे, कुछ को देखने से लगता था कि श्रमिक हैं। परन्तु वे ज़्यादा देर के लिए नहीं, वहुधा दरवाज़े तक ही आते थे और परिवार से कभी उनका परिचय नहीं हुआ।

आक्रमण के वर्ष के पहले ग्रीष्म में ज़ेको ने बच्चों से अपना संबंध नये सिरे से स्थापित किया। इन तरुणों और उस वयोवृद्ध के बीच संबंध कहीं कम, कहीं अधिक घनिष्ठ था परंतु वह निरंतर बढ़ा और विकसित हुआ।

वे साथ-साथ कोठे पर जाकर रेडियो सुनते और विदेशी स्टेशन लगाते हुए आवश्यक सावधानी बरतते। किंतु बच्चे ज़ेको के सामने ज़्यादा बोलते नहीं थे। रेडियो मास्को सुनने के बाद फ़िलिप और रिज़र्वा में दो-चार बातें होतीं। ज़ेको चुप ही रहता। खबरें खत्म होते ही वह बाग़ में या रसोईघर में मारिया के पास पहुँच जाता और उसे थोड़े में बताता कि मोर्चे पर और दुनिया में क्या हो रहा है। होते-करते यह एक नियम ही बन गया। लेकिन डोरोश इतना सतर्क और भीरु था कि उसने ब्योरा छोड़कर संक्षेप में इतना ही सुनने की इच्छा प्रकट की कि 'हमारी जीत हो रही है या हार', बस। फिर तो यह तरीक़ा बन गया कि उसे हर बार यही बताया जाता कि 'सब ठीक है'।

डोरोश अपनी पतली-लंबी बाँहें सर से ऊँची उठा लेता जिसका मतलब था कि वह भी 'अपने लोगों की' जीत चाहता है परंतु मुसीबत में पड़ने से अब भी डरता है।

महीने, दिन, रातें, घंटे और मिनट बीतते गये, सब अपने में अनंत और असह्य। ज़ेको का अधिक से अधिक समय टापचाइडर में और कम से कम उस मकान में बीतने लगा जिसे वह अपना कहता था। वास्तव में, समय बीतने के साथ-साथ, ज़ेको को इस घर में ऐसा लगने लगा कि वह घर में है और अपने घर में ऐसा कि वह कोई मेहमान है। जैसे-जैसे ज़माना और बिगड़ा ज़ेको की

दोस्ती बच्चों से और भी घनी हुई।

कोठे पर रेडियो सुनने जाते हुए ज़ेको के कान में अक्सर उनकी बहस के कुछ अंतिम शब्द पड़ जाते या कोई मज़ाक़ या कोई हवाला ऐसा सुनाई पड़ जाता जिसे वह समझ न पाता। उसके सामने कोई बात खुलकर नहीं होती थी पर अब उससे पहले की अपेक्षा कम छिपाया जाता था।

एक बार फ़िलिप ने बहस के दौरान हँसकर कहा : "चिंता नहीं, ज़ेको चाचा से हम खुलकर बोल सकते हैं..."

इन शब्दों ने ज़ेको में एक उदात्त और अभिनव सुख का संचार किया।

मारिया से वार्तालाप में ज़ेको अक्सर बच्चों का ज़िक्र ले आता परंतु, मारिया उनकी गतिविधि और योजनाओं पर कभी कुछ न बोलती। हाँ, किसी बच्चे का नाम आने पर ज़रा-सा सिर उठाकर बैठ जाती मानो अच्छी तरह सुन पाना चाहती हो। बस। और ज़ेको उसे बताने को व्यग्र हो उठता कि वह इन नौज-वानों को कितना चाहता और मानता है, कि जिससे इन्हें घृणा है उसीसे उसे भी कितनी घृणा है, कि जो इन्हें प्रिय है वही उसे भी प्रिय है और यह कि वह उनके प्रति चिंतित है, उनकी सहायता करना चाहता है—जानता नहीं कैसे करेगा—हाँ, कुछ ऐसा है जो शायद ये कर न पायेंगे या जानते नहीं कैसे कर पायेंगे, वह चाहता है इनकी बला अपने ऊपर ले ले या...उफ़, जब वह अपनी भावनाएँ ढंग से एकत्र भी नहीं कर सकता तो उन्हें अभिव्यक्त कैसे करे?

समय के इस अमानुषिक किंतु संकल्पमय दौर ने ज़ेको को वह दे दिया जो बंजर जीवन के कई दशक नहीं दे सके थे। इसने जीवन में गति भर कर वह काम पूरा कर दिया जो ज़ेको ने स्वयं कई वर्ष हुए सावा के किनारे आरम्भ किया था। बहुत-सी बातों का बोध उसे कुछ समय पूर्व हो चुका था परंतु यह उसने इसी वर्ष जाना कि उसका जीवन कितना निष्पौरुष रहा है और मनुष्य के कितने कम दायित्व उसने निबाहे हैं। इस युद्ध में मोर्चे सभी जगह थे : रण में थे ही, संपूर्ण समाज में थे, उस घर में थे, जिसमें वह रहता था, और उसके अंतरतम में थे। इस द्वैत के सामने पड़ने पर निर्णय करना कठिन न रह गया। परन्तु उसे यह कहीं अधिक स्पष्ट था कि वह किसके विरुद्ध है, यह उतना नहीं कि किसके पक्ष में है। वह घटनाओं पर विचार करना ही नहीं, उन पर कुछ असर डालना, कोई ऐसा काम करना चाहता था जिसमें उसका कुछ उपयोग हो, जो किसी सार्थक दिशा में ले जाये। उसे बोध हुआ कि [illegible] विद्रोह, चाहे पिछले

गर्मियों के तेराज़िए फाँसी कांड के पहले वाले विस्फोट जैसे उग्र ही क्यों न हों, निजी यत्रंणा और व्यर्थ छटपटाहट से अधिक कुछ नहीं हैं। उसने जाना कि उस बोध का प्रतिफल होना चाहिए कर्म और कर्म का होना चाहिए एक सुनिश्चित लक्ष्य, कि साहस तभी साहस है जब उसका कोई उद्देश्य हो और यह कि साहस का वास्तविक महत्त्व और अर्थ निश्चित होगा उस कर्म से जिसके लिए साहस उद्दिष्ट हो।

संकल्प और निर्णय उस व्यक्ति के लिए बहुत आसान न था जिसने इतने दिन तक जीवन में जो पाया हो, कुढ कर, खीझकर वैसे ही स्वीकार किया हो। परंतु युद्ध का ताप सबको कुछ और जल्दी पुष्पित, परिपक्व और फलीभूत करता है। ज़ेको अपना भविष्य बच्चों की, उन नौजवानों की आँखों से देखने लगा जो उसके लड़के की उम्र के थे। पर इसमें बुरा क्या था ? इस समय तो सबसे पहले उसे सदा के लिए अपने पतित निष्फल जीवन से निष्कृत होकर पुरुष की तरह खड़े होना और जीना चाहिए था।

ज़ेको मारिया से बहुत कुछ बताना चाहता था क्यों कि वह उसके इतने क़रीब थी। पर वह कभी कुछ बता न पाया क्यों कि जब भी वह कुछ कहनाशुरू करता, वह झेंप कर अटक जाता—क्यों कि यह मानव-मन की एक विचित्रता है कि बहुधा लोग अपने भीतर के सुंदरतम को प्रकट करते झिझकते हैं। तो भी ज़ेको की अभिव्यक्ति संपूर्ण हो जाती थी चाहे अटपटे अधूरे संकेतों से ही हो, क्यों कि खुद कम बोलनेवाली मारिया में एक असामान्य गुण था : वह दूसरे को सुनना और समझना जानती थी।

अपने को सदा असफल और ग़लतफ़हमी का शिकार समझनेवाला, अपने में असंगत, दूसरों के लिए दुरूह, ज़ेको समय पा कर विशद और सुगम हो गया और इस तरह उनके और निकट आ गया जिनका हित वह सबसे अधिक चाहता था। १९४२ के वसंत में ज़ेको बच्चों के काम में हाथ बटाने लगा पर उसने यह कभी न पूछा कि उनका उद्देश्य क्या है, या काम कितना है या यही कि उससे अन्त में होगा क्या।

स्वेतोसाव्स्का मार्ग पर अपने पेंशनयाफ़्ता स्कूल-अध्यक्ष पिता के साथ रहने वाले सिनिशा से उसकी जान-पहचान कुछ और बढ़ी। निस्संदेह सिनिशा इन सब 'बच्चों' का, और शायद किसी अधिक बड़े दल का भी नेता था परंतु उसकी

गतिविधि की ख़बर दूसरों से कुछ मालूम नहीं हो सकती थी और खुद वह कुछ बताता न था।

दुबला और लम्बा, वह असाधारण रूप से विनम्र और सौम्य था, हमेशा ऐसा दीखता जैसे अभी आया हो और अभी जा रहा हो। और ज़ेको की नज़र में सिनिशा का हर काम आकस्मिक होता। उसकी हरी मंददृष्टि आँखें प्राय: झुकी रहतीं और वह किसी को देखता तो मानो आँख से नहीं संपूर्ण शरीर से देखता; और वह सब कुछ देख लेता, बल्कि कहना चाहिए, जान लेता जो वह जानना चाहता हो। वह जितने आहिस्ते उठता-बैठता था उतने ही आहिस्ते बोलता भी था मानो शब्दों को महत्त्व न दे रहा है और मानो जो कह रहा है वह अभी उसके मन में आया है : और उसका व्यवहार कुछ ऐसे व्यग्य से मंडित था कि ज़ेको को तनिक घबराहट होती पर यही उसे बहुत अधिक आकृष्ट भी करता।

इसीलिए जब अंततः उसने ज़ेको का अहसान लेना ठीक समझा तो हस्ब-मामूल कह दिया :

"ज़ेको चाचा, अगर आप राज़ी हों तो···और अगर आपको दिक़्क़त न हो तो···"

और ज़ेको ने कहा, "यह सोचना ही ग़लत है कि मुझे दिक़्क़त होगी।

ज़ेको का खुशख़त यहाँ काम का साबित हुआ। वह कमाल के साथ पहचान-पत्रों और प्रमाण-पत्रों के हस्ताक्षरों और दस्तावेज़ों की नक़ल करने लगा और यह काम भी उसने अपनी स्वाभाविक निष्ठा और धीरज से किया।

उसने लग्गा लगाया उन प्रमाण-पत्रों से जिन्हें दिखाकर लोग अनिवार्य कार्य से मुक्ति पाया करते थे। जब समझौता-सरकार ने यह कार्यक्रम आयोजित किया तो नवयुवकों के इससे छूट निकलने के उपाय आविष्कृत किये गये। बितोल्स्का मार्ग पर केन्द्रीय दमकल घर में जहाँ भरती होती थी, शरीर-परीक्षा के लिए लोगों की लंबी क़तारें लगी रहतीं। कुछ ही दिन में पता चल गया कि स्वस्थ शरीर के कोरे प्रमाणप-त्रक परीक्षकों की मेज़ों पर से उड़ाये जा सकते हैं। इन पत्रकों में युवकों के नाम भर दिये गये कि वे इन्हें लेकर बेखटके शहर में आयें-जायें और श्रमकार्य-दस्तावेज़ के बिना घूमने वाले लड़कों की टोह में लगी पुलिस उनका कुछ बिगाड़ न सके।

सिनिशा की पहली सेवा ज़ेको ने इन्हीं पत्रकों में मुख्य परीक्षक और वैद्य के मूल हस्ताक्षर उतार कर की।

इस प्रकार का पहला काम करते हुए ज़रा देर को ज़ेको ने क़लम रख दिया और अविचल विचारमग्न जाली दस्तावेज़ को निहारता बैठा रह गया। उसने अपने हाथ को निरखा मानो उसने हाथ को पहली मर्तबा देखा हो जो जाने कितने वर्ष से और कितना निरुद्देश्य लिखता और आँकता चला आ रहा है। आज इस तरह बैठ कर इस ज़रा-से काम में हाथ बझाना कितना सुखद है; जब तक दम है तब तक वह ऐसी चाहे कितनी शुद्ध और श्रेष्ठ जालसाज़ियाँ करता रह सकता है।

यों ज़ेको ने शुरुआत की और फिर उसने अन्य कई तरह के दस्तावेज़ों की नक़लें कीं और नोक-पलक सुधारी जो इंजीनियर के घर से भाँति-भाँति से चुरा लाये जाते थे और एक सिरे से बदल कर पक्की मोहर और हस्ताक्षर सहित वापस ले जाये जाते थे। इन दस्तावेज़ों की संख्या ही से ज़ेको को अन्दाज़ा मिल गया कि एक ही उद्देश्य को समर्पित व्यक्तियों की संख्या कितनी बड़ी थी।

अनंतर ज़ेको को और काम सौंपे गये। शक्ल-सूरत से वह शरीफ़-भला नागरिक था ही, उसे चीज़ें और चिट्ठियाँ पहुँचाने का काम अक्सर दिया जा सकता था। उसके घर में जो टेलीफ़ोन मार्गरीटा के नाम से लगा था, खबरें और संदेश देने के काम आता।

ये काम कितने ही छोटे और अकिंचन क्यों न रहे हों, ज़ेको के लिए बड़े गौरव के थे क्योंकि इनसे उसे बोध होता था कि वह जीवित है, सही दिशा में अग्रसर है, कुछ कर रहा है और किसी काम आ रहा है। यह सावा की तरह न था, जहाँ उसे कप्तान माइका की मित्रता मिली थी और जहाँ उसने जावन को जीवन की तमाम समस्याओं सहित वैसा ही पाया था जैसा वह है। और यह उसकी चौतरिया भी नहीं थी जहाँ से उसने छूछे विद्रोह के नारे बुलंद किये थे और जहाँ घंटों उन मसलों पर चिंतन में मग्न रहा था जिनका ज़िंदगी से कोई ख़ास मतलब नहीं।

ज़ेको का मन शांति और स्वाभिमान से भर गया यद्यपि न यह शांति अविकल थी न वह स्वाभिमान निस्संशय था।

टालसटाय मार्ग से पहाड़ी उतरते हुए, नगर के अँधेरे और आकाश के

बड़े-बड़े उजले तारों को निहारते हुए, जो चेसनट की हिलती डालियों में से ऐसे झलकते मानो हवा में लौक रहे हों, वह बहुधा शंका और कायरता से विह्वल हो उठता : वही तुच्छता, नगण्यता की पुरानी विशृंखल भावना जो कभी-कभी सम्पूर्ण निस्सहायता और निराशा का रूप धर लिया करती थी।

तब उसे याद आता कि कभी-कभी उसके आते ही कमरे में बच्चे और मारिया तक मौन से उसका स्वागत करते हैं, बातचीत थम जाती है और सिनिशा की आँखों में रूखा उपहास झलकता है।

इनकी याद से उसका अहं चोट खा जाता जैसा कि उस वक्त होता है जब किसी का मन टूटा हुआ होता है : उसे लगता कि वह कभी इनका अपना नहीं हो सकता, कि वह कोई नहीं और कुछ नहीं है जो कि वह हमेशा रहा है, एक निरुद्देश्य व्यक्ति जिसके लिए समाज में कहीं स्थान नहीं क्योंकि वह समाज के तकाज़े पूरे नहीं कर सकता, क्योंकि उसमें अपनी सदाशयता को साकार करने योग्य न आत्मबल है न चरित्र है।

उसे भय लगता; पुलिस का उतना नहीं जितना असाधारण का, गति का और परिवर्तन का भय। भय के क्षण में व्याकुल प्रश्नों का अनवरत क्रम आरम्भ हो जाता। ये जो कुछ कर रहे हैं, क्या है वह ? क्या यह कोई फुटकर युवा-हलचल है जिसके पीछे वास्तव में कोई है नहीं ? वे चाहते क्या हैं ? वे जा किधर रहे हैं ?

इन प्रश्नों का उत्तर वह सब समय नहीं दे पाता तो भी वह जानता था कि जो भी हो वह उनके साथ है। और वह समझता था कि इस प्रकार के काम में यदि कोई सभी शंकाएँ निवारित होने की प्रतीक्षा करने लगे तो बहुत लम्बी प्रतीक्षा करनी होगी।

किन्तु ऐसी भी शामें आतीं जब शहर लौटते हुए उसमें एक अस्पष्ट किंतु दुर्दम आत्मविश्वास जाग उठता : वह एक अच्छे काम में लगा कार्यकर्त्ता था, मित्रों के बीच एक उपयोगी मित्र था और इन बच्चों से ही नहीं उन सबसे संपृक्त था जो उनके पीछे अदृश्य खड़े थे।

मौसम बदलते रहे और पहाड़ी पर उजाला घटता-बढ़ता रहा और उसे ऐसे विविध द्वन्द्व मन में लिये बेलगराद के उत्तरी आकाश के उसी तारापुंज पर दृष्टि ज़माये पहाड़ी से उतर कर बार-बार नीचे आते हुए सप्ताह, मास और

वर्ष बीत गये। और जैसे-जैसे वर्ष बीतते गये, क्लांति और शंका के क्षण भी विरल होते गये। साथ ही साथ उसे विश्व-घटनाओं का और अपने कार्य से उनके संबंध का परिचय गहरा होता गया और उसे अपने निज की और मनोभावों की चिन्ता उतनी नहीं रह गयी। वह अँधेरे शहर के छिटपुट दूधिया उजालों को देखता और ऊपर जगमगाते आकाश को निहारता जिसमें सप्तर्षि नन्हे-नन्हे तारकों के समूह के मध्य ऊर्ध्व में भुजा उठाये खड़े थे।

लोग कुछ कर रहे हैं, ज़ेको अपने से कहता : वह उनमें से कुछ को जानता है और उनका हाथ बँटा रहा है। यह विचार उसे एक नयी तुष्टि देता और वह उसी को लिये सो जाता और गहरी नींद सोता।

यह निराकुलता अखंडित नहीं रहने वाली थी।

१९४२ के ग्रीष्म में फ़िलिप बेल्गराद के आसपास कहीं लापता हो गया। वह कंधे पर थैला डाले पड़ोस के गाँवों में 'भोजन की खोज में', जैसा कि उन दिनों श्लेष में कहा जाता था, जाया करता था। एक बार वह गया तो लौट कर नहीं आया। शीघ्र ही विशेष पुलिस के कारिंदे के साथ डोरोश के घर आकर दो सिपाहियों ने ख़ानातलाशी ली। कारिंदे ने घुड़क कर कहा कि वह ऐसे 'लापता' होने का मतलब ख़ूब जानता है, कि इस घर पर दलगत गतिविधि की तहकीक़ात के लिए नज़र रखी जायेगी और माँ-बाप लड़के के ज़िम्मेदार होंगे। वे रात के दो बजे आये, दोबारा आये और एक बार फिर तलाशी ले गये। किंतु फिर कुछ नहीं हुआ।

ज़ेको ने कभी नहीं पूछा कि फ़िलिप को क्या हुआ या कि वह कहाँ गया। मारिया ने इसका ज़िक्र नहीं छेड़ा और बच्चे वैसे ही रहते रहे जैसे थे, परन्तु उनके मित्र कुछ और सावधानी से और कम आने-जाने लगे। उनका 'स्वतंत्र युगोस्लाविया' रेडियो सुनना और ज़ेको की 'सेवा' करना जारी रहा। 'सामग्री' अब डोरोश के मकान में नहीं बल्कि सड़क से कुछ उतर कर एक काठ की झोंपड़ी में तैयार की जाने लगी जहाँ एक बुढ़िया रहती थी।

पड़ोस के दो अंगूरबाग़ और उनके बीच की बाड़ की वस्तुतः अदृश्य फाँकों से होकर इस झोपड़ी में चुपचाप टालसटाय मार्ग से किसी के देखे बिना आया जा सकता था।

दूसरा अड्डा [illegible] के धर्मपिता का मकान, परन्तु ज़ेको वहाँ कम ही

भेजा जाता था और जब जाता भी था तो घर में प्रवेश नहीं करता था, नीचे के कारखाने में ही जाता था।

ज़ेको को एक और अड्डे का पता था; सुना-सुनाया; वह सावा के तट पर एक गोदामघर में था। इस संपर्क-सूत्र का रखवाला था चिट्टे वालों वाला, उज़ित्से के आसपास का निवासी वूल नामक एक फुरतीला नवयुवक; हमेशा मुस्कुराने वाला वह उतावला दिखता, सरपट बोलता और तेज़ चलता। ज़ेको को वह भला किन्तु कुछ भयंकर भी लगता और जब भी वह मिलता ज़ेको सोचता : यह उन लोगों में से है जो न अपने को बख़्शते हैं न किसी और को।

इस प्रकार टाल्सटाय मार्ग का मकान 'छुट्टी' पा गया और जैसा ज़ेको ने समझा पुलिस उसे एक वर्ष तक भूले रही। किन्तु अगले नवंबर में उस घर और ज़ेको दोनों को एक करारा झटका लगा।

एक दिन सवेरे दानित्सा ने किसी पड़ोसी के घर से ज़ेको को फ़ोन किया और उससे टालसटाय मार्ग पर आने को कहा। जब वह पहुँचा तो घर में उथल-पुथल हुई पड़ी थी। पहले दानित्सा ने ही बताया, "वे लोग येलित्सा को कल रात ले गये।"

ज़ेको को लगा जैसे सब कुछ अकस्मात् जड़ होकर जम गया है; हवा, समय, आवाज़ें और खून, सब कुछ। क्या कहा जा रहा है, वह कुछ सुन ही नहीं पा रहा था।

तीन जर्मन और विशेष पुलिस का एक कारिन्दा तीन बजे रात को आये थे और उन्होंने मकान की तलाशी ली थी और येलित्सा से तैयार हो जाने को कहा था। उन्होंने टेलीफ़ोन का तार काट दिया, टेलीफ़ोन और कोठे से रेडियो भी साथ ले गये। अलबत्ता उन्होंने घर वालों को येलित्सा के लिए कुछ कपड़े और खाने की एक पोटली बाँध देने दी।

येलित्सा ने हरेक को चूमा मानो स्टेशन जा रही हो, और गेस्टापो की मोटर में बैठ गयी। उसमें असाधारण रूप से तेज़ रोशनी वाली बत्तियाँ लगी थीं और चालक की सीट के बग़ल में एक चोरबत्ती भी थी।

ज़ेको ने घर का मुआयना किया जिसमें तलाशी के प्रमाण स्पष्ट दिख रहे थे। वह उस चौकी के पास ठहरा जिस पर रेडियो रहता था और जिस कोने में टेलीफ़ोन रहता था वहाँ उसने वह तार देखा जो पिलास से घर के काट दिया

गया था। ज़ेको इन चीज़ों को इतने ग़ौर से देख रहा था जैसे जो कुछ हुग्रा है उसका ग्रर्थ इन्हीं में कहीं दिखाई दे जायेगा।

वह सिनिशा को कुछ संदेसे देने घर से बाहर निकल गया। ग्राखिरकार शाम हुई ग्रौर घर में ग्रकेले उसने इस घटना के ग्रातंक स साक्षात् करके एक ऐसी पीड़ा ग्रनुभव की जो उसने कभी जानी नहीं थी। "वे उस बच्ची को ले गये हैं" वह ग्रपने से निस्तेज यंत्रवत् बार-बार कहता रहा ग्रौर उसके भीतर एक दर्द घुमड़-घुमड़ कर ऐसी व्यथा उपजाता रहा जो उसके जीवन भर झेले तमाम कष्टों से भिन्न थी।

कई दिन तक उसे न भूख लगी न नींद ग्रायी ग्रौर उसने देखा कि मार्गरीटा ग्रौर टिगार के प्रति उसकी जुगुप्सा मानो साकार हो उठी है। सिनिशा ने उसे होशियार कर दिया था कि टालसटाय मार्ग पर जो कुछ देखा या सुना था उसे कहीं प्रकट न करे किन्तु यह चेतावनी ग्रनावश्यक ही थी क्योंकि वह यों भी न करता।

उसे उस दिन की याद ही न रह गयी थी जब उसने मार्गरीटा के शब्दों पर ध्यान दिया था ग्रौर ग्रपने व्यवहार पर उसकी प्रतिक्रिया जानने को उसके चेहरे की ग्रोर निहारा था। ग्रब उसके लिए सब कुछ का मापदंड था युद्ध, या ठीक-ठीक कहें तो वह युद्ध जो बेल्गराद के इस ग्राश्चर्यजनक रूप से छोटे मगर महत्त्वपूर्ण ग्रंश—टालसटाय मार्ग के बच्चों की ग्राँखों से दीखता था। ग्रौर पिछले कुछ दिनों में तो उसके सब विचार सिमट कर येलित्सा ग्रौर उसके भविष्य तक सीमित रह गये थे।

ज़ेको को मति-विभ्रम होने लगा। उसे येलित्सा का स्वर सुन पड़ता; वह नींद से जाग कर उठ बैठता ग्रौर उसके दिल में वही ग्राशंसा, वही स्नेह होता जो इस लड़की के प्रति उसने सदा सहेजा था। 'ठोस ग्रादमी है', 'स' के उच्चारण में दाँत भींचकर येलित्सा ने कहा था, ग्राधी रात को ऐसे वाक्य बार-बार ज़ेको को याद ग्राते ग्रौर तुरन्त एक टीस उठती।

"साथी लड़ रहे हैं" न जाने कितनी बार 'लड़ाई' शब्द उसके भीतर गूँज कर उसे ग्रामूल हिला चुका था। उसने यह शब्द वैसे ही सुना जैसे येलित्सा उसे सहज ग्रौर गम्भीर स्वर से बच्चों की तरह बोलती थी—ग्रगर ग्रपनी शक्ति की इतनी चेतना होने पर भी कोई बच्चा कहला सकता है, तो ! उसके मुँह

से यह शब्द सुनकर ज़ेको ने उसका अर्थ पा लिया। यह अभिवृद्ध हुआ ज़ेको की इस कल्पना से कि फ़िलिप और रिज़र्वा रेलगाड़ी में बैठे चले जा रहे हैं मानो वे बेलगराद के कोई सामान्य नागरिक की तरह खाद्य की खोज में निकले हों, जैसा कि वे पुलिस को बताते थे। और उसे यह सोच कर सांत्वना मिली कि वह संघर्ष के इतने निकट है।

रात को वह अचानक इस आशंका से त्रस्त होकर उठ बैठता कि शायद वे इस समय लड़की को यंत्रणा दे रहे हों : ठंड से जमे अपने शयन-घर में वह पसीना पोंछने लगता मानो उसी को यंत्रणा दी जा रही हो। ऐसा क्यों है कि यह युवती जो कम्युनिस्ट, है भली और सुन्दर है एक गन्दी अँधेरी कोठरी में, ठूँस दी जाती है, भूखी रखी जाती है और पीटी जाती है जब कि मार्गरीटाएँ और टिगार खुली धूप में घूमते-फिरते हैं, ताज़ी हवा में साँस लेते हैं और आराम की ज़िंदगी बसर करते हैं। यह निर्मम भेद ही यथेष्ट प्रमाण है कि विश्व के आज के द्वन्द्व में कौन-सा पक्ष सत्य है।

और येलित्सा की क़ैद जितनी लंबी खिचती गयी ज़ेको को उतना ही ज्ञान होता गया कि समस्या शुद्ध व्यक्ति की, लड़की और उसके माँ-बाप की समस्या नहीं है। उसके विचारों का उत्स व्यक्तियों से हटकर व्यापक मुद्दों में जा रहा था।

अपनी आत्मव्यथा में, और युद्धजन्य दुःखों में ज़ेको को टालसटाय मार्ग के परिवार के बीच रह कर सांत्वना मिलती, जो कि इस समय उसी की भाँति सांत्वना का भूखा था।

अब उसे मारिया के चरित्र की गहराई की थाह मिली। आँसू नहीं, छट-पटाहट नहीं, फ़िज़ूल के शब्द नहीं। उसके पीले चेहरे का रंग कुछ और पक आया और आँखें पहले से ज़्यादा खोयी-खोयी रहने लगीं—बस येलित्सा का नाम सुनकर वह चौंक पड़ती।

परन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह था कि ऐसे मौक़ों पर वह विनम्र, भीम, डोरोश अत्यंत शालीनता और तत्काल बुद्धि से काम लेता।

दानित्सा ने भी साहस का परिचय दिया, उसके भाई ड्रागान ने भी, जो अपने चारों ओर की सब चीज़ों को अपनी काली आँखों से निहारता रहता था—वे उसकी माँ को पड़ी थी। ये दोनों सहमे हुए और गम्भीर दीखते थे।

वे सब येलित्सा की गिरफ़्तारी से बहुत घबरा गये थे परन्तु मानो सबमें समझौता था कि रत्ती भर कमज़ोरी नहीं दिखायेंगे। और यही उस लड़की से उन्हें जोड़े हुए था जिसे वे इतना प्यार करते थे और जिसके लिए वे दु:खी थे।

वे येलित्सा की बात तभी करते जब बहुत ज़रूरी होता और वह भी काम की बात होती। सप्ताह में एक बार वे उसके लिए खाने और धुले कपड़े की पोटली बाँध देते। डोरोश और बच्चों का ज़िम्मा था कि खाना तैयार रहे परन्तु, पोटली बाँधना और पहुँचाना मारिया का काम था और वह इसमें कोई दूसरा हाथ नहीं लगने देती थी। यह काम उसने ख़ास तौर से अपने सिर लिया था और बिलकुल अपने हाथों से ही वह उसे करना चाहती थी ठीक वैसे ही जैसे कभी उसने अपने शरीर से ही येलित्सा को जना था और अपने स्तनों से ही दूध पिलाया था। बच्चे पोटली लाद कर बानित्सा के बंदी-शिविर तक ले जाने में उसका साथ देते: एक-दो बार कभी मौसम बेहद ठंडा हुआ तो उसने ज़ेको को भी साथ आने दिया था।

सर्दियाँ तेज़ हवा और कड़ाके का जाड़ा लेकर आयीं। मारिया छोटे-छोटे मगर सधे हुए डग भरती चल रही थी, अपना काला दुशाला उसने एक ओर से लपेट लिया था कि हवा से बच सके और वह हवा के मुक़ाबले तन गयी थी। बग़ल में ज़ेको लाल रंग का थर्मस और सेब की टोकरी लिये चल रहा था और मारिया ने खाने की पोटली अपने हाथ में रखी थी। ज़ेको के पाँव से बड़े बूट बरफ़ पर फिसल जाते, उसकी पदचाप से एक खोखली गूंज उठती और वह मानो मारिया के क़दमों की नपी-तुली-सधी लय पर ताल देती चलती।

ज़ेको बतकही शुरू करना चाहता, पर बेकार। उसके शब्द फ़ौरन तेज़ हवा में खो जाते और मारिया पहले कुछ बतलाती भी पर फिर सन्नाटा खींच जाती। यह स्पष्ट था कि बानित्सा के रास्ते में उसका मन बोलने को नहीं करता था। ज़ेको अपने को फ़ालतू और उलझा हुआ पाता।

बानित्सा से कुछ दूर रह जाने पर उन्हें उसका बड़ा-सा फाटक और उसके सामने लम्बी क़तारों में लोग, अधिकांश में औरतें, पोटलियाँ लिये इंतज़ार करते दिखाई दिये। वे सर्दी के मारे पाँव पटकते और मुट्ठी में फूंक मारते थे और अपने बंडल और डब्बे कभी इधर कभी उधर रख-उठा रहे थे।

मारिया ने ज़ेको से थर्मस ले लिया, उसे धन्यवाद किया और कहा कि घर

जाये। वह पल भर ठिठका, पर मारिया ने कड़े स्वर में आदेश की तरह अपना कथन दोहरा दिया। उसने पोटली सँभाली और निःशब्द आगे बढ़ गयी। वह एक क्षण निश्चल खड़ा रह गया।

बड़ा फाटक बंद था और उसके दोनों पार्श्व में छोटे-सँकरे सींखचेदार दरवाज़े थे और उनके बग़ल में गारद के लिए ताकें बनी थीं। इन दरवाज़ों के आगे दो लंबी पंक्तियाँ खड़ी थीं। दाहिने हाथ के दरवाज़े के आगे की पंक्ति ज्यादा लम्बी थी, और सड़क के पार तक चली गयी थी। मारिया इसी में खड़ी हो गयी।

पोटलियों की जाँच और स्वीकृति अभी आरम्भ नहीं हुई थी।

दर्द भरी उलझन लिए ज़ेको आखिरकार इस दृश्य से अपने को विलग कर घर की ओर चल पड़ा। चलते-चलाते उसे बायें दरवाज़े की पंक्ति से आती हुई कुछ आवाज़ें हवा में बिखरी हुई सुनायी दीं। कुछ औरतें एक बूढ़े से झगड़ रही थीं कि उसने उनके सामने क्यों थूका। औरतें सब एक साथ बोल रही थीं और उनके शब्द पल्ले नहीं पड़ रहे थे। नाटे बूढ़े ने जिसके तन पर किसान जैसे कपड़े और निरी कालिख थी, डपट कर औरतों को जवाब दिया। केवल कुछ कड़ुवे कर्कश शब्द ज़ेको के कान तक पहुँचे, "अब तो जानो मैं ईश्वर पर थूकूँगा।"

ज़ेको पलटा और सड़क के सहारे चल दिया जो बरफ़ की सफ़ेदी से प्रायः छिप गयी थी, सिर्फ़ स्ले और गाड़ियों की लीक़ें उस पर ज़ख़्मों की तरह पहचान में आती थीं।

वापसी में उसके पास कोई सामान न था पर वह मारे बोझ के झुका जा रहा था मानो पंक्ति में प्रतीक्षा करते-करते लोगों की सब गठरियाँ, पोटलियाँ, पीड़ाएँ, क्लेश उसने लाद लिये हों।

जाड़ा बीत चला। फ़रवरी में वसन्त के छलावे, दखिनी बयार और वेजानिस्का कोसा पर लाल सूर्यास्त दिखायी देने लगे और मौसम गरम हो उठा।

एक दिन मारिया बानित्सा से वापस आयी तो उसके हाथ में पोटली थी। पहरेदारों ने उसे लेने से इनकार कर दिया था और यह तक नहीं बताया था कि येलित्सा कहाँ है। और पहली बार ज़ेको ने मारिया की आँखों में आँसू बल्कि आँसू नहीं आँसुओं की एक हल्की-सी झलक देखी जो पल में आयी और

पल में चली गयी।

अगली बार मारिया गयी तो उसकी पोटली ले ली गयी और फिर हर बार ले ली जाती रही मगर एक दिन उसे कोरा वापस कर दिया गया।

रेडक्रास में किसी ने मारिया को बताया कि बानित्सा से अट्ठारह औरतें एक रात रेलवे स्टेशन ले जायी गयी थीं और वहाँ से जर्मनी में किसी बंदी-शिविर को भेज दी गयीं। नाम केवल पंद्रह के मालूम हुए। येलित्सा का नाम उनमें नहीं था जिससे यह धुँधली-सी उम्मीद बनी रह गयी कि शायद उन तीन नामहीन यात्रियों में वह भी रही हो।

७

फ़रवरी में युद्ध का एक नया दौर शुरू हुआ जिसमें दिखाई दिया कि शायद मित्र विमान बेलगराद पर जल्द ही बमबारी शुरू करें और शहर में हवाई हमले से बचाव की बे-हिसाब तैयारियाँ होती नज़र आयीं। महीनों तक अखबारों में नियम छपते रहे और जनता को आवश्यक एहतियाती कार्रवाइयाँ समझायी जाती रहीं। सार्वजनिक शरणालय चौड़े किये गये; पुराने तहख़ानों की जाँच और सफ़ाई और मरम्मत होने लगी, नये तहख़ाने ख़ास तौर से जर्मनों के लिए बनने लगे। बाज़ारों में लोग काला कागज़ खरीदते दिखायी देते जिससे कि घर के शीशे मढ़ सकें क्योंकि इसका आदेश अधिकारियों ने यह कह कर दिया था कि उल्लंघन की कड़ी से कड़ी सज़ा मिलेगी।

एक दिन सिनिशा ज़ेको से यों ही पूछ बैठा कि हवाई हमला हुआ तो वह क्या करेगा। सवाल से ज़ेको चौंका।

"क्या करूँगा? वही जो करना चाहिए।"

"तुम बेलगराद छोड़ने की तो नहीं सोच रहे ज़ेको चचा?" सिनिशा ने अपनी मंद आँखें झुकाकर पूछा।

"नहीं," ज़ेको का जवाब था और उसने इतना और कहना चाहा: 'नहीं,

मेरी यहाँ ज़रूरत हो तो नहीं' पर वह सकुचा गया और चुप रह गया।

"यानी मुसीबत आ पड़े तब भी नहीं ?" सिनिशा ने अपने ख़ास व्यंग्यात्मक अंदाज़ में पूछा।

"नहीं, मैं समझता हूँ तब भी नहीं," ज़ेको धीरे से बोला।

"तुम बहादुर हो ज़ेको चचा।"

सिनिशा ने फ़ौरन विषय बदल दिया और कुछ हँसने-हँसाने की बातें करने लगा, इतना ही हुआ। पर ज़ेको समझ गया कि हवाई हमला होने पर उस पर कुछ ज़िम्मेदारी आ पड़ेगी और इस विचार ने उसमें एक प्रकार का स्निग्ध आत्म-संतोष भर दिया।

मार्गरीटा झाँय-झाँय करती हुई घर भर में आ-जा रही थी और हर चीज़ से टकरा रही थी, जेको से और नौकरानी से और उनका नाम लेकर ऐसे पुकार रही थी जैसे उन्हें देख नहीं रही हो। वह चीज़ें तो ज़रूरी-ग़ैरज़रूरी सब इकट्ठा किये ले रही थी पर जो चिल्ला रही थी वह बिल्कुल ग़ैर-जरूरी था।

ज़ेको ने उसे शांत करने की और समझाने की कोशिश की कि ये साइरन केवल चेतावनी के हैं। किन्तु वह यह समझा ही रहा था कि साइरन फिर रम्भाया और इस बार उसने आसन्न संकट की घोषणा की। डर के मारे मार्गरीटा के होश-हवास फाख़्ता हो गये मगर ज़बान उसकी कतरनी की तरह चलती रही।

"आ गये हत्यारे, हाय ! माइकेल, मेरा बेटा, कहाँ गया माइकेल ! बकसिया की चाबी किधर गयी, फिन्का, वहाँ खड़ी क्या कर रही है ? उजबक की तरह घूरती क्या है ?"

इसी उथल-पुथल के, दौड़-भाग, चीख़-पुकार के बीच ज़ेको ने किसी तरह उस बदहवास औरत को तहख़ाने में दाखिल कर दिया। टिगार पहले से ही वहीं मोजूद था। वह टेबिल टेनिस खेल रहा था और वहीं से सीधा तहख़ाने में चला गया था। उसे न किसी व्यक्ति की चिंता हुई थी न किसी वस्तु की। उसकी माँ ने रोते-रोते उसकी तरफ़ प्यार से देखा। माँ ने उसकी पीठ पर हाथ रखना चाहा मगर उसने उसे झटक कर परे कर दिया और निश्चल, नि:शब्द अपनी ही चिंताओं में डूबा, झुका बैठा रहा। ऐसे क्षणों में टिगार से कोई कुछ करा नहीं सकता था; उसका हिलना-डुलना, बोलना-चालना, किसी को देखना तक बंद हो जाता मानो आत्म-रक्षा के लिए उसे एक-एक बूंद शक्ति

की ज़रूरत हो।

फ़रवरी और मार्च में एकाएक बिजली कटी। दो-तीन बार साइरन भी सुन पड़ा—एक लंबी खिंची हुई आवाज़ जिसका मतलब 'प्रथम चेतावनी' होता था और जो छोटी-छोटी उन चीत्कारों से भिन्न थी जिन्हें लोग कुत्ते का रोना कहते थे और जिनका मतलब होता था 'आसन्न संकट।'

जैसे ही रोशनी गयी, ज़ेको के मकान में हंगामा मच गया। मार्गरीटा ने चीख़ना, पुकारना और कराहना शुरू कर दिया और वह एकदम ऊल-जलूल सवाल पूछने तथा फ़िज़ूल की रायें देने लगी। हबड़-हबड़ कर के वह चोरबत्ती खोजने लगी जो उसकी जेब में रखी थी और अपने साथ तहख़ाने में ले जाने के लिए सामान जमा करने लगी।

ऐसे मौक़ों पर टिगार जान के डर से घबराये हुए जानवर की तरह हो जाता और पहले तो माँ को जल्दी करने और चुप रहने को कहता रहता फिर ख़ुद चिल्लाने लगता।

तहख़ाने में जाने को तैयार हो चुकती तो मार्गरीटा ज़ेको को ज़ोर-ज़ोर से हुक्म देना शुरू करती कि आग बुझा दो, खिड़कियाँ खोल दो।

और माँ-बेटे जब आख़िरकार तहख़ाने में चले जाते तो ज़ेको अँधेरे में ब्यालू पूरा करता और रसोई में चूल्हा ठंडा करके झटपट अपनी छत पर कूद आता। वहाँ से ज़ेको काले आकाश को निहारता और अंधकार को काटती हुई जर्मन सर्चलाइटों की रोशनियाँ किसी बड़ी घड़ी की सुइयों की तरह घूमती हुई और विराट आकाश को मनहूसियत से मापती हुई ऊँचे बादलों में विलीन हो जातीं।

समय-समय पर ज़ेको को पास की सड़कों पर सिपाहियों की पदचाप और गाड़ियों की गरज और उनका रास्ता छोड़ कर हटते हुए सिपाहियों की आहट सुनायी पड़ती।

ये ज़ेको के लिए गम्भीर अर्थमय क्षण होते, उसे भय, साहस के साथ युद्ध पर सोचने का फिर अवसर मिलता।

अगर चेतावनी की अवधि लम्बी होती तो ज़ेको अपने कमरे में लौट कर अँधेरे में ही कपड़े बदल कर सो रहता। दूसरे दिन उसे मार्गरीटा से झिड़कियाँ सुननी पड़तीं जो उसकी अधिकांश अन्य बातों की तरह लाचारगी और

निराशा से भरी होतीं। यह लाचारगी मार्गरीटा की ही नहीं उसके सम्पूर्ण वर्ग की आँतरिक विशृंखलता का स्पष्टतया प्रमाण थी। उस वर्ग को बदलती दुनिया में दिशा खोजना अधिकाधिक कठिन हो रहा था।

हवाई हमले शुरू हुए १६ अप्रैल, १९४४ को ईस्टर के दिन सवेरे क़रीब दस बजे। उस वक़्त ज़ेको बाहर निकल रहा था, काम से नहीं बल्कि मार्गरीटा से दूर भागने के लिए जो कि उस समय अपनी नयी नौकरानी, फ़िलोमिना नाम की एक छोटी गुलाबी लड़की को फटकार रही थी।

बेलग्राद के गिरजाघरों में घंटियाँ बज रही थीं। घंटियों की आवाज़ शहर पर मँडराते हुए शुरू गरमियों के विराट आकाश के अनंत में खो गयी।

तब साइरन सुन पड़े जिन्होंने गिरजाघरों की घंटियों की बुझती हुई कराह को ढक लिया और रविवार की तल्लीनता तोड़ दी। ये 'प्रथम चेतावनी' के साइरन थे—कई लंबी और खिची हुई सीटियाँ, जिनके आरम्भ और अन्त में एक झनझनाती-सी आह निकलती थी। उधर साइरन बजा इधर मार्गरीटा प्रकट हुई, चेहरा डर से बिगड़ा हुआ था।

ज़ेको मार्गरीटा के बैठने के लिए कोई और कैसी भी जगह ढूँढ़ रहा था क्योंकि उसकी टाँगें जवाब दे रही थीं, मगर टिगार अपनी जगह से टस से मस न हुआ मानो किसी को वह जानता ही न हो।

अपनी पत्नी के लिए जगह खोज पाते ही ज़ेको ने तहखाना छोड़ दिया। ज़ीना चढ़ते हुए उसे मार्गरीटा मरी-मरी घायल आवाज़ से मिन्नत करती हुई सुनायी दे रही थी कि होशियार रहना। हालाँ कि उस वक़्त तक उसे ख़ुद इतना होश न रह गया था कि वह ज़ेको से क्या चाहती है।

खाली मकान में पहुँचकर उसने सब खिड़कियाँ खोल दीं और रसोईघर से होकर अपने चबूतरे पर जा कूदा। रेडियो बता रहा था कि "शत्रु के प्रबल विमान दल मांटेनिग्रो और सर्बिया के ऊपर उड़ रहे हैं।"

नीचे रेलवे स्टेशन से किसी इंजिन की तीखी और लंबी सीटी सुनायी दे रही थी परंतु वह भी हठात् बंद हो गयी और फिर वह संपूर्ण शांति छा गयी जो आक्रमण की प्रतीक्षा करते नगरों में पायी जाती है।

ज़ेको ने अपने चौतरे पर से सामने फैले दृश्य पर दृष्टि डाली। एक ओर का दृश्य डेन्यूब के द्वीपों पर उतरी धुंध में विलीन हो गया था। दूसरी ओर

उसके सीमांत पर मकानों का पुंज था और उनके सम्मुख ज़ेमून स्टेशन की छायाकृति नज़र आ रही थी। ज़ेको के ठीक सामने था बेलगराद स्टेशन जिसके आगे रेलगाड़ियों की एक क़तार खड़ी थी, फिर सावा नदी का तट और फिर सिर उठाकर देखने से दीखता काले मेगडान का शिखर और सावा और डेन्यूब का संगम और वहाँ संगम पर द्वीप, पिछोला, खाड़ियाँ जो दर्पण के टूटे टुकड़ों की तरह धूप में चमक रही थीं।

सन्नाटा तो विचित्र था ही, उससे भी विचित्र था नगर का क्षितिज जो स्पष्टतर और प्रखरतर हो उठा था मानो आसन्न संकट के भय से उसने एक नयी शक़ल बना ली हो।

सन्नाटा विमानभेदी तोपों की दबी-दबी आवाज़ों से टूटने लगा जो शहर के पूर्व एक उपनगर में लगी हुई थीं। तोपों की ऊँची-नीची गरज वर्तुलाकार होकर फैलती और अंत में इस क्षेत्र में सुनायी पड़ती जो कि अभी तक मौन और अचल खड़ा हुआ था।

इस प्रकंपित गम्भीर वातावरण को चीरता इंजनों का निरंतर और मंद शोर कहीं से आने लगा। ज़ेको ने अपने दाहिने हाथ से आँखों पर छाँह करके ऊपर ताका पर कुछ देख नहीं सका। उसने आँखें नीचे कर लीं, वे सीधे सूरज को देखने से चौंधिया गयी थीं और उनमें पानी आ गया था। तब उसने काफ़ी नीचे उड़ते हुए कई छोटे सफ़ेद विमान देखे। पश्चिम से आ कर ये स्टेशन के ऊपर सावा पुल के निकट से गुज़रे और जैसे समुद्री पक्षी पानी की सतह के पास-पास उड़ते हुए अचानक ऊपर को उड़ान भरते हैं; वैसे ही आकाश में उठ गये। जेक़ो ने उन्हें गिना : आठ थे और नवाँ पीछे-पीछे अकेला उड़ रहा था। पहले तो ज़ेको ने सोचा कि ये जर्मन हवाई जहाज़ होंगे किन्तु एकाएक उसने देखा कि दूर पर रेल के दो डब्बे ज़मीन से ऐसे उठ गये जैसे जानवर पिछली टाँगों पर खड़े हो जाते हैं। साथ में काली मिट्टी और गर्द का एक ग़ुबार भी उठा। जेक़ो तुरन्त समझ गया कि ये मित्र-विमान हैं जर्मनों के नहीं और यह सोच कर कि एक स्वप्न सच हो रहा है उसकी देह कंटकित हो उठी। रेल के डब्बे ज़मीन पर आ गिरे; उनमें से काला धुआँ उठ चला और ऊँचे ही ऊँचे उठता और फैलता गया। चमचमाते सफ़ेद विमान सावा पर हो कर उड़े और [illegible] लगा कर ज़ेको के दृष्टिपथ से बाहर हो गये।

अब अंतिम विमान दिख पड़ा। उस पर एक लाल दाग़ चमक रहा था जैसे कोई फूल सजा हुआ हो। और जब वह नदी के ऊपर पहुँचा उसमें से छोटे-छोटे गोले, रुई के विशाल फाहे जैसे, निकल पड़े; पहले दो और फिर तीसरा। यह विमान भी दृष्टि से ओझल हो गया, वे सफ़ेद फाहे आकाश में डोलते-फिरते रहे फिर हवा के बहाव में पड़कर धीरे-धीरे उस दिशा के विपरीत तैर गये जिसमें विमान जा रहे थे।

रेल के डब्बों से धुआँ और ऊँचा और ऊँचा उठता गया और उसके मूल को लपटों ने लाल रंग दे दिया। उत्तेजना से तना हुआ ज़ेको बिलकुल भूल गया कि वह कहाँ है, कौन है और उसे केवल एक चीज याद रह गयी : यह कि अंततः शत्रु को मारा और मिटाया जा रहा है—शत्रु जो कि उसके सब विचारों का और सब घृणा का केन्द्र बन गया था।

आकाश के तीनों सफ़ेद गोले धीरे-धीरे नीचे आने लगे, खुल कर वे पैरा-शूट बन गये, और बेज़ानिया के पीछे कहीं गिर कर ज़ेको की आँख से एक-एक कर के ओझल हो गए।

ज़ेको अचरज में पड़ा सोच रहा था कि यह सब कुछ गर्मियों के किसी खाली दोपहर के किसी खेल की तरह क्यों लग रहा है कि प्रतिरक्षा-तोपें एकाएक सब की सब गरज उठीं। लगभग उसी क्षण ताबड़-तोड़ कई बम फटे—५ या ६ होंगे और उनके फटने के साथ उनकी विचित्र गूँज और इमारतों के भहराने की गड़गड़ाहट सुनाई दी। परन्तु इन सब आवाज़ों को दबा लिया ज़ेको के सर पर से लगातार अंधड़ की तरह गुज़रते हुए हवाई जहाज़ों के शोर ने।

कुल मिला कर ऐसा लगता था मानो दो बनैले जंतु एक दूसरे से टकरा गये हों और एक में गुँथकर धूल और रौंदी हुई बनस्पति के बवडर में फुर्ती से दाँव-पेंच दिखाते हुए तीखी से तीखी और भयंकर से भयंकर आवाज़ें पैदा कर रहे हों।

इतने में ज़ेको अचेत हो गया किंतु बस क्षण भर के लिए और फिर चौकन्ना होकर उत्सुकता से भरा उठ बैठा।

उसने गरदन पीछे लटका कर आँखों पर हाथ से छाँह कर ऊपर निर्मल आकाश को ताका। हवा मानो थरथरा रही थी और नीचे धरती बम के विस्फोटों और गिरती इमारतों के धमाकों के मिले-जुले असर से काँप रही

थी। और ज़ेको के भीतर भी सब कुछ थरथरा रहा था जैसे वह किसी कंक-रीली पथरीली सड़क पर लढ़िया में बैठा जा रहा हो।

ऊपर ऊँचाई पर जिसे ज़ेको ने न जाने क्यों तेरह हज़ार फ़ुट से अधिक आँका, कई काले बमबार टेढ़ी-तिरछी क़तारों में ऐसी गति से उड़ते जा रहे थे जो धीमी और कालातीत जान पड़ती थी। ज़ेको गिनने लगा : चार, सात, ग्यारह, सोलह, बाईस और तभी क़तारों के दोनों पार्श्व में नये विमान निकल आये जिससे उसका हिसाब बिगड़ गया और वह चकरा गया। आकाश चारों ओर से घिरे आते विमानों से छा गया। इस काले चँदोवे के ऊपर पानी में नन्हीं मछलियों जैसे लड़ाकू विमानों की चमचमाती झलक आँख-मिचौनी खेल रही थी।

नये बम-विस्फोटों के धमाकों ने ज़ेको का ध्यान तोड़ा : इस बार वे सावा के ज़ेमून वाले किनारे से आ रहे थे। ज़ेमून हवाई अड्डे पर मिट्टी के स्तम्भ हवा में खड़े लहरा रहे थे और उन्हीं में हवाई पट्टो से टूटे ककरीट के खंड भी थे।

और इसके बाद तत्काल विमान-संपुजन पश्चिमोत्तर की ओर बढ़े और आकाश में विलीन हो गये। केवल उनका शोर सुनायी देता रह गया, फिर शोर की गूँज रह गयी और फिर मौन छा गया। दूर कहीं से पहले तीन बार, फिर दो, और फिर एक बार तोपों की गरज आयी जैसे वर्षा के बाद बूँदें एक-एक कर टपकती हैं। फिर जो सन्नाटा छाया वह सर्वव्यापी और संपूर्ण था। ज़ेमून हवाई अड्डे से काले ग़ुबार की एक दीवार उठ कर खड़ी हो गयी।

तब ज़ेको ने देखा कि धूल उस तक पहुँच रही है, और वह उसे अपनी आँखों में और जीभ के तले अनुभव कर रहा है। पहली बार वह भयातुर हो उठा और उस संकट से भाग कर, जो गुज़र चुका था, वह चबूतरे पर से झट-पट वापस लौट आया।

वह अपने घर में भरती हुई धूल में से होता हुआ तहखाने की ओर बढ़ा। रास्ते में अकस्मात् उसने उस भय पर काबू पा लिया जो उसे चबूतरे पर से खदेड़ लाया था।

सबसे ऊपर के ज़ीने पर खड़े होकर उसे नीचे तहखाने में तरह-तरह से सिकुड़े-फैले पड़े मनुष्यों का समूह बहुत अच्छी तरह दिखायी दे रहा था।

एक बार कई वर्ष पहले वह अपने एक रिश्ते के विद्यार्थी भाई को, जो विक्षिप्त था, देखने बेलगराद पागलखाने में गया था। अस्पताल के चिकित्सक उसे उस आम बैठक में ले गये थे जहाँ मरीज़ दिन के वक़्त रहते थे।

तहख़ाने की धुंधली रोशनी में ठसाठस भरे मनुष्य देखकर उसे वही भूला हुआ दृश्य याद हो आया।

उसने देखा, दर्जनों तरह की विचित्र मुद्राओं में लोग लेटे, बैठे और खड़े हैं, स्त्रियाँ मुर्दा पीले चेहरे लिए माथे पर गीले चीथड़े लपेटे, औंधी पड़ी हैं। उसने देखा, कुछ पुरुष घुटनों पर कोहनियाँ टिकाये और हाथों से चेहरे छिपाये बैठे हैं, तो कुछ दीवार से पीठ लगाकर चिपके हुए सर को ऐसे पीछे डाले खड़े हैं जैसे जंजीर से बाँध दिये गये हों। उसने कुछ जोड़ों को कातर आलिंगन में बँधे देखा और कुछ को एक दूसरे से कतई मुँह फिराये बैठा पाया। विकृत चेहरों और सूरतों का वहाँ अंबार लगा था जैसे वे छटपटा कर जड़ हो गये हों।

चेहरों के इस जंगल में से ज़ेको की तरफ़ दो बाँहें उठीं और उनके पीछे दिखा मार्गरीटा का चेहरा जिस पर कोई रंग न था; उसकी आवाज़ लड़-खड़ाती, रिरियाती मगर फिर भी हुक्म चलाती हुई थी :

"जेक़ो······हे ईश्वर, यह क्या हो रहा है ?"

इस विचित्र स्थिति में ज़ेको अचकचा गया पर कुछ कहना था इसलिए बोला, "सब ठीक है, सब शांत हो गया है······"

उसी वक़्त एक अकेला मगर ज़ोरदार धड़ाका हुआ, शायद कोई नियत कालिक बम था, और फिर तुरन्त शांति छा गयी। उस मौन में तहख़ाने के ज़ीने पर खड़े व्यक्ति को नफ़रत भरी नज़रें, हाथ और घूँसे संबोधित करने लगे :

"बंद कर दरवाजा······बेवकूफ़ !"

"गधा कहीं का—ये हम सबकी जान ले लेगा।"

"सब शांत ही तो है।" किसी ने बदहवास विद्रोह का यह सिलसिला ख़त्म करते हुए व्यंग्य भरे षडज स्वर में कहा, जिसके दौरान स्त्रियों ने वह-वह बातें कही थीं जो अभी तक वे सिर्फ़ मन में रखती थीं।

औरतें अब और भी ज़ोरों से सिसकने लगीं और उन सब सिसकियों के

ऊपर मार्गरीटा की शहीदाना लंबी ग्राह सुनायी पड़ने लगी।

ज़ेको भागा। गलियारे में वह तीसरी मंज़िल के किरायेदार एक इंजीनियर से टकरागया जो अपने कमरे से उत्तेजित और एक तरह से खुश-खुश सीढ़ियाँ उतरता आ रहा था। वह खुद सवाल पूछता और खुद जवाब देता।

"देखा तुमने ? मैंने तो सब देखा। मैं जानता हूँ कि ग्रोव्ल्यास्काँ मार्ग पर खूब पड़ी और वेलन बाज़ार पर तो कोई शक ही नहीं।"

इंजीनियर ने ज़ेको की बाँह में हाथ डाल दिया। अनजाने ही दोनों सड़क पर निकल आये।

कहीं चिड़िया तक पर न मार रही थी। सन्नाटा पहाड़-सा खड़ा था। ऊँचे कहीं से एक भनभनाहट, एक पतली निरंतर एकरस आवाज़ आ रही थी जैसे वह भी सन्नाटे का अंश हो।

दोनों नेज़ा मिलोशा चौराहे तक गये और वहाँ खड़े देखते रहे कि एक फैला-फैला पीला-पीला ग़ुबार शहर के दक्षिण-पूर्व भाग के ऊपर उठ रहा है।

तभी अलबानिया मीनार पर से एक लंबा अटूट साइरन बजा, फिर चुकारित्सा से एक और और फिर डेन्यूब से एक और।

खतरा टल गया था।

ज़ेको तत्क्षण टाल्सटाय मार्ग की ओर चल पड़ा। चिंता से विह्वल वह चढ़ाई पर दौड़ता गया। लोग शरणालयों से निकल-निकलकर उसके। पास से गुज़रते जा रहे थे। वे सब उत्तेजना के मारे ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे थे उनमें से कुछ हँस रहे थे पर यह हँसी न स्वस्थ थी न भली थी। कई के मुँह से शराब महक रही थी।

पहाड़ी पर से साफ़ दिखायी देता था कि स्टेशन पर चार ठिकानों पर रेल के डिब्बे खड़े जल रहे थे। ज़ेमून धुएँ और धूल के बादल में विलीन हो गया था और दक्षिण-पूर्व बेलगराद भी।

टापचादडर पहाड़ी पर कोई बम नहीं गिरे थे मगर फिर भी जब तक ज़ेको ने अपना परिचित वह छोटा-सा मकान वसंत की अंकुरित हरियाली के मध्य अछूता खड़ा नहीं देख लिया तब तक उसे चैन नहीं आया।

डोरोश के घर में सब कुछ उलट-पुलट पड़ा था। इंजीनियर और दानित्सा

हवाई हमले से दहशत खा गये थे। लड़की की आँखों में डर समा गया था और समय-समय पर उसकी पूरी देह थरथराती थी जैसे कँपकँपी छूट रही हो। और डोरोश, पीला और मौन, ऊटपटांग चीजें जमा कर रहा था, काग़-ज़ात पलट रहा था और समय-समय पर बर्रा उठता था जैसे किसी को सुना कर कह रहा हो "मुझसे नहीं होगा, मैं यहाँ नहीं रहने का बमों के वास्ते, नँह"।

मारिया और ड्रागान शांत और संयत थे।

पहाड़ी से ज़ेको स्वेतोसाव्स्का पहाड़ी गया कि सिनिशा की ख़ैरियत पूछ आये और यह भी मालूम कर ले कि कोई काम तो नहीं है। सिनिशा ने उससे अपने ढंग का संक्षिप्त और दुरूह परिहास किया और वह हमेशा से अधिक चंचल दिखायी दिया। जब ज़ेको ने उसे हवाई हमले का अपना देखा हाल सुनाया तो उसके मुँह से बार-बार निकला :

'मित्रों ने काम कर दिखाया, ज़ेको चाचा, कर दिखाया।"

उसने ज़ेको से पूछा कि क्या वह आज ही नगर का दौरा करके और यह देखने जायेगा कि कितना नुकसान हुआ है और यह भी कि कुछ खास-खास मकानों पर बम गिरे हैं या नहीं और अगर गिरे हैं तो उनमें कौन-कौन मरा है। उसने ज़ेको से कहा कि ख़बर लाकर मुझे मत देना, टापचाइडर पहाड़ी दे आना, वहाँ से वूल या कोई एक बच्चा उसे ले आयेगा।

ज़ेको बम-ध्वस्त नगर में घूमा, खँडहरों और उनके भीतर दारुण दृश्यों को उसने देखा और दिया जलने तक अपने घर थका-हारा लौट आया।

वहाँ मार्गरीटा और टिगार बहस करके तय कर रहे थे कि यहाँ से अच्छा और सुरक्षित शरणालय कहाँ मिल सकता है। उसने ज़ेको को उसे छोड़ कर जाने पर जली-कटी सुनायी कि वह उसे छोड़ कर चला गया, घर-बार की उसे फ़िक्र नहीं और वह टापचाइडर पहाड़ी पर घूमता रहता है। उसने कहा, "मुझे पक्की खबर है कि आज रात को बेलगराद मिट्टी में मिला दिया जायेगा।" और फिर एक क्षण पहले की अपनी बोली भूल कर ज़ेको से पूछने लगी कि हम भाग कर कहाँ जायें।

"कहीं नहीं।"

उसने नफ़रत और भय से जड़ और गूँगी होकर उसकी तरफ़ देखा और

फिर रुआँसी आवाज़ में न जाने क्या कहा और फिर एकाएक उसका बचा-खुचा क्रोध जाग्रत् हो आया, वह उसके सामने खड़ी उछलने लगी और मेज़ पर घूँसा मार-मार कर चीख़ने लगी :

"कहीं नहीं' का क्या मतलब ? हाय दैया, मैं तो कहो सातों समुन्दर पार चली जाऊँ। तुम्हें मरना हो तो मरो, बेवक़ूफ़ दास, तुम जनम के मूरख हो, मेरी जान मुझे प्यारी है, दुनिया भर से प्यारी है, मैं" मैं......

वह फिर लाचार हो कर फूट-फूट कर रोने लगी।

अंततः ज़ेको किसी तरह खिसक गया और उसने अपना कमरा अंदर से बंद कर लिया। कुछ देर वह आँखें बंद किये सुनता रहा कि घर के अंदर हंगामा मचा हुआ है और कल्पना में देखता रहा कि ध्वस्त मकानों के अंदर से चीथड़ों में लपेटी लाशें निकाली जा रही हैं। आख़िरकार उसे नींद आ गयी क्योंकि वह बहुत पैदल चलने और जाने क्या-क्या देखते रहने से थक गया था।

तड़के वह घर में चीख़-पुकार और झन्न-पटक सुन कर जग पड़ा। वह बिस्तर से निकल आया। मार्गरीटा गरज रही थी और एक साथ तमाम से सवाल पूछे डाल रही थी— "हम कहाँ जायेंगे ? किस सवारी से जायेंगे ? क्या ले जायेंगे ? और जो चीज़ें घर में छोड़ जायेंगे उनका क्या होगा ?"

पिछले दिन के दृश्य और ध्वनियों से अभी तक बोझिल ज़ेको ने औरत की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं दिया जो कि स्वस्थ और साबुत अपने सजे-धजे ठीक-ठाक घर में उन लोगों से अधिक दुःख मना रही थी जिन्हें कल ज़ेको ने खँडहरों के पास अपना सब कुछ खोकर खड़े देखा था।

" ज़ेको, ज़ेको" मार्गरीटा रह-रह कर चीख़ती मगर ज़ेको कोई जवाब न देता जैसे ज़ेको किसी और का नाम हो, वह पागल की तरह अपना असबाब बाँध रही थी और आँख मूँद कर जो हाथ आता उसे झपट कर रखे ले रही थी। सहसा उसके हाथ शिथिल हो गये, आँखें आँसुओं से भर आयीं और वह फ़र्श पर धम से बैठ गयी ; बैठ गयी तो फिर वहीं की वहीं एक खुले बक्स के पास बैठी ही रही। पर फिर वह उठी, ज़ेको को पुकारा और फिर उससे कोई जवाब नहीं मिला और वह सामान बाँधने लगी। वह कभी किसी दुःखी छोटी लड़की की तरह सिसकती, कभी छिनाल की तरह गरियाती।

टिगार उसके पीछे डरा, दबा, दुम की तरह लगा हुआ था। पिछले दिन

की तरह वह ज़्यादा बोल नहीं रहा था। उसकी आँखों से डर झाँक रहा था और जब माँ से उसकी आँखें चार होतीं तो वे दोनों जड़वत् एक दूसरे को दो हताश जानवरों की तरह घूरने लगते। जब टिगार आँखें नीची कर लेता तो वह सिसकना शुरू कर देती और झूठमूठ सामान बाँधती रहती।

उनकी 'कार्यकुशलता' का, उस सदर्प आत्म-विश्वास का कहीं नाम-निशान तक न बाक़ी रह गया था जिससे वे कभी महाशक्तिशाली दिखायी दिया करते थे।

जब दिन निकल आया तो टिगार हार कर किसी मोटर ठेला या घोड़ागाड़ी की तलाश में निकला, उसे दरवाज़े तक पहुँचा कर आँखों में आँसू भरे काँपती आवाज़ में वह चिल्लायी :

"कहीं से लाओ, चाहे जर्मनों से लाओ, जो माँगे वह दो मगर यहाँ से निकलने के लिए सवारी लिये बिना न आओ।"

उस दिन घर में एक क्षण को शांति नहीं थी। मार्गरीटा असबाब बाँधती, क्लेश करती, दुनिया भर का रोना एक ही साथ रोती—मकान का, मेज़-कुरसी का, अपनी सुरक्षा का और जो मन में आता कभी कुछ, कभी कुछ बोलती जाती। वह जहाँ-जहाँ से मदद की उम्मीद हो सकती थी वहाँ टेलीफ़ोन कर रही थी और जब कहीं से जवाब न आता—क्योंकि बम-ध्वस्त नगर में तार टूट गये थे—तो फिर रोने लगती और टेलीफ़ोन पटक कर बंद कर देती।

ज़ेको बीचों-बीच कमरे में बैठा नाश्ता कर रहा था। उसकी पत्नी ने जिसका मिज़ाज ठिकाने आ गया था उसकी तरफ़ घूर कर ग़ुस्से से मगर भय और आदर से देखा :

"तुम क़िस्मतवाले हो जो तुम्हारा दिल इतना सख्त है" और ज़ेको शांति से खाता रहा और उसे लगा कि बीस बरस से भी अधिक समय में पहली बार वह अपने घर में अपनी मेज़ पर बैठ कर मज़े ले कर खा रहा है और उसे न मार्गरीटा की कोई फ़िक्र है न उससे कोई डर है।

और जब वह ऊटपटांग वाक्य जोड़कर बकने-झकने लगी और उसकी भारी-भरकम देह और उसकी क्षुद्र संपत्ति का इस लोक में और परलोक में भी महत्त्व जीवन से भी अधिक हो गया तो ज़ेको ने उसे आहिस्ता से टोक

दिया :

"तुम कोई चीज़ नहीं हो।"

और जब वह उसकी भावनाओं के प्रति निर्मम हो कर परन्तु क्रोध से नहीं, उसे अपने विचार बतलाने लगा तो उसने उसकी आँखों में आँखें डाल दीं और अनुभव किया कि वे आँखें, जिनसे उसकी अनुपस्थिति में भी वह वर्षों आतंकित रहा, असाधारण किसी तरह न थीं। उनमें कभी भी कुछ नहीं था और आज तो कुछ था ही नहीं और उसने यह अनुभव किया तो उसे यह एक ही साथ हास्यास्पद और करुण लगा परन्तु, न वह हंसा न दुःखी हुआ क्योंकि अब वह मुक्त हो चुका था।

टिगार एक घोड़ागाड़ी लेकर आ पहुँचा और उसकी अपनी माँ से निरर्थक बकबक शुरू हो गयी। ज़ेको ने कई सुझाव दे कर उनकी मदद करनी चाही और वे सुझाव मान भी लिये गये जैसा कि पहले कभी हुआ ही नहीं था।

तय हुआ कि वे लोग जेलेज़निक जा कर उस ग्वाले के यहाँ ठहरेंगे जो रोज़ दूध दे जाता था। जब ज़ेको ने कहा कि मैं शहर में ही रहूँगा और मकान की चौकसी करूँगा तो वे बहुत ख़ुश हुए।

अब सब काम फुर्ती से क़ायदे से होने लगा। फिर भी मार्गरीटा घर में हर कमरे के दरवाज़े पर ठहरती, सीने पर सलीब का निशान बनाती और दारोग़ा को घुड़कती जो असबाब बँधवाने में हाथ बँटा रहा था। ज़ेको को पुकार कर वह चिल्लायी :

"सब चीज़ों का ध्यान रखना···खिड़कियाँ बंद कर देना···हरे बक्स में कुछ पकवान है। दूसरे बक्से मत खोलना······"

आखिरकार वे चले। ज़ेको उन्हें गाड़ी में बिठाने लगा। रह-रह कर मार्गरीटा को याद आता कि वह कुछ भूल आयी है और वह चीख पड़ती, फिर वह चीज़ उसकी जेब से ही बरामद होती। ले-दे कर वह गाड़ी में तरह-तरह के बक्सों और बंडलों से घिरी बैठ गयी। वह गाड़ीवान के पास बैठी थी और वह उसे ऐसे बता रहा था कि पाँव कहाँ रखो जिससे लटके नहीं जैसे किसी नासमझ बच्चे को बताया जाय। टिगार गाड़ी में सब सामान के ऊपर ओढ़ाये हुए एक गद्दे के ऊपर बैठा था। उसके चेहरे पर वही हमेशा की

उलझन थी, वह ग्रपनी ही समस्याग्रों में डूबा हुग्रा था।

ज़ेको सदा दरवाज़े पर खड़ा उन्हें देखता रहा ग्रौर जब गाड़ी चल दी तो उसने हाथ हिला कर ऐसे बिदा दी जैसे कोई बच्चे मई दिवस का मेला देखने जा रहे हों।

मकान में लौट कर, जहाँ सब सामान यों बिखरा पड़ा था मानो डाका पड़ा हो, ज़ेको ने कुछ वक़्त उसे समेटने में लगाया, फाटक जैसी खुली ग्रलमारियों के कपाट बंद किये, हर चीज़ ग्रपनी जगह पर सहेजी।

जब वह इससे निबटा तो उसने हाथ धोये ग्रौर ग्रारामकुर्सी में पसर कर चैन की साँस ली ग्रौर ग्रपनी नयी ग्राज़ादी का सुख चुपचाप उसके मन में भर गया। सहसा उसे याद ग्राया कि उसे टापचाइडर एक संदेश ले जाना था। उसने घड़ी देखी तो चौंक पड़ा, दस बज गये थे।

जब वह नेज़ा मिलोशा मार्ग के छोर पर पहुँचा उसने देखा कि सब सवारियाँ शहर के बाहर जा रही हैं ग्रौर शहर के ग्रंदर कोई नहीं ग्रा रहीं। दादीन्ये की सड़क पर पहुँचते-पहुँचते उसे पहला साइरन सुनायी दे गया। उसके बाद तुरन्त ख़तरा टलने का भोंपू बजा। ज़ेको ने चाल तेज़ की, सारे शरीर से पसीना छूटने लगा। जर्मनों भरी से मोटर गाड़ियाँ उसके पास से भयंकर रफ़्तार से गुज़र रही थीं ग्रौर सब दादीन्ये ग्रौर टापचाइडर की बस्तियों की ग्रोर जा रही थीं।

ज्वेज़्दा चौराहे के पास एक युवती देहातिन उसके बराबर हो ली। उसके कंधे पर एक बहँगी थी जिसके एक सिरे पर दूध के ख़ाली टीन ग्रौर दूसरे पर एक गठरी थी। इस प्रदेश की किसान ग्रौरतों की ग्रपनी ख़ास तेज़ चाल से चलती हुई वह मारे घबराहट के तमतमायी जा रही थी: वह ग्रागे को तनिक-सा झुक कर चल रही थी, पाँव उठाती तो जाँघों पर ज़ोर डाल कर ग्रौर कंधे के बोझ से कभी दायें झुकती कभी बायें। उसने ज़ेको से पूछा कि भोंपू जो बजा है सचमुच ख़तरे वाला है कि ख़ाली होशियार करने वाला।

"जल्दी कर, जल्दी कर, सड़क से हट कर किसी झुरमुट में चली जा" ज़ेको ने ऐसे ग्राश्वस्त भाव से कहा जैसे उसे मालूम हो कि क्या होने जा रहा है।

"हे ईश्वर, सबके सब मर जायें, सब के सब···"

हालाँ कि वह घबरायी हुई थी पर वह मुसकराती दीखती थी। पता